



ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचित

# षट्खण्डागमः

प्रथमखण्डे जीवस्थाने सत्प्ररूपणा

अन्तर्गत विंशतिप्ररूपणा

( गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि-टीकासमन्विता )

मंगलाचरणम्

सिद्धिकन्याविवाहार्थं, त्यक्त्वा राजमतीं सतीम्।

दीक्षां लेभे महायोगिन्! नेमिनाथ! नमोऽस्तु ते॥१॥

---

मंगलाचरण

श्लोकार्थ —सिद्धि कन्या से विवाह करने हेतु जिन्होंने सती राजमती का त्याग करके जैनेश्वरी-मुनिदीक्षा धारण की थी ऐसे हे महायोगिराज ! नेमिनाथ भगवन्! आपको मेरा नमस्कार होवे॥१॥

उज्जयिन्यां<sup>१</sup> महावीरो-ऽतिमुक्तकवने स्थितः। रुद्रोपसर्गजेता तं, तपोभूमिं च नौम्यहम् ॥२॥  
 उपसर्गजितः साधून् आचार्याकम्पनं स्तुवे। श्रुतसिन्धुं च योगीन्द्रं, विष्णुं चापि सुदृष्टये ॥३॥  
 सर्वभाषामयीं देवीं, शारदां हृदि धारये। यस्याः कृपाप्रसादेन, ज्ञानज्योतिश्चकासते ॥४॥  
 अतिवीरं मुहुर्नत्वा, या विंशतिप्ररूपणा। तास्वालापाः प्रवक्ष्यन्ते, स्वस्मिन् बुद्ध्यर्द्धिलब्धये ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका —

अथ श्रीमद् भगवत्पुष्पदन्तभूतबलि प्रणीत-षट्खण्डागमनाम-महाग्रन्थे जीवस्थाननामप्रथमखण्डोऽस्ति। तस्मिन्नपि सप्तसप्तत्यधिक-शतसूत्रसमन्वितं सत्प्ररूपणानाम प्रथमप्रकरणमस्ति। तस्यै विशेषविवरणरूपा विंशतिप्ररूपणाग्रन्थो वर्तते। अस्मिन् ग्रन्थे गुणस्थानेषु मार्गणासु च विंशतिप्ररूपणानामालापा वक्ष्यन्ते।

प्रोक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण —

उज्जयिनी नगरी के अतिमुक्तकवन में ध्यानस्थ होकर जिन्होंने भव नामक रुद्र द्वारा किये गये उपसर्ग पर विजय प्राप्त की थी, उन तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी को एवं उनकी तपोभूमि को भी मेरा नमन है ॥२॥

उपसर्ग को जीतने वाले श्री अकम्पनाचार्यादि सात सौ मुनियों की हम स्तुति करते हैं तथा बलि आदि मंत्रियों को वाद-विवाद में पराजित करने वाले श्री श्रुतसागर मुनिराज को एवं सात सौ मुनियों का उपसर्ग दूर करने वाले श्री विष्णुकुमार महामुनिराज को भी अपने सम्यग्दर्शन की निर्मलता हेतु हमारा नमस्कार है ॥ ३॥

जिनकी कृपाप्रसाद से ज्ञान की ज्योति प्रकाशमान होती है ऐसी सर्वभाषामय शारदा देवी-सरस्वती माता को हम अपने हृदय में धारण करते हैं ॥४॥

अतिवीर नाम से भी प्रसिद्ध महावीर भगवान् को बार-बार नमस्कार करके अब अपनी आत्मा में बुद्धि ऋद्धि की प्राप्ति हेतु बीस प्ररूपणा एवं उनके आलाप मेरे द्वारा कहे जाएंगे ॥५॥

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका — श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त एवं भूतबली द्वारा प्रणीत-रचित षट्खण्डागम नामक महाग्रन्थ में 'जीवस्थान' नामका यह प्रथम खण्ड है। उस प्रथम खण्ड में भी एक सौ सत्तत्त सूत्र से समन्वित सत्प्ररूपणा नामक प्रथम प्रकरण है। उसी के विशेष विवरणरूप यह बीसप्ररूपणा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में गुणस्थान एवं मार्गणाओं में बीस प्ररूपणाओं के आलाप का वर्णन करेंगे।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है —

१. उज्जैन शहर में चैत्र कृ. १ दि. ६-३-१९९६ को मेरा क्षुल्लिका दीक्षा दिवस भी था इसी दिन मैंने इस द्वितीय पुस्तक विंशतिप्ररूपणा की टीका करना प्रारंभ किया। इसी दिन जयसिंहपुरा मंदिर के बाहर सभा में यह निर्णय हुआ कि यहाँ उज्जैन में भगवान महावीर स्वामी ने उपसर्ग जीता था। तभी उपसर्ग करने वाले रुद्र ने भगवान को ध्यान में अविचल देखकर 'महतिमहावीर' यह नाम घोषित कर भगवान की स्तुति की थी। इसी स्मृति में यहाँ 'भगवान महावीर तपोभूमि' नाम से तीर्थ बनाया जावे। भगवान महावीर स्वामी की सात हाथ की खड्गासन मूर्ति विराजमान की जावें तथा यहाँ से संबंधित श्री अकंपनाचार्य और श्री श्रुतसागरमुनि के चरण, हस्तिनापुर में श्री अकंपनाचार्य के संघ पर बलि द्वारा उपसर्ग किये जाने पर उज्जैन से जाकर उपसर्ग दूर करने वाले श्री विष्णुकुमार मुनिराज के चरण भी विराजमान किये जावें। इसी प्रकार सुकुमालमुनि ने यहीं पर उद्यान में स्यालनी के द्वारा किये गये उपसर्ग को सहन कर देवगति प्राप्त की थी। उनके चरण आदि स्थापित किये जावें एवं इन सभी दृश्यों को दिखाने वाली प्रदर्शनी भी बनायी जावें।

इसी दिवस यहाँ पर विशाल समारोह के साथ इस 'महातीर्थ' हेतु शिलान्यास संपन्न हुआ।

“संपहि संतसुत्तविवरण-समत्ताणंतरं तेसिं परूपणं भणिस्सामो<sup>१</sup>।” अतएवास्यां प्ररूपणायां एकमपि सूत्रं नास्ति केवलं धवलाटीकयैव असौ प्ररूपणाधिकारोऽस्ति। तस्या धवलाटीकाया आधारं गृहीत्वा मया सिद्धान्त-चिन्तामणिटीका रचिता।

प्ररूपणानाम किं उक्तं भवति इति चेत् ?

श्रीवीरसेनाचार्यो ब्रवीति — “ओघादेसेहि गुणेसु जीवसमासेसु पज्जत्तीसु पाणेसु सण्णासु गदीसु इंदिएसु काएसु जोगेसु वेदेसु कसाएसु गाणेसु संजमेसु दंसणेसु लेस्सासु भविएसु अभविएसु सम्मत्तेसु सण्णिअसण्णीसु आहारि-अणाहारीसु उवजोगेसु च पज्जत्तापज्जत्तविसेसणेहि विसेसिऊण जा जीवपरीक्खा सा परूवणा णाम।<sup>२</sup>”

सामान्यविशेषाभ्यां गुणस्थानेषु जीवसमासेषु पर्याप्तिषु प्राणेषु संज्ञासु गत्यादि-चतुर्दशमार्गणासु उपयोगेषु च विंशतिप्ररूपणासु पर्याप्तापर्याप्तविशेषाभ्यां विशेष्य या जीव परीक्षा क्रियते सा प्ररूपणा नाम उच्यते।

उक्तं च —

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।

उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिया।।

अत्र तावद् गुणस्थानेषु मार्गणासु च विंशतिप्ररूपणानामालापकथनेन द्वौ महाधिकारौ स्तः। तत्रापि प्रथमे महाधिकारे गुणस्थानेषु विंशतिप्ररूपणाः कथ्यन्ते। तेषु सप्तविंशतिकोष्ठकान्यपि वक्ष्यन्ते। द्वितीयमहाधिकारे अष्टादशोत्तरपञ्चशतानि कोष्ठकानि

“सत्प्ररूपणा के सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने के अनन्तर अब उनकी प्ररूपणा का वर्णन करता हूँ।”

अतएव इन प्ररूपणा ग्रन्थ में एक भी सूत्र नहीं है, केवल धवला टीका के द्वारा ही इस प्ररूपणा अधिकार को कहा गया है। उसी धवला टीका के आधार को लेकर मैंने ( गणिनी ज्ञानमती माताजी ) ने यह सिद्धान्तचिन्तामणि टीका लिखी है।

शंका — प्ररूपणा शब्द का क्या लक्षण है?

समाधान — श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं — सामान्य और विशेष की अपेक्षा गुणस्थानों में, जीवसमासों में, पर्याप्तियों में, प्राणों में, संज्ञाओं में, गतियों में, इन्द्रियों में, कार्यों में, योगों में, वेदों में, कषायों में, ज्ञानों में, संयमों में, दर्शनों में, लेश्याओं में, भव्यों में, अभव्यों में, सम्यक्त्वों में, संज्ञी-असंज्ञियों में, आहारी-अनाहारियों में और उपयोगों में पर्याप्त एवं अपर्याप्त विशेषणों से विशेषित करके जीवों की जो परीक्षा की जाती है उसे प्ररूपणा कहते हैं।

सामान्य तथा विशेष दृष्टियों से गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा तथा गति आदि चौदह मार्गणाओं में और उपयोग में बीसप्ररूपणाओं में पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषणों के द्वारा विश्लेषित करके जीवों की जो परीक्षा—खोज की जाती है वही प्ररूपणा नाम से जानी जाती है।

कहा भी है —

गाथार्थ — गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणाएं और उपयोग इस प्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएं कही गई हैं।।

यहाँ उन गुणस्थान और मार्गणाओं में बीसप्ररूपणाओं के नाम एवं आलापों के कथन करने वाले दो महाधिकार हैं। उसमें भी प्रथम महाधिकार के अंतर्गत गुणस्थानों में बीस प्ररूपणाओं का

सन्ति। तेषां विस्तरः—

तासु मार्गणासु तावद् गतिमार्गणायां पञ्चपञ्चाशदधिकशतकोष्ठकानि सन्ति। द्वितीयेन्द्रियमार्गणायां त्रिंशत्संदृष्टयः भवन्ति। तृतीयस्यां कायमार्गणायां एकोनत्रिंशत्संदृष्टयो वर्तन्ते। चतुर्थे योगमार्गणालापेषु त्रिपञ्चाशत् कोष्ठकानि भवन्ति। वेदमार्गणानाम्नि पञ्चमेऽधिकारे सप्तत्रिंशत् संदृष्टयः सन्ति। षष्ठे कषायमार्गणाधिकारे विंशतिकोष्ठकानि भवन्ति। सप्तम्यां ज्ञानमार्गणायां विंशतिसंदृष्टयः सन्ति। अष्टमे संयममार्गणाधिकारे नव कोष्ठकानि सन्ति। नवम्यां दर्शनमार्गणायां पञ्चदश कोष्ठकानि भवन्ति। दशम्यां लेश्यामार्गणायां चतुःसप्ततिः संदृष्टयः सन्ति। एकादशे भव्यमार्गणाधिकारे त्रीणि कोष्ठकानि भवन्ति। द्वादशे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारेऽष्टाविंशतिसंदृष्टयो भवन्ति। त्रयोदशे संज्ञिमार्गणाधिकारे षोडश कोष्ठकानि भवन्ति। चतुर्दशे आहारमार्गणाधिकारे एकोनत्रिंशत् संदृष्टयो भवन्तीति गुणस्थानमार्गणयोर्द्वयोर्महाधिकारयोः मेलने सति पञ्चचत्वारिंशदधिकपञ्चशतानि कोष्ठकानि जायन्ते इत्यत्र समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथात्र प्रथमतो गुणस्थानमहाधिकारे प्ररूपणा उच्यन्ते—

गुणस्थान-जीवसमास-पर्याप्ति-प्राण-संज्ञा-उपयोगा इमाः षट्प्ररूपणाः, चतुर्दश-मार्गणाश्चैता मिलित्वा विंशतिप्ररूपणा भवन्ति। पूर्वोक्तसत्प्ररूपणान्तर्गतसप्तसप्तत्यधिकशतसूत्रेषु गुणस्थान-जीवसमास-पर्याप्ति-चतुर्दशमार्गणानां अर्थो विस्तरेण कथितोऽधुना प्राण-संज्ञा-उपयोगप्ररूपणानामर्थो निगद्यते—

प्राणिनि जीवति एभिरिति प्राणाः।

कथन करते हैं। उनमें सत्ताईस कोष्ठक ( चार्ट ) भी कहेंगे। पुनः द्वितीय महाधिकार में पाँच सौ अठारह कोष्ठक हैं। उन्हीं का विस्तार करते हैं—

उन मार्गणास्थानों में गति मार्गणा सम्बन्धी एक सौ पचपन कोष्ठक हैं। द्वितीय इन्द्रियमार्गणा में तीस संदृष्टियाँ ( कोष्ठक ) हैं, तृतीय कायमार्गणा में उनतीस संदृष्टि हैं, चतुर्थ योगमार्गणा के आलापों में तिरेपन कोष्ठक हैं, वेदमार्गणा नाम के पञ्चम अधिकार में सैतीस संदृष्टि हैं, छठे कषायमार्गणा अधिकार में बीस कोष्ठक हैं, सातवीं ज्ञानमार्गणा में बीस संदृष्टि हैं, आठवें संयममार्गणाधिकार में नौ कोष्ठक हैं, नवमी दर्शनमार्गणा में पन्द्रह कोष्ठक हैं, दशवीं लेश्यामार्गणा में चौहत्तर संदृष्टियाँ हैं, ग्यारहवें भव्यमार्गणाधिकार में तीन कोष्ठक हैं, बारहवें सम्यक्त्व मार्गणाधिकार में अट्ठाईस संदृष्टि हैं, तेरहवें संज्ञिमार्गणाधिकार में सोलह कोष्ठक हैं और चौदहवें आहार मार्गणा अधिकार में उनतीस संदृष्टियाँ हैं, इस प्रकार गुणस्थान और मार्गणा इन दोनों महाधिकारों के मिलाने पर कुल पाँच सौ पैतालीस कोष्ठक हो जाते हैं। यह यहाँ पर कोष्ठकों की समुदायपातनिका प्रस्तुत की गई है।

अब यहाँ सर्वप्रथम गुणस्थान महाधिकार में प्ररूपणा का कथन करते हैं—

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोग ये छह प्ररूपणा तथा चौदह मार्गणा मिलकर  $6+14=20$  बीस प्ररूपणाएं होती हैं। पूर्वोक्त सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत एक सौ सतत्तर सूत्रों में गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति एवं चौदह मार्गणाओं का अर्थ विस्तार से वर्णन किया गया है तथा अब प्राण, संज्ञा और उपयोग इन तीन प्ररूपणाओं का अर्थ कहते हैं—

जिनके द्वारा जीव जीता है उन्हें प्राण कहते हैं।

के ते?

पञ्चेन्द्रियाणि मनोबलं वाग्बलं कायबलं उच्छ्वासनिःश्वासौ आयुरिति।

एतेषामिन्द्रियाणामिन्द्रियमार्गणास्वन्तर्भावो भवेदिति चेत् ?

न भवेत्, चक्षुरिन्द्रियाद्यावरणक्षयोपशमलक्षणेन्द्रियाणां क्षयोपशमापेक्षया बाह्यार्थग्रहणशक्त्युत्पत्तिनिमित्तपुद्गलप्रचयस्य

तर्हीन्द्रियपर्याप्तावन्तर्भावः शक्येत?

न शक्येत, चक्षुरिन्द्रियाद्यावरणक्षयोपशमलक्षणेन्द्रियाणां क्षयोपशमापेक्षया बाह्यार्थग्रहणशक्त्युत्पत्तिनिमित्तपुद्गलप्रचयस्य चैकत्वविरोधात्।

मनोबलं मनःपर्याप्तावन्तर्भवेत् इति चेत्?

न, मनोवर्गणास्कन्धनिष्पन्नपुद्गलप्रचयस्य तस्मादुत्पन्नात्मबलस्य चैकत्वविरोधात्। एवमेव वाग्बलं भाषापर्याप्तावन्तर्भवतीत्यपि कथयितुं न शक्यं, आहारवर्गणास्कन्धनिष्पन्नपुद्गलप्रचयस्य तस्मादुत्पन्नाया भाषावर्गणास्कन्धानां श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यपर्यायेण परिणमनशक्तेश्च साम्याभावात्। तथैव कायबलमपि न शरीरपर्याप्तावन्तर्भवति, वीर्यान्तराय-

प्रश्न — वे प्राण कितने होते हैं?

उत्तर — पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये कुल दश प्राण होते हैं।

भावार्थ — एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त समस्त संसारी प्राणी अपनी-अपनी योग्यतानुसार उपर्युक्त प्राणों के आधार पर ही अपना जीवन यापन करते हैं। मुक्त जीवों के इनमें से कोई भी प्राण नहीं होता है, वे तो मात्र एक चेतना प्राण के बल पर अनन्तानन्त काल तक मोक्षधाम में अविनश्वर सुख का अनुभव करते हैं।

शंका — इन पाँचों इन्द्रियों का इन्द्रियमार्गणा में अन्तर्भाव कर दिया जावे तो क्या बाधा है?

समाधान — इन्द्रियमार्गणा में उनको अन्तर्गर्भित नहीं करना चाहिए क्योंकि चक्षुरिन्द्रियावरण आदि कर्मों के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न हुई इन्द्रियों की एकेन्द्रिय जाति आदि जातियों के साथ समानता नहीं पाई जाती है।

शंका — तो इन्द्रियपर्याप्ति में उन इन्द्रियों को अन्तर्भूत कर देना चाहिए?

समाधान — यह भी शक्य नहीं है क्योंकि चक्षु इन्द्रिय आदि को आवरण करने वाले कर्मों के क्षयोपशमस्वरूप इन्द्रियों को और क्षयोपशम की अपेक्षा बाह्य पदार्थों को ग्रहण करने की शक्ति के उत्पन्न करने में निमित्तभूत पुद्गलों के प्रचय को एक मान लेने में विरोध आता है।

शंका — मनोबल को मनःपर्याप्ति में अन्तर्भूत किया जा सकता है?

समाधान — नहीं, क्योंकि मनोवर्गणा के स्कन्धों से उत्पन्न होने वाले पुद्गलप्रचय को और उससे उत्पन्न होने वाले आत्मबल ( मनोबल ) को एक मानने में विरोध आ जायेगा। इसी प्रकार वचनबल को भी भाषा पर्याप्ति में अन्तर्भूत करना शक्य नहीं हो सकता है क्योंकि आहारवर्गणा के स्कन्धों से उत्पन्न होने वाले पुद्गल परमाणुओं के समूह का और उससे उत्पन्न हुई भाषावर्गणा के स्कन्धों का श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ग्रहण करने योग्य पर्याय से परिणमन करने रूप शक्ति में आपसी समानता का अभाव है। इसी प्रकार से कायबल भी शरीर पर्याप्ति में अन्तर्भूत नहीं हो सकता है

जनितक्षयोपशमस्य खलरसभागनिमित्तशक्तिनिबन्धनपुद्गलप्रचयस्य चैकत्वाभावात्। अनेन प्रकारेण उच्छ्वास-  
निःश्वासप्राणपर्याप्त्योः कार्यकारणयोरानुपुद्गलोपादानयोर्भेदोऽभिधातव्य इति।

संज्ञा चतुर्विधा — आहार- भय-मैथुन-परिग्रहसंज्ञाश्चेति।

मैथुनसंज्ञा वेदेऽन्तर्भवेदिति चेत् ?

न, वेदत्रयोदयसामान्यनिबन्धनमैथुनसंज्ञाया वेदोदयविशेषलक्षणवेदस्य चैकत्वानुपपत्तेः।

परिग्रहसंज्ञापि लोभेनैकत्वं लभेत्?

नैतत्, लोभोदयसामान्यस्यालीढबाह्यार्थलोभतः परिग्रहसंज्ञामादधानतो भेदात्।

यदि चतस्रोऽपि संज्ञा आलीढबाह्यार्थाः, अप्रमत्तानां संज्ञाभावः स्यादिति चेत् ?

न, तत्रोपचारतस्तत्सत्त्वाभ्युपगमात् ।

उपयोगस्य लक्षणं किम्?

स्वपरग्रहणपरिणाम उपयोगः। न सोऽयं ज्ञानदर्शनमार्गणयोरन्तर्भवति, ज्ञानदृगावरणकर्मक्षयोपशमस्य तदुभयकारण-

क्योंकि वीर्यान्तराय कर्म के उदय का अभाव और उपशम से उत्पन्न होने वाले क्षयोपशम की और खल-रस भाग की निमित्तभूत शक्ति के कारण पुद्गलप्रचय की एकता नहीं पाई जाती है।

श्वासोच्छ्वास प्राण और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये दो हैं, इसमें से प्राण तो कार्य है और पर्याप्ति कारण हैं। प्राणों का उपादान कारण आत्मा है तथा पर्याप्ति के लिए उपादान कारण पुद्गल है। इसलिए इन दोनों में भेद माना गया है।

संज्ञा के चार भेद हैं-आहार, भय, मैथुन और परिग्रहसंज्ञा।

शंका — इनमें से मैथुन संज्ञा का वेद में अन्तर्भाव हो सकता है?

समाधान — नहीं, क्योंकि तीनों वेदों के सामान्यतया उदय के निमित्त से उत्पन्न हुई मैथुनसंज्ञा और वेदों के विशेषरूप से उदय होने वाले वेद इन दोनों में एकत्व नहीं बन सकता है। अतः मैथुनसंज्ञा और वेदमार्गणा का पृथक्-पृथक् अस्तित्व ही स्वीकार करना पड़ेगा।

शंका — परिग्रहसंज्ञा को भी यदि लोभकषाय में अन्तर्भूत कर दिया जावे तो क्या बाधा है?

समाधान — ऐसा भी नहीं हो सकता है क्योंकि बाह्य पदार्थों को विषय करने वाला होने के कारण परिग्रह संज्ञा को धारण करने वाले लोभ से लोभकषाय के उदयरूप सामान्य लोभ का भेद है अर्थात् बाह्य पदार्थों के निमित्त से जो लोभ होता है उसे परिग्रह संज्ञा कहते हैं और लोभकषाय के उदय से उत्पन्न हुए परिणामों को लोभ कहते हैं। इस प्रकार का दोनों में सूक्ष्मभेद होने से एक-दूसरे में अन्तर्भाव संभव नहीं है।

शंका — यदि ये चोरो ही संज्ञाएं बाह्य पदार्थों के संसर्ग से उत्पन्न होती हैं तो अप्रमत्त नामक सप्तगुणस्थानवर्ती मुनियों के तो इन संज्ञाओं का अभाव हो जाना चाहिए?

समाधान — नहीं, क्योंकि उन अप्रमत्त मुनियों में इन संज्ञाओं का सद्भाव उपचार से स्वीकार किया गया है।

प्रश्न — उपयोग का क्या लक्षण है?

उत्तर — स्व और पर को ग्रहण करने वाले परिणामविशेष को “उपयोग” कहते हैं। वह

स्योपयोगत्वविरोधात् ।

अत्र कश्चिदाशङ्कते — इयं विंशतिविधा प्ररूपणा किमु सूत्रेण कथिता उत न कथिता? यदि कथिता नेयं प्ररूपणा भवति, सूत्रानुक्तकथनात्। अथ कथिता चेत् तर्हि जीवसमासप्राणपर्याप्त्युपयोगसंज्ञानां मार्गणासु यथान्तर्भावो भवति तथा वक्तव्यमिति?

आचार्यदेवः समाधत्ते — न द्वितीयपक्षे कथितदोषोऽत्र भवति, अनभ्युपगमात्। प्रथमपक्षेऽन्तर्भावो वक्तव्यश्चेदुच्यते — पर्याप्तिजीवसमासाः कायेन्द्रियमार्गणयोर्निलीनाः सन्ति, एकद्वित्रिचतुः पञ्चेन्द्रियसूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदानां तत्र प्रतिपादितत्वात्। उच्छ्वासभाषामनोबलप्राणाश्च तत्रैव निलीनाः, तेषां पर्याप्तिकार्यत्वात्। कायबलप्राणोऽपि योगमार्गणातो निर्गतः, बललक्षणत्वात् योगस्य। आयुः प्राणो गतौ निलीनः, द्वयोरन्योन्याविनाभावित्वात्। इन्द्रियप्राणा ज्ञानमार्गणायां निलीनाः, भावेन्द्रियस्य ज्ञानावरणक्षयोपशमरूपत्वात्।

आहारे या तृष्णा कांक्षा साहारसंज्ञा। सा च रतिरूपत्वान्मोहपर्यायः। रतिरपि रागरूपत्वान्मायालोभयोरन्तर्भवति।

उपयोग ज्ञान और दर्शन मार्गणाओं में अन्तर्भूत नहीं होता है, क्योंकि ज्ञान और दर्शन इन दोनों के कारणरूप ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम को उपयोग मानने में विरोध आता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

ये बीसों प्ररूपणाएं सूत्रानुसार कही गई हैं अथवा नहीं? यदि सूत्रानुसार ये प्ररूपणाएं नहीं कही गई हैं तो ये प्ररूपणा नहीं हो सकती हैं और यदि सूत्रानुसार कही गई हैं तो जीवसमास, प्राण, पर्याप्ति, उपयोग और संज्ञाप्ररूपणा का मार्गणाओं में जिस प्रकार अन्तर्भाव होता है उस प्रकार कथन करना चाहिए।

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि —

उपर्युक्त शंका में जो द्वितीय पक्ष में दूषण दिया गया है वह तो यहाँ पर लागू नहीं होता है, क्योंकि वैसा तो माना नहीं गया है तथा प्रथम पक्ष वाले दूषण में जो जीवसमास आदि के चौदह मार्गणाओं में अन्तर्भाव करने की बात कही है सो कहा जाता है —

पर्याप्ति और जीवसमास नामकी प्ररूपणा काय और इन्द्रियमार्गणा में अंतर्भूत हो जाती हैं क्योंकि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तरूप भेदों का उक्त दोनों मार्गणाओं में प्रतिपादन किया गया है। श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल इन तीन प्राणों का भी इन्हीं दो मार्गणाओं में अन्तर्भाव होता है क्योंकि ये तीनों ही प्राण पर्याप्ति के कार्य हैं। कायबल नामक प्राण भी योगमार्गणा से निकला है क्योंकि योग काय, वचन और मनोबलस्वरूप होता है। आयु नामका प्राण गतिमार्गणा में अन्तर्भूत है क्योंकि आयु और गति ये दोनों परस्पर में अविनाभावी हैं अर्थात् जिस गति के उदय होने पर जो जीव उस गति में रहता है उसके उसी गति से संबंधित आयु का ही उदय होता है और जिस समय जिस आयु का उदय रहता है उस समय उसी से संबंधित गति का उदय होता है, इसलिए गति और आयु को एक-दूसरे का अविनाभावी ही मानना चाहिए। पाँच इन्द्रियरूप जो इन्द्रियप्राण हैं उसे ज्ञानमार्गणा में विलीन किया जाता है क्योंकि भावेन्द्रियाँ ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमरूप होती हैं।

ततः कषायमार्गणायामाहारसंज्ञा द्रष्टव्या। भयसंज्ञा भयात्मिका। भयञ्च क्रोधमानयोरन्तर्लीनम्, द्वेषरूपत्वात्। ततो भयसंज्ञापि कषायमार्गणाप्रभवा। मैथुनसंज्ञा वेदमार्गणाप्रभेदः, स्त्रीपुंनपुंसकवेदानां तीव्रोदयरूपत्वात्। परिग्रहमार्गणापि कषायमार्गणोद्भूता, बाह्यार्थालीढलोभरूपत्वात्।

साकारोपयोगो ज्ञानमार्गणायामनाकारोपयोगो दर्शनमार्गणायामन्तर्भवति, तयोर्ज्ञानदर्शनरूपत्वात्। न पौनरुक्त्यमपि, कथंचित्तेभ्यो भेदात्।

प्ररूपणायां किं प्रयोजनमिति चेत् ?

उच्यते, सूत्रेण सूचितार्थानां स्पष्टीकरणार्थं विंशतिविधानेन प्ररूपणोच्यते।

तत्र 'ओघेण अत्थि मिच्छाङ्गी'। 'सिद्धा चेदि'। मिथ्यादृष्टेरस्तित्वसूचकसूत्रादहारभ्यः सिद्धानामस्तित्वसूचनपराणि पंचदशसूत्राणि कथितानि। एतेषां सूत्राणामर्थो निरूपितोऽस्ति।

अधुना गुणस्थान जीवसमास-पर्याप्ति-प्राण-संज्ञा-चतुर्दश मार्गणा-उपयोगानां प्रत्येकं नामानि भेदाश्च प्ररूप्यन्ते —

आहार के विषय में जो तृष्णा या आकांक्षा होती है उसे आहारसंज्ञा कहते हैं, वह रतिस्वरूप होने से मोह की पर्याय मानी जाती है और रति भी रागरूप होने के कारण माया और लोभ में अन्तर्भूत हो जाती है इसलिए कषायमार्गणा में आहार संज्ञा समझना चाहिए। भयसंज्ञा भयरूप है अर्थात् उसके उदय होने पर प्राणी सात भयों से आक्रान्त हो जाता है और भय द्वेषरूप होने के कारण क्रोध एवं मान में अन्तर्भूत होता है इसलिए भयसंज्ञा भी कषायमार्गणा से उत्पन्न हुई समझना चाहिए। मैथुनसंज्ञा वेदमार्गणा का प्रभेद है क्योंकि वह मैथुनसंज्ञा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद के तीव्र उदयरूप है। अर्थात् स्त्री को पुरुष में अथवा पुरुष को स्त्री में रमण करने का भाव अपने वेदकर्म के उदय के कारण ही होता है इसलिए वेदमार्गणा से ही मैथुन संज्ञा की उत्पत्ति माननी चाहिए। परिग्रह संज्ञा भी कषायमार्गणा से उत्पन्न हुई है क्योंकि यह संज्ञा बाह्य पदार्थों में व्याप्त है। अर्थात् लोभ कषाय के उदय से ही बाह्य पदार्थों के प्रति आसक्तिरूप परिग्रह-संज्ञा प्रगट होती है अतः कषाय और परिग्रह को एक-दूसरे का अविनाभावी मानना चाहिए।

इसी प्रकार से उपयोग के कथन में साकारोपयोग का ज्ञानमार्गणा में और अनाकारोपयोग का दर्शनमार्गणा में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि ये दोनों ही उपयोग ज्ञान-दर्शनरूप हैं। ऐसा होते हुए भी उपर्युक्त प्ररूपणाओं के स्वतंत्र कथन करने में पुनरुक्त दोष नहीं आता है क्योंकि मार्गणाओं से उक्त प्ररूपणाएं कथंचित् भिन्न हैं।

शंका — प्ररूपणाओं का कथन करने में क्या प्रयोजन है?

समाधान — इस विषय में बतलाया है कि सूत्र के द्वारा सूचित पदार्थों के स्पष्टीकरण करने के लिए बीस प्रकार से प्ररूपणाओं का कथन किया जाता है।

उसमें "सामान्य से गुणस्थान की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव हैं" तथा "सिद्ध जीव हैं।" इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवों के अस्तित्व को सूचित करने वाले सूत्र से प्रारम्भ करके सिद्ध जीवों तक के अस्तित्व को सूचित करने की मुख्यता से पन्द्रह सूत्र कहे गये हैं। इन सूत्रों का अर्थ भी (प्रथम पुस्तक में) निरूपित किया गया है।



विंशतिप्ररूपणाप्ररूपणम्—

चतुर्दश गुणस्थानानि सन्ति, चतुर्दशगुणस्थानातीत-गुणस्थानं सिद्धानां परमस्थानमपि अस्ति।

चतुर्दश जीवसमासाः सन्ति। एकेन्द्रिया द्विविधा-बादराः सूक्ष्माः। एतेऽपि पर्याप्तापर्याप्तभेदात् द्विविधा इति एकेन्द्रियाश्चतुर्विधा भवन्ति। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियास्त्रिविधा अपि पर्याप्तापर्याप्तभेदात् षोढा भवन्ति। पञ्चेन्द्रिया द्विविधाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनश्च। तेऽपि पर्याप्तापर्याप्तभेदात् चतुर्विधाः सन्ति। एते चतुर्दश जीवसमासा अतीतजीवसमासा अपि सन्ति ते सिद्धा एव।

षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पंच पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, चतस्र पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयश्च। अतीतपर्याप्तकाः सिद्धा अपि सन्ति। एतासां नामानि — आहार-शरीर-इन्द्रिय-आनापान-भाषा-मनःपर्याप्तयः। एताः षट् पर्याप्तयः संज्ञिपर्याप्तानां। एतासां चैवापर्याप्तकाले एता एव असमाप्ताः षडपर्याप्तयो भवन्ति। मनःपर्याप्त्या विना एता एव पंच पर्याप्तयोऽसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तप्रभृति यावद्द्वीन्द्रियपर्याप्तानां भवन्ति। तेषामेवापर्याप्तानां एता एवानिष्यन्ताः पंचापर्याप्तयो जायन्ते। एता एव भाषामनःपर्याप्तिभ्यां विना चतस्रः पर्याप्तयः एकेन्द्रियपर्याप्तानां भवन्ति। एतेषां चैवापर्याप्तकाले एता एवासंपूर्णाश्चतस्रोऽपर्याप्तयः उच्यन्ते। एतासां षण्णामभावात् अतीतपर्याप्तयः सिद्धाः उच्यन्ते।

अब यहाँ गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग इन प्रत्येक के नाम और भेदों का प्ररूपण करते हैं—

बीस प्ररूपणाओं का वर्णन—

चौदह गुणस्थान हैं, चौदह गुणस्थानों से परे अतीत गुणस्थान भी है और वही सिद्धों का परमस्थान है।

जीवसमास चौदह होते हैं। एकेन्द्रिय जीव के दो भेद हैं—बादर और सूक्ष्म। ये भी पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं अतः एकेन्द्रिय के चार भेद हो जाते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन विकलत्रय जीवों के भी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद होने से कुल छह भेद होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के होते हैं, वे भी पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार के हो जाते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय के ४, विकलत्रय के ६ और पञ्चेन्द्रिय के ४ ये सब मिलकर  $4+6+4=$ कुल चौदह ( १४ ) जीव समास होते हैं तथा अतीतजीवसमास भी होते हैं वे ही सिद्ध कहलाते हैं।

छह पर्याप्तियाँ, छह अपर्याप्तियाँ और पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति एवं चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। अतीतपर्याप्तक—सिद्ध जीव भी होते हैं। इन पर्याप्तियों के नाम इस प्रकार हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्ति। ये छहों पर्याप्तियाँ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के होती हैं। अपर्याप्त काल में ये छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण न होने के कारण छह अपर्याप्तिरूप हो जाती हैं। मनःपर्याप्ति के बिना ये पाँचों ही पर्याप्तियाँ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकों से लेकर द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों तक होती हैं। अपर्याप्तक अवस्था को प्राप्त उन्हीं जीवों के अपूर्णता को प्राप्त वे ही पाँच अपर्याप्तियाँ होती हैं। भाषा-पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति के बिना ये ही चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रियपर्याप्तक जीवों के होती हैं। इन्हीं एकेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त काल में अपूर्ण अवस्था तक ये ही चार अपर्याप्तियाँ होती हैं तथा इन छह

पर्याप्त्यपर्याप्तीनां उदाहरणं कथ्यते।

उक्तं च — जह पुण्णापुण्णाइं गिह-घड-वत्थाइयाह दव्वाइं।

तह पुण्णापुण्णाओ पज्जत्तिररा मुणेयव्वा<sup>१</sup>॥

प्राणिनि जीवति एभिरिति प्राणास्ते दश भवन्ति।

उक्तं च — पंचवि इंदियपाणा मणवचिकाएण तिण्णि बलपाणा।

आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होति दस पाणा<sup>२</sup>॥

एते दश प्राणाः पञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तानां। श्वासोच्छ्वासभाषामनोभिर्विना पंचेन्द्रियसंज्ञ्यपर्याप्तानां सप्त प्राणा भवन्ति। दशप्राणानां मध्ये मनसा विना नवय प्राणाः असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तानां भवन्ति। एतेषामेवापर्याप्तानां भाषोच्छ्वासाभ्यां विना सप्त भवन्ति।

श्रोत्रेन्द्रियमनोबलप्राणाभ्यां विना चतुरिन्द्रियपर्याप्तस्याष्टौ प्राणाः सन्ति, एतेषामेवा-पर्याप्तानां श्वासोच्छ्वासभाषाभ्यां विना षट्प्राणा भवन्ति। पूर्वोक्ताष्टप्राणानां मध्ये चक्षुरिन्द्रियेऽपनीते त्रीन्द्रियपर्याप्तकस्य सप्त प्राणाः, तेषु सप्तसु श्वासोच्छ्वास-भाषाभ्यां विना त्रीन्द्रियापर्याप्तकस्य पंच प्राणाः सन्ति। उक्तप्राणानां मध्ये घ्राणेन्द्रियेऽपनीते द्वीन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य षट्प्राणास्तेषु षट्सु श्वासोच्छ्वासभाषारहिताः द्वीन्द्रियापर्याप्तकस्य चत्वारः प्राणाः भवन्ति। उक्तेषु षट्सु रसनैन्द्रियवचनबलयोरपनीतयोः-

पर्याप्तियों के अभाव को अतीतपर्याप्ति वाले सिद्धपरमात्मा जीव कहते हैं।

इसी सन्दर्भ में पर्याप्ति और अपर्याप्ति का उदाहरण कहते हैं—

गाथार्थ — जिस प्रकार गृह, घट और वस्त्र आदि द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकार के होते हैं उसी प्रकार जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकार के होते हैं। उनमें से पूर्ण जीव पर्याप्तक और अपूर्ण जीव अपर्याप्तक कहलाते हैं।

जिनके द्वारा प्राणी जीवन को जीता है उन्हें प्राण कहते हैं, वे प्राण दश प्रकार के हैं। कहा भी है—

गाथार्थ — पाँचों इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल और कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं।

ये दशों प्राण पञ्चेन्द्रियसंज्ञीपर्याप्तक जीवों के होते हैं। श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के बिना सात प्राण पञ्चेन्द्रियसंज्ञीअपर्याप्तक जीवों के होते हैं। दश प्राणों के मध्य मन के बिना नव प्राण असंज्ञीपञ्चेन्द्रियपर्याप्तक जीवों के होते हैं। अपर्याप्तक अवस्था को प्राप्त इन्हीं जीवों के वचनबल और श्वासोच्छ्वास के बिना सात प्राण होते हैं।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवों के श्रोत्रेन्द्रिय और मनोबल प्राणों के बिना आठ प्राण होते हैं इनमें से ही अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवों के श्वासोच्छ्वास और भाषा के बिना छह प्राण होते हैं। पूर्वोक्त आठ प्राणों में से चक्षु इन्द्रिय के कम कर देने पर शेष सात प्राण त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवों के होते हैं। उन सात प्राणों में से श्वासोच्छ्वास और वचनबल प्राण के कम कर देने पर शेष पाँच प्राण त्रीन्द्रियअपर्याप्तकों के होते हैं। त्रीन्द्रियपर्याप्तकों में कहे गये सात प्राणों में से घ्राणेन्द्रिय के कम कर देने पर शेष छह प्राण द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के होते हैं। द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कहे गये छह प्राणों में से श्वासोच्छ्वास और भाषा के कम कर देने पर शेष चार प्राण द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक

एकेन्द्रियस्य चत्वारः प्राणा भवन्ति। तेषु श्वासोच्छ्वासेऽपनीते एकेन्द्रियापर्याप्तस्य त्रयः प्राणा भवन्ति।

दशानां प्राणानामभावादतीतप्राणाः सिद्धाः सन्ति।

संज्ञाः कथ्यन्ते —

चतस्रः संज्ञाः सन्ति — आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा चेति। एतासां चतसृणां संज्ञानामभावात् क्षीणसंज्ञा नाम।

चतुर्दशमार्गणाः कथ्यन्ते —

चतस्रो गतयः, सिद्धगतिरप्यस्ति। एकेन्द्रियादयः पञ्च जातयः, अतीतजातिरप्यस्ति। पृथिवीकायादयः षट्काया, अतीतकायोऽप्यस्ति। पञ्चदश योगाः अयोगोऽप्यस्ति। त्रयो वेदाः, अपगतवेदोऽप्यस्ति। चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति। अष्ट ज्ञानानि एषु पञ्चज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि च। सप्त संयमाः नैव संयमो नैव संयमासंयमो नैवासंयमोऽप्यस्ति। दर्शनानि चत्वारि सन्ति। द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, अलेश्योऽप्यस्ति। भव्यसिद्धिका अपि सन्ति, अभव्यसिद्धिका अपि सन्ति नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिका अपि सन्ति। षट् सम्यक्त्वानि। संज्ञिनोऽपि सन्ति, असंज्ञिनोऽपि सन्ति, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति। आहारिणोऽपि सन्ति, अनाहारिणोऽपि सन्ति। साकारोपयुक्ता अपि सन्ति, अनाकारोपयुक्ता

जीवों के होते हैं। उक्त द्वीन्द्रिय पर्याप्तक के छह प्राणों में से रसना इन्द्रिय और वचनबल इन दो प्राणों के कम कर देने पर एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण होते हैं। इन चारों प्राणों में से श्वासोच्छ्वास प्राण कम कर देने पर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव के तीन प्राण होते हैं।

दश प्राणों के अभाव में अतीतप्राण सिद्ध जीव होते हैं।

इस प्रकार चौदह जीवसमासों में पृथक्-पृथक् रूप से प्राणों का निरूपण किया है। इसका सारांश यह है कि एकेन्द्रिय जीव के कम से कम तीन प्राण और अधिक से अधिक चार प्राण होते हैं, दो इन्द्रिय जीव के कम से कम चार प्राण एवं अधिक से अधिक छह प्राण होते हैं, तीन इन्द्रिय जीव के कम से कम पाँच प्राण एवं अधिक से अधिक सात प्राण होते हैं, चार इन्द्रिय जीव के कम से कम छह एवं अधिक से अधिक आठ प्राण होते हैं तथा पञ्चेन्द्रिय जीव के कम से कम सात प्राण एवं अधिक से अधिक दश प्राण होते हैं। सिद्ध जीवों में प्राण रहित अवस्था होती है।

अब संज्ञा का वर्णन करते हैं —

संज्ञाएं चार होती हैं — आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रहसंज्ञा। इन चार संज्ञाओं के अभावरूप अवस्था का नाम क्षीणसंज्ञा है।

चौदहमार्गणाओं का कथन करते हैं —

चार गतियाँ होती हैं और एक सिद्धगति भी है। एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियाँ होती हैं और अतीतजाति एक सिद्धजाति भी है। पृथिवीकाय आदि छह काय हैं एवं कायातीत भी सिद्ध जीव हैं। पन्द्रह योग हैं और अयोगस्थान भी है। वेद तीन होते हैं और अपगतवेदस्थान भी होते हैं। चार कषायें होती हैं और अकषायस्थान भी है। आठ ज्ञान होते हैं, इनमें पाँच ज्ञान ( सम्यग्ज्ञान ) एवं तीन अज्ञान ( मिथ्याज्ञान ) होते हैं। सात संयम होते हैं और संयम, संयमासंयम तथा असंयम रहित भी स्थान है। दर्शन चार होते हैं। द्रव्य और भाव के भेद से छह लेश्यायें होती हैं और अलेश्यास्थान भी है। भव्यमार्गणा में भव्यसिद्धिक जीव भी होते हैं और अभव्यसिद्धिक भी होते

अपि सन्ति, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता अपि भवन्ति।

इत्थं विंशतिप्ररूपणानां उत्तरभेदाः — चतुर्दशगुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः चतस्रः संज्ञाः, चतुःसप्ततिः मार्गणाः द्वावुपयोगौ चेति सर्वे मिलित्वा चतुर्विंशत्यधिकशतानि भवन्ति।

इंदौरमहानगरे गोम्मटगिरेरुपरि दशाब्दीमहोत्सवान्तर्गते वीराब्दे द्वाविंशत्यधिक-पञ्चविंशतिशततमे चैत्रकृष्णात्रयोदश्यां तिथौ श्रीबाहुबलिस्वामिनः प्रतिमायाः अष्टोत्तरसहस्रकलशैर्महाभिषेककाले पंचपरमेष्ठिसमन्वित निर्माणार्थं मया प्रेरणा दत्ता<sup>१</sup>।

अव्युपना सामान्येन पर्याप्तजीवानामालापाः कथ्यन्ते —

पर्याप्तावस्थाविशिष्टजीवानामोघालापे भण्यमाने चतुर्दशगुणस्थानानि, अतीतगुणस्थानं नास्ति, पर्याप्तेषु तस्याः सिद्धावस्थायाः संभवाभावात् । सप्त पर्याप्ता जीवसमासाः, अतीतजीवसमासो नास्ति। षट् पर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः अतीतपर्याप्तिर्नास्ति। दश प्राणा नव प्राणा अष्टौ प्राणाः सप्तप्राणाः षट्प्राणाश्चत्वारः प्राणाः, अतीतप्राणो नास्ति। चतस्रः संज्ञा, क्षीणसंज्ञा अपि अस्ति।

हैं एव भव्यसिद्धिक-अभव्य सिद्धिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान होता है। सम्यक्त्वमार्गणा में छह सम्यक्त्व होते हैं। संज्ञीमार्गणा में संज्ञी जीव भी हैं और असंज्ञी जीव भी हैं तथा संज्ञी-असंज्ञी के विकल्प से रहित स्थान भी हैं। आहारकमार्गणा में आहारी जीव भी हैं एवं अनाहारी जीव भी हैं। उपयोग मार्गणा में साकारोपयोगी जीव भी हैं और अनाकारोपयोगी जीव भी हैं तथा साकार-अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् युक्त जीव भी हैं।

इस प्रकार बीस प्ररूपणाओं के उत्तर भेद समूहरूप से कहते हैं—चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छह पर्याप्तियाँ, दश प्राण, चार संज्ञाएं, चौहत्तर मार्गणा और दो उपयोग ये सभी मिलकर कुल एक सौ चौबीस प्ररूपणाएं होती हैं।

मध्यप्रदेश के इंदौर महानगर में गोम्मटगिरि पर्वत पर दशाब्दि महोत्सव के अन्तर्गत वीरनिर्वाणसंवत् पचीस सौ बाईस ( २५२२ ) की चैत्रकृष्णा त्रयोदशी तिथि को भगवान बाहुबली स्वामी की प्रतिमा के एक हजार आठ कलशों से महामस्तकाभिषेक समारोह के समय मैंने वहाँ पंचपरमेष्ठी से संयुक्त ॐकार मंत्र की प्रतिमा विराजमान करने की घोषणा की।

**श्लोकार्थ** — बिन्दु से संयुक्त ॐ बीजाक्षर मंत्र का योगीजन नित्य ही ध्यान करते हैं। ऐसे उस सांसारिक एवं मोक्षसुखरूपी अभ्युदय को देने वाले ॐकार मंत्र को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

अब सामान्य से पर्याप्तक जीवों के आलाप कहे जाते हैं—

पर्याप्त अवस्थारूप विशेषण से विशिष्ट जीवों के ओघालापों का कथन करने पर उनके चौदह गुणस्थान होते हैं, उनके गुणस्थानातीत अवस्था नहीं होती है क्योंकि पर्याप्तक जीवों की सिद्ध अवस्था नहीं रहती है अर्थात् सिद्ध जीव पर्याप्त-अपर्याप्त इन दोनों अवस्थाओं से रहित होते हैं इसलिए पर्याप्तजीवों को गुणस्थानातीत नहीं माना गया है।

१. १७-३-१९९६ को मेरे सानिध्य में इंदौर-गोम्मटगिरि पर ॐकार प्रतिमा विराजमान करने की घोषणा की गई।

चतस्रो गतयः सिद्धगतिर्नास्ति पर्याप्तेषु इति। एकेन्द्रियादिपञ्चजातयः सन्ति, अतीतजातिर्नास्ति। पृथिवीकायादयः षट्कायाः सन्ति, अकायो नास्ति। औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-आहारकमिश्र-कार्मणकाययोगैर्विना एकादश योगाः अयोगोऽप्यस्ति। त्रयो वेदाः, अपगतवेदोऽप्यस्ति। चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति। अष्टौ ज्ञानानि। सप्त संयमाः, नैव संयमो नैव संयमासंयमो नैवासंयमः एतत्स्थानं नास्ति। चत्वारि दर्शनानि। द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, अलेश्या अपि अस्ति, अत्र द्रव्येण षड्लेश्या इति भणिते शरीरे षड्वर्णा गृहीतव्याः। भावेन षड्लेश्या इति कथिते योगकषायाः षड्भेदस्थिता गृहीतव्याः।

उक्तं च—

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा<sup>१</sup>।

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिदा होई<sup>२</sup>।।

भव्यसिद्धिकाः अभव्यसिद्धिकाः सन्ति, नैव भव्यसिद्धिकाः नैवाभव्यसिद्धिका एतत्स्थानं नास्ति। षट् सम्यक्त्वानि। संज्ञिनोऽसंज्ञिनः सन्ति, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति। आहारिणोऽनाहारिणः सन्ति। साकारोपयुक्ता वा अनाकारोपयुक्ता

पर्याप्तक जीवों के चौदह जीवसमासों में सात पर्याप्तक जीवसमास होते हैं, अतीत-जीवसमास उनके नहीं होता है। छह पर्याप्तियों में से उनके छह, पाँच और चार पर्याप्तियाँ होती हैं, अतीतपर्याप्ति अवस्था उन पर्याप्त जीवों में नहीं होती है। पर्याप्त जीवों में दशप्राणों में से अपनी-अपनी योग्यतानुसार दश, नव, आठ, सात, छह और चार प्राण होते हैं, वे अतीतप्राण नहीं होते हैं। उनके चारों संज्ञाएं होती हैं तथा क्षीणसंज्ञा वाले भी होते हैं।

पर्याप्त जीवों में चारों गतियाँ होती हैं और उनके सिद्धगति नहीं है। एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ होती हैं तथा अतीतजाति अवस्था वहाँ नहीं है। पृथ्वीकायिक आदि छहों काय पर्याप्त जीवों में पाई जाती है, वे अकाय—कायरहित नहीं होते हैं। उन पर्याप्तक जीवों के पन्द्रह योगों में से औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, आहारकमिश्र और कार्मणकाययोग के बिना ग्यारह योग होते हैं और वे अयोगी भी होते हैं। उनमें तीनों वेद होते हैं और वे अपगत वेदी भी होते हैं। उनमें चारों कषाय हैं और अकषाय भी है। पर्याप्त जीवों में आठों ज्ञान होते हैं। उनमें सातों संयम होते हैं किन्तु संयम, संयमासंयम, और असंयम इन तीनों से रहित स्थान नहीं होता है। उनमें चारों दर्शन होते हैं। द्रव्य और भाव के भेद से छहों लेश्याएं होती हैं और अलेश्यास्थान भी होता है। यहाँ द्रव्य से छहों लेश्याएं होती हैं ऐसा कथन करने पर शरीर सम्बन्धी छह वर्णों का ही ग्रहण करना चाहिए। भाव से छहों लेश्याओं के कथन से योग और कषायों के छह भेदों को प्राप्त मिश्रित अवस्था को ग्रहण करना चाहिए।

कहा भी है—

गाथार्थ—वर्ण नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले शरीर के वर्ण को द्रव्यलेश्या कहते हैं और कषाय के उदय से अनुरजित योग की प्रवृत्ति भावलेश्या कही जाती है।

भव्यमार्गणा की अपेक्षा उन पर्याप्त जीवों में भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार होते हैं किन्तु भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान उनमें

द्रव्येण कापोत-शुक्ललेश्ये, भावेन षड्लेश्याः, यस्मात् सर्वकर्मणो विस्त्रसोपचयः शुक्लो भवति तस्माद् विग्रहगतौ वर्तमानसर्वजीनानां शरीरस्य शुक्ललेश्या भवति, पुनः शरीरं गृहीत्वा यावत्पर्याप्तिपूर्णतां करोति तावत्

पुनः उन अपर्याप्त अवस्था वाले जीवों के चारों गतियाँ होती हैं, एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ होती हैं, पृथ्वीकाय आदि छहों काय होते हैं, औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र, आहारकमिश्र, और कार्मणकाययोग ये चार योग होते हैं। तीनों वेद हैं तथा अपगतवेदरूप स्थान भी है। चारों कषाएं हैं

### पर्याप्त जीवों के सामान्य-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	७	६प.	१०१९	४	४	५	६	११ औ. मि. वै. मि. आ. मि. कर्म. के विना	३	४	८	७	४	६ द्रव्य भाव	२ भव्य अभव्य	६	२ संज्ञी असंज्ञी	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

षड्वर्ण-परमाणुपुञ्ज-निष्पद्यमानशरीरत्वात् तस्य शरीरस्य लेश्या 'कापोतलेश्या' इति भण्यते। एवमपर्याप्तावस्थायां द्वे शरीरलेश्ये भवतः। भावेन षड्लेश्याः इति कथिते नारक-तिर्यग्भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवानामपर्याप्तकाले कृष्ण-नील-कापोतलेश्या भवन्ति। सौधर्माद्युपरिमदेवा नामपर्याप्तकाले तेजः-पद्म-शुक्ललेश्या भवन्ति।

भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वेन विना पञ्च सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽनुभया वा, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ता वा तदुभयेन युगपदुपयुक्ता अपि सन्ति\*२।

इंदौरमहानगरे सुदामानगरकालोनीमध्ये वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे चैत्रकृष्णामावस्यायां जिनमंदिरस्योपरि त्रिचतुर्विंशतितीर्थकराणां चरणानि स्थापयितुं मया प्रेरणा कृता। इमे द्वासप्ततितीर्थकरा अस्माकं सर्वभाक्तिकानां च सर्वसौख्यं प्रयच्छन्तु।

तथा अकषायरूप स्थान भी है। मनःपर्यय और विभंगज्ञान ( कुअवधिज्ञान ) के बिना छह ज्ञान होते हैं। सामायिक, छेदोपस्थापना, यथाख्यात संयम और असंयम ये चार संयम होते हैं। चारों दर्शन होते हैं।

लेश्या की अपेक्षा अपर्याप्त जीवों के द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं होती हैं और भाव से छहों लेश्याएं हैं। जिस कारण से सम्पूर्ण कर्मों का विस्त्रसोपचय शुक्ल ही होता है इसलिए विग्रहगति में विद्यमान सम्पूर्ण जीवों के शरीर की शुक्ललेश्या होती है पुनः शरीर को ग्रहण करने के बाद जब तक पर्याप्तियों को पूर्ण करता है तब तक छह वर्ण वाले परमाणुओं के पुंजों से शरीर की उत्पत्ति होती है इसलिए उस शरीर की कापोत लेश्या कही जाती है। इस प्रकार अपर्याप्त अवस्था में शरीर सम्बन्धी दो ही लेश्याएं मानी गई हैं। आगे भाव की अपेक्षा छहों लेश्याएं होती हैं ऐसा कथन करने पर नारकी, तिर्यञ्च, भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिर्वासी देवों के अर्याप्त काल में कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं तथा सौधर्म आदि ऊपर के देवों में अपर्याप्त काल में पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं।

भव्यमार्गणा की अपेक्षा अपर्याप्त जीवों में भव्यसिद्धिक और अभव्य सिद्धिक दोनों होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व होते हैं। संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाएं वहाँ पाई जाती हैं तथा संज्ञी-असंज्ञी दोनों विकल्पों से रहित अवस्था भी होती है। आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीव रहते हैं। साकार और अनाकार दोनों उपयोग वाले जीव रहते हैं तथा युगपत् दोनों उपयोगों से युक्त जीव भी होते हैं।

इंदौर ( म.प्र. ) महानगर की सुदामानगर कालोनी में वीरनिर्वाण संवत् पचीस सौ बाईस ( २५२२ ) में चैत्र कृष्णा अमावस तिथि को मैंने वहाँ के निर्माणाधीन जिनमंदिर के ऊपर तीन

\*नं. २

अपर्याप्त जीवों के सामान्य-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ १ मि. २ सा. ४ अवि. ६ प्र. १३सयो.	७ अप. ५ ४	६अप. ५ ४	७ ७ ५ ४ ३	४ मं. क	४ ४ ५ ६	५ ५ ५ ६	६ ६ ६ ६	४ औ. मि. वै. मि. आ. मि. कर्म.	३ ४ ४ ४	४ मन. विभं. विना	६ सामा. छे यथा. असं.	४ ४ ४ ४	४ द्र. २ का. शु. भा. ६	२ भ. अ.	५ विना मि. सम्यग्मि.	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

धर्मतीर्थस्य कर्तारः त्रिचतुर्विंशतिर्जिनाः।

नमस्तेभ्यः त्रिशुद्धयाथ, त्रैलोक्याग्रपदाप्तये\*॥१॥

संप्रति मिथ्यादृष्टीनां सामान्यालापो भण्यते—

मिथ्यादृष्टिजीवानामोघालापे भण्यमाने एकं गुणस्थानमस्ति, चतुर्दश जीवसमासाः, षट्-पञ्च-चतुःपर्याप्त-यस्तथैवापर्याप्तयश्च। दश-नव-अष्ट-सप्त-षट्-चतुःप्राणास्तथैव सप्त-सप्त-षट्-पञ्च-चतुस्त्रिप्राणाश्चापर्याप्तानां प्राणाः। चतुःसंज्ञाः, चतुर्गतयः, पञ्च जातयः, षट् कायाः, आहारद्विकेन विना त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ता वा भवन्ति\*३।

चौबीसी तीर्थकरों के बहत्तर चरण स्थापित करने की प्रेरणा दी। ये ७२ तीर्थकर हमारे एवं सभी भाक्तिकों के लिए सर्वसुख प्रदान करें यही अभिलाषा है।

अब मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहे जाते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीवों के ओघालाप का कथन करने पर उनमें एक गुणस्थान, चौदहों जीवसमास हैं। छह, पाँच और चार पर्याप्तियाँ होती हैं तथा इसी प्रकार छह, पाँच और चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीवों के छहों पर्याप्तियाँ और अपर्याप्त के छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी पर्याप्त के मन के बिना पाँच पर्याप्तियाँ एवं अपर्याप्त के पाँच अपर्याप्तियाँ होती हैं, विकलत्रय पर्याप्तकों के पाँच पर्याप्तियाँ तथा अपर्याप्तकों के पाँच अपर्याप्तियाँ हैं, एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के चार पर्याप्तियाँ एवं अपर्याप्तकों के चार अपर्याप्तियाँ होती हैं।

प्राणों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीवों के दश प्राण होते हैं और अपर्याप्त के सात प्राण होते हैं। पञ्चेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्त के नौ प्राण एवं अपर्याप्त के सात प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के आठ प्राण एवं अपर्याप्त के छह प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय वाले पर्याप्त जीवों के सात प्राण एवं अपर्याप्त के पाँच प्राण होते हैं। दो इन्द्रिय पर्याप्त जीवों के छह प्राण तथा अपर्याप्तक के चार प्राण होते हैं। एकेन्द्रिय पर्याप्तक के चार प्राण और अपर्याप्तक के तीन प्राण होते हैं।

संज्ञा की अपेक्षा चार संज्ञाएं होती हैं, चारों गतियाँ हैं, पाँचों जातियाँ हैं और छहों काय होते हैं। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना तेरह योग हैं, तीनों वेद हैं, चारों कषाएं होती

नं. ३

मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६ प. ६ अप.	१०।७ १।७	४	४	५	६	१३ आ. द्वि. विना	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	६ द्र. ६ भा.	२ भ. अभ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार असाकार
		५ प. ५ अप.	८।६ ७।५																
		४ प. ४ अप.	६।४ ४।३																

१. १९-३-१९९६ को सुदामानगर-इंदौर में तीन चौबीसी के चरण स्थापना की प्रेरणा दी थी। पुनः वहाँ चरण के स्थान पर ७२ प्रतिमाओं के विराजमान करने की योजना निर्णीत हुई जो अब साकार हो चुकी है।



तेषामेव मिथ्यादृष्टीनां पर्याप्तौघालापे कथ्यमाने अस्त्येकं गुणस्थानं, सप्त जीवसमासाः, षट्-पञ्च-चतुःपर्याप्तयः दश-नव-अष्ट-सप्त-षट्-चतुःप्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतुर्गतयः, एकेन्द्रियादि-पञ्चजातयः, पृथिवीकायादिषट्कायाः, दश योगाः औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-आहारद्विक-कार्मणकाययोगन्यूनाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने आद्ये, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयोगिनोऽनाकारोपयोगिनः वा भवन्ति<sup>४</sup>।

तेषामेवापर्याप्तालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, सप्तापर्याप्तजीवसमासाः, षट्-पञ्च-चतुरपर्याप्तयः, सप्त-सप्त-षट्-पञ्च-चतुःत्रिप्राणाः, चतुःसंज्ञाः, चतुर्गतयः पञ्चजातयः, षट्कायाः, त्रयो योगाः-औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन बिना कुमतिकुश्रुतनामनी द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्य-सिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः,

हैं, तीन अज्ञान हैं, असंयम है, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन होते हैं, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं रहती हैं, भव्य और अभव्यसिद्धिक दोनों होते हैं, सम्यक्त्व की अपेक्षा उन मिथ्यादृष्टि पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकार के जीवों को मिथ्यात्व रहता है, वे संज्ञी और असंज्ञी दोनों होते हैं, आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं एवं साकार-अनाकार दोनों उपयोगों से युक्त होते हैं।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसम्बन्धी ओघालाप कहने पर—एक मिथ्यात्व गुणस्थान, पर्याप्त सम्बन्धी सात जीवसमास, संज्ञी के छहों पर्याप्तियाँ, असंज्ञी और विकलत्रयों के पाँचपर्याप्तियाँ, एकेन्द्रियों के चार पर्याप्तियाँ हैं। संज्ञीपर्याप्त के दश प्राण और असंज्ञी के नौ प्राण, चतुरिन्द्रिय के आठ प्राण, तीन इन्द्रिय के सात प्राण, दो इन्द्रिय के छह प्राण और एकेन्द्रिय के चार प्राण होते हैं। संज्ञा की अपेक्षा पर्याप्त जीवों के चारों संज्ञाएं हैं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ पृथ्वीकायादि छहों काय, आहारकद्विक और अपर्याप्त सम्बन्धी तीनों योगों के बिना दश योग, तीनों वेद, चारों कषाएं, तीनों अज्ञान, असंयम, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक और असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकाल सम्बन्धी ओघालाप कहने पर—एक मिथ्यात्व गुणस्थान तथा अपर्याप्त सम्बन्धी सात जीवसमास होते हैं। संज्ञी जीवों के छहों अपर्याप्तियाँ, असंज्ञी और विकलत्रय जीवों के पाँच अपर्याप्तियाँ तथा एकेन्द्रिय जीवों के चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। उन मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त जीवों में संज्ञी के सात प्राण, असंज्ञी के सात प्राण, चतुरिन्द्रियों

## नं. ४

## मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ प. ५ प. ४ प.	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म. ४ व. ४ औ. १ वै. १	३	४	३	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	६ द्र. ६ भा.	२ भ. अभ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयोगिनोऽनाकारो-पयोगिनो वा भवन्ति<sup>६५</sup>।

सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्यालापे कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं सासादनमेव, द्वौ जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः। दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः आहारद्विकेन विना, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ता अपि सन्ति<sup>६६</sup>।

के छह प्राण, तीन इन्द्रिय वालों के पाँच प्राण, दो इन्द्रिय जीवों के चार प्राण और एकेन्द्रियों के तीन प्राण होते हैं। इसी प्रकार अपर्याप्त मिथ्यादृष्टियों के चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ, पृथ्वीकायादि छहों काय और औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र तथा कार्मणकाययोग ये तीन योग होते हैं, तीनों वेद हैं, चारों कषाएं हैं, कुअवधिज्ञान के बिना दो-कुमति-कुश्रुतज्ञान होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में सभी जीवों के कोई भी संयम न रहकर मात्र असंयम होता है, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य की अपेक्षा कापोत और शुक्ल ये दो लेश्या एवं भाव की अपेक्षा छहों लेश्याएं होती हैं। वे अपर्याप्त जीव भव्यसिद्धिक भी होते हैं और अभव्यसिद्धिक भी होते हैं, उनके कोई सम्यक्त्व न होकर मिथ्यात्व रहता है, वे संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं, आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं, वे साकारोपयोग और अनाकारोपयोग दोनों प्रकार के अलग-अलग उपयोगों से समन्वित होते हैं।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप का कथन करने पर—एक सासादन सम्यग्दृष्टि नामक गुणस्थान होता है, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त नाम के दो जीवसमास होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, पर्याप्त के दश प्राण और अपर्याप्त के सात

\*नं. ५

मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ ऊं.	६ अप. ५ अप. ४ अप.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ. मि. वै. मि. कार्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ का. शु. भा. ६	२ भ. अभ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ६

सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.पं. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	४	१ पंचे	१ त्रस.	१३ आ. द्वि. विना.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सासा	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तकानामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षड्पर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञा, तिस्रो गतयः नरकगत्या विना, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायाः, त्रयो योगाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन विना द्वेऽज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोत-शुक्ललेश्ये, भावेन षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः,

उपर्युक्त सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के अपर्याप्त अवस्था में असंयम रहता है, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन होते हैं, द्रव्य से कापोत और शक्ल लेश्या एवं भाव से छहों लेश्याएं होती

**सासादन सम्यग्दृष्टियों के पर्याप्त-आलाप.**

[illegible]

असंयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्येनालापे कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयोऽपर्याप्तयश्च, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः,

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य से ओघालाप कहने पर — उनमें एक चतुर्थ गुणस्थान होता है, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीव समास होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ तथा

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	३	१	१	३	३	४	२	१	२	द्र.२	१	१	१	२	२
सा.	सं.अ.	अप.	अप.		न.	पंचे	त्रस.	औ.मि.			कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	सासां	सं.	आहार	अनाहार
					विना.			वै.मि.			कुश्रु.		अच.	शु.					सकार
								कार्म.						भा.६					अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्यग्मिथ्यात्व	१ सं. पं.	६	१०	४	४	१ पंचे.	१ त्रस.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ ज्ञान. अज्ञा. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सम्यग्मिथ्यात्व	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनकार

कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१०</sup>।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां पर्याप्तानामालापे कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रिज्ञानानि, असंयमः, त्रिदर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*११</sup>।

छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, दशप्राण ( पर्याप्त की अपेक्षा ) और सात प्राण ( अपर्याप्त की अपेक्षा ) होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, चारों गतियाँ होती हैं, एक पञ्चेन्द्रिय जाति होती है, एक त्रसकाय होता है, आहारकद्विक के बिना तेरह योग होते हैं, तीनों वेद होते हैं, चारों कषाएं होती हैं, तीन अज्ञान होते हैं, असंयम होता है, तीन दर्शन होते हैं, द्रव्य और भावरूप छहों लेश्याएं होती हैं, भव्यसिद्धिक होते हैं, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ) होते हैं, संज्ञिक होते हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के होते हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकाल सम्बन्धी ओघालाप कहने पर—उनमें एक चौथा गुणस्थान होता है, संज्ञीपर्याप्तक एक जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, चारों गतियाँ होती हैं, एक पञ्चेन्द्रिय जाति होती है, एक त्रसकाय होता है, आहारकद्विक और अपर्याप्तसम्बन्धी तीन योगों के बिना दश योग होते हैं, तीनों वेद होते हैं, चारों कषाएं होती हैं, तीन ज्ञान होते हैं, एक असंयम होता है, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन होते हैं, द्रव्य और भावरूप छहों लेश्याएं होती हैं, भव्यसिद्धिक होते हैं, औपशमिक, क्षायिक

## \*नं. १०

## असंयतसम्यग्दृष्टियों के सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.पं. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	४	१ पंचे.	१ त्रस.	१३ आ.द्वि. विना	३	४	३ म. श्रु. अव.	१ असं.	३ के. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## \*नं. ११

## असंयतसम्यग्दृष्टियों के पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६ प.	१०	४	४	१ पंचे.	१ त्रस.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ म. श्रु. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तानामोघप्ररूपणे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोऽपर्याप्त-जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः चतस्रो गतयः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयो योगाः, स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रिज्ञानानि, असंयमः, त्रिदर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन षड्लेश्याः, नरकादागत्य मनुष्येषूत्पन्ना-संयतसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले कृष्णनीलकापोतलेश्या लभ्यन्ते। भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, अनादिमिथ्यादृष्टयो वा सादिमिथ्यादृष्टयो वा चतसृष्वपि गतिषु उपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा स्थितजीवा न कालं कुर्वन्ति।

कश्चिदाह — उपशमसम्यग्दृष्टयो न प्रियन्त इति कथं ज्ञायते?

आचार्यः प्राह — आचार्यवचनाद् व्याख्यानाच्च ज्ञायते, किन्तु चारित्रमोहोपशामका मृता देवेषूत्पद्यन्ते

और क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं, संज्ञिक होते हैं, आहारक होते हैं तथा साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसम्बन्धी ओघालाप कहने पर—उनमें एक चौथा गुणस्थान होता है तथा एक संज्ञी-अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण (मन, वचनबल और स्वासोच्छ्वास को छोड़कर), चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र और कार्मण ये तीन योग, स्त्रीवेद के बिना दो वेद, चारों कषाएं, मति, श्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान, असंयम, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या तथा भाव से छहों लेश्याएं होती हैं। छहों लेश्याएं होने का यह कारण है कि नरकगति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त काल में कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। लेश्याओं के आगे वे असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तक जीव भव्यसिद्धिक होते हैं, उनमें उपर्युक्त तीनों सम्यक्त्व होते हैं क्योंकि अनादिमिथ्यादृष्टि अथवा सादिमिथ्यादृष्टि जीव चारों ही गतियों में उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण करके पाये जाते हैं किन्तु मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

शंका — यह कैसे जाना जाता है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मरण नहीं करते हैं?

समाधान — आचार्यों के वचन और सूत्र व्याख्यान से जाना जाता है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मरते नहीं हैं किन्तु चारित्रमोह के उपशम करने वाले जीव मरते हैं और देवों में उत्पन्न होते हैं अतः उनकी अपेक्षा अपर्याप्त काल में उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है। वेदकसम्यक्त्व तो देव और मनुष्यों के अपर्याप्तकाल में पाया ही जाता है क्योंकि वेदकसम्यक्त्व के साथ मरण को प्राप्त हुए देव और मनुष्यों के परस्पर गमनागमन में कोई विरोध नहीं पाया जाता है। कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा तो वेदकसम्यक्त्व तिर्यच और नारकी जीवों के अपर्याप्त काल में भी पाया जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व भी सम्यग्दर्शन के पहले बांधी गई आयु के बन्ध की अपेक्षा से चारों ही गतियों के अपर्याप्त काल में पाया जाता है इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के अपर्याप्त काल में तीनों ही सम्यक्त्व पाये जाते हैं।

भावार्थ — जैसे राजा श्रेणिक ने मिथ्यात्व अवस्था में यशोधर मुनिराज के गले में मरा हुआ सर्प डालते समय सप्तम नरक की आयु का बन्ध किया था। पुनः भगवान् महावीर के समवसरण में उन्हें क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी। जिसके कारण उन्होंने अपनी तीव्र भावविशुद्धि के

तानाश्रित्यापर्याप्तकाले उपशमसम्यक्त्वं लभ्यते। वेदकसम्यक्त्वं पुनः देवमनुष्ययोरपर्याप्तकाले लभ्यते, वेदकसम्यक्त्वेन सह मृतदेवमनुष्ययो-रन्योन्यगमनागमनविरोधाभावात्। कृतकृत्यवेदकं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वं तिर्यग्नारकयोरपर्याप्तकाले लभ्यते। क्षायिकसम्यक्त्वमपि चतुसृष्वपि गतिषु पूर्वार्थबुद्धं प्रतीत्यापर्याप्तकाले लभ्यते तेन त्रीणि सम्यक्त्वान्य-पर्याप्तकाले भवन्ति। संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२।

संयतासंयतानामोघालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः,

बल पर तैंतीस सागर की आयु को ८४ हजार वर्ष के रूप में अपवर्तित कर ली थी अतः उन्हें मरकर प्रथम नरक में जन्म लेना पड़ा। इसी अपेक्षा से यह नियम पुष्ट होता है कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर प्रथम नरक के अतिरिक्त छह नरकों में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं और नरक में पहुँचकर जब तक उसकी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती हैं तब तक अपर्याप्त अवस्था में भी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के सम्यग्दर्शन पाया जाता है इसमें कोई संदेह वाली बात नहीं है।

दूसरी बात चारित्रमोह के उपशम को प्राप्त उपशमसम्यग्दृष्टि के मरण सम्बन्धी उदाहरण में पाण्डव नकुल और सहदेव का उदाहरण स्पष्ट है कि अग्नि उपसर्ग के समय उनके तीन भ्राता युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन ने क्षपक श्रेणी पर चढ़कर घातिया कर्म नाशकर अंतकृत्केवली अवस्था से मोक्षपद प्राप्त किया और नकुल-सहदेव ने उपशम सम्यक्त्व के साथ उपशम श्रेणी पर आरोहण किया था अतः ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान में उपशमसम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र के साथ उन्होंने मरण करके सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। भविष्य में वे मनुष्य जन्म धारण कर नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे। इसी अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि जीव के अपर्याप्तकाल में उपशम सम्यक्त्व स्वीकार किया गया है किन्तु साधारणरूप से सादि अथवा अनादिमिथ्यादृष्टि जीव के अपर्याप्तकाल में उपशमसम्यक्त्व नहीं माना जाता है।

संयतासंयत जीवों के ओघालाप कहने पर—एक पाँचवां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यच और मनुष्य ये दो गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, नौ योग (चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिककाययोग), तीनों वेद चारों कषाएँ, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य की अपेक्षा छहों

\*नं. १२

असंयतसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्त-आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं. अ.	६ अप.	७ अप.	४	४	१ पंच.	१ त्रस.	३ औ.मि.१ वै.मि.१ कर्म.१	२ स्त्री. विना.	४	३ मति. श्रुत. अव	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.२ का.शु. भा.६	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः। केचित् शरीरनिर्वर्तनार्थमागतपरमाणुवर्णं गृहीत्वा संयतासंयतादीनां भावलेश्यां प्ररूपयन्ति, तत्र घटते।

कुतो न घटते?

किंच, द्रव्यभावलेश्ययोर्भेदाभावात् 'लिम्पतीति लेश्या' इति वचनव्याघाताच्च। अतः कर्मलेपहेतोर्योगकषायौ एव भावलेश्येति गृहीतव्यम्।

भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता वा भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१३।

लेश्याएं एवं भाव की अपेक्षा तेज ( पीत ), पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं होती हैं।

कुछ आचार्य ऐसा मानते हैं कि शरीर को बनाने हेतु आए हुए परमाणुओं के वर्ण को ग्रहण करके संयतासंयत जीवों के भावलेश्या बनती है, किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है।

क्यों घटित नहीं होता है?

क्योंकि वैसा मानने पर द्रव्य और भावलेश्या में कोई भेद ही नहीं रह जाता है और “जो लिम्पन करती है उसे लेश्या कहते हैं” इस आगमवचन का व्याघात भी होता है। इसलिए “कर्मलेप का हेतु होने से योग और कषाय से अनुरञ्जित प्रवृत्ति ही भावलेश्या है” ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

लेश्याओं के इस कथन के पश्चात् संयतासंयत जीवों में भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक होते हैं, क्योंकि अभव्यजीवों के देशसंयतपना होता ही नहीं है। पुनश्च उन संयतासंयतों के तीनों सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक होते हैं और साकार तथा अनाकार दोनों उपयोग वाले होते हैं।

भावार्थ —इस संयतासंयत नामक पंचमगणुस्थान में तिर्यचगति को सम्मिलित करने के विषय में यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि पशु-पक्षी आदि पञ्चेन्द्रिय तिर्यच भी मनुष्यों के समान अणुव्रतों को ग्रहण कर देशसंयमी बन सकते हैं, जबकि स्वर्ग जैसी उत्तमगति में उत्पन्न देवताओं के पंचम गुणस्थान नहीं हो सकता है। चूँकि देवताओं में संयम ग्रहण की योग्यता का सर्वथा अभाव रहता है।

पुराणग्रन्थों के अनुसार हाथी, सिंह आदि पशु एवं गृद्ध पक्षी आदि अनेक तिर्यचों ने मुनियों के मुखारविन्द से उपदेश ग्रहण करके अणुव्रत धारण किये और उसके प्रभाव से देवगति को प्राप्त किया है।

\*नं. १३

संयतासंयतों के आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
हृं	सं.प.				म.	पंचे.	त्रस.	म.४			मति	मयमः	के.द.	भा.३	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
					ति.			व. ४			श्रुत	विना.	विना.	शुभ.		क्षा.		अनाकार	
								औ.१			अव.					क्षायो.			



प्रमत्तसंयतानामोघालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः, षड् अपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता वा भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१४।

अप्रमत्तसंयतानामोघालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, असातावेदनीयस्योद्दीरणाभावात् आहारसंज्ञाप्रमत्तसंयतस्य नास्ति। कारणभूतकर्मोदयसंभवात् उपचारेण भयमैथुनपरिग्रहसंज्ञाः सन्ति। मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नवयोगाः, त्रयो वेदा-भाववेदापेक्षया, चत्वारः

प्रमत्तसंयत जीवों के ओघालाप कहने पर—उनमें एक प्रमत्तसंयत गुणस्थान होता है तथा संज्ञीपर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, और सात प्राण ( पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा ) होते हैं। उनके चारों संज्ञाएं, एक मनुष्यगति, एक पञ्चेन्द्रिय जाति, एक त्रसकाय, ग्यारह योग ( मन के ४, वचन के ४, औदारिक और आहारकद्विक ), तीनों वेद, चारों कषाय, केवलज्ञान के अतिरिक्त चारों ज्ञान, तीन संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ), तीन दर्शन ( चक्षु, अचक्षु और अवधि ), द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से पीत, पद्म और शुक्ललेश्या भव्यसिद्धिक, तीनों सम्यक्त्व ( उपशम, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

भावार्थ—छठे प्रमत्तसंयत नामक गुणस्थान में जो अपर्याप्त अवस्था बतलाई है वह आहारक शरीर की अपेक्षा है। अर्थात् आहारकशरीर की प्रगटता इसी गुणस्थान में होती है और जब तक उस आहारकशरीर सम्बन्धी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती हैं तब तक वह निर्वृत्त्यपर्याप्त अवस्था ही अपर्याप्त संज्ञा से कही गई है। आहारकशरीर के अतिरिक्त मात्र औदारिक शरीर वाले प्रमत्तसंयतों में अपर्याप्त नहीं होते हैं, उनमें केवल पर्याप्तक ही होते हैं।

अप्रमत्तसंयत जीवों के ओघालाप कहने पर—उनके एक सातवां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, भय, मैथुन और परिग्रह ये तीन संज्ञाएं हैं क्योंकि असातावेदनीय कर्म की उदीरणा का अभाव हो जाने से अप्रमत्तसंयत जीवों के आहारसंज्ञा नहीं होती है किन्तु भय आदि संज्ञाओं के कारणभूत कर्मों का उदय संभव है इसलिए उपचार से भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाएं हैं।

\*नं. १४

प्रमत्तसंयत-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	१	१	१	११	३	४	४	३	३	द्र.६	१	३	१	१	२
प्र	सं.पं.	पं.	पं.	म.	पंचे	त्रस.	म.४	व.४	के.	सा.	के.द.	भा.३	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार	अनाकार	
प्र	सं.अ.	अप.	अप.				औ.१	आहा.२	परि.	विना.	शुभ.	क्षायो.							

कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि त्रयःसंयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिका, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*<sup>१५</sup>।

अपूर्वकरणानामोघालापे कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्त्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः।

कश्चिदाह-ध्यानलीनापूर्वकरणानां भवतु नाम वचनबलस्यास्तित्वं, भाषापर्याप्तिर्ज्ञित-पुद्गलस्कंधजनित-शक्तिसद्भावात्। न पुनः वचनयोगः काययोगो वा इति चेत् ?

संज्ञा के पश्चात् उन अप्रमत्तसंयतों के एक मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाएं, केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान, तीन संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ), केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

**भावार्थ**—पंचमगुणस्थान के पश्चात् इन गुणस्थानवर्ती जीवों में जो तीनों वेदों का अस्तित्व बतलाया है उसका अभिप्राय भाववेद से है। अर्थात् द्रव्य से तो इनके एक पुरुषवेद ही होता है और भाव से स्त्री तथा नपुंसक ये दोनों वेद नवमें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। यह कथन “सत्प्ररूपणा” ग्रन्थ के सूत्रों में विस्तार से आया है अतः इस आलाप अधिकार में भी विद्वानों को सर्वत्र ऐसा ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—एक आठवां गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, आहारसंज्ञा के बिना शेष तीन संज्ञाएं, एक मनुष्यगति, एक पञ्चेन्द्रियजाति, एक त्रसकाय और नौ योग ( चार मनोयोग, चार वचनयोग, एक औदारिककाययोग ) होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

ध्यान में लीन अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवों के वचनबल का अस्तित्व भले ही मान लिया जावे क्योंकि भाषापर्याप्ति नामक पुद्गलस्कन्धों से उत्पन्न हुई शक्ति का उनके सद्भाव पाया जाता है, लेकिन उनके वचनयोग या काययोग का सद्भाव तो नहीं मानना चाहिए ?

\*नं. १५

अप्रमत्तसंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
कप्र.	१	१	६	१०	३	१	१	१	३	४	४	३	३	६	१	३	१	१	२
	सं.			आहा.	म.	पं.	म.	म.४			के.	सा.	विनि.	द्र.	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
	प.			विना.			प्रा.	व.४			विना.	छे.	विनि.	३		क्षा.			अनाकार
								औ.१			परि.		४	भा.		क्षायो.			
													शुभ.						

आचार्यः प्राह-नैतद् वक्तव्यं, अन्तर्जल्पप्रयत्नस्य कायगतसूक्ष्मप्रयत्नस्य च तत्र सत्त्वात्।

त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, परिहारशुद्धिसंयमेन विना द्वौ संयमौ त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्याकारोपयुक्ता वा\*<sup>१६</sup>।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनां प्रथमभागे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, द्वे संज्ञे, अपूर्वकरणस्य चरमसमये भयस्य उदीरणोदयो नष्टस्तेन भयसंज्ञा नास्ति।

मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायो, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ताः,

आचार्यदेव इसका समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ध्यान अवस्था में अन्तर्जल्प के लिए वचनरूप वचनयोग और कायगत सूक्ष्म प्रयत्नरूप काययोग का सत्त्व अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवों के पाया ही जाता है इसलिए वहाँ वचनयोग और काययोग भी संभव है।

योगों के पश्चात् उन अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवों का कथन करने पर उनमें तीनों वेद, चारों कषायों, चार ज्ञान (केवलज्ञान के बिना), सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम (परिहारविशुद्धि संयम नहीं है), केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से एक शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, दो सम्यक्त्व (औषमिक और क्षायिक), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती के प्रथम (सवेद) भागवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर— उनमें एक नवमाँ, गुणस्थान होता है, उनके एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, मैथुन और परिग्रह ये दो संज्ञाएं हैं। दो संज्ञाएं इसलिए मानी गई हैं कि अपूर्वकरण गुणस्थान के अन्तिम समय में भय की उदीरणा तथा उदय समाप्त हो जाता है इसलिए अनिवृत्तिकरण में भय संज्ञा नहीं पाई जाती है।

उसके आगे नवमें गुणस्थानवर्ती जीवों के एक मनुष्यगति, एक पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, तीनों वेद, चारो कषाएं, केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से एक शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औषमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकार और अनाकार उपयोगी होते हैं।

\*नं. १६

अपूर्वकरण-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	३	४	४	२	३	द्र.६	१	२	१	१	२
ऊँ	प.			आहा.	म.	पूँ	पूँ	म.४			के.	सा.	विना.	भा.१	भ.	क्षा.	सं.	आहार	साकार
	सं.			विना.				व.४			विना.	छे.	द.	शुक्ल		औ.			अनाकार
								औ.१					के.						

भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१७।

द्वितीयस्थानस्थित-अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, परिग्रहसंज्ञा, अन्तरकरणं कृत्वा पुनः अन्तर्मुहूर्तं गत्वा वेदोदयो नष्टस्तेन मैथुनं, संज्ञा नास्ति। मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८।

**भावार्थ**—नवमें गुणस्थान के मूल में दो भेद होते हैं-१. सवेदभाग २. अवेदभाग।

इनमें से अवेद भाग को चार भागों में विभक्त किया है, जिनके एक-एक भाग में संज्वलन की एक-एक कषाय की उदय व्युच्छिन्ति होती है पुनः अंतिम अवेद भाग तक संज्वलन लोभ कषाय की सूक्ष्मकृष्टि विद्यमान रहती है जिसकी सत्ता दशवें गुणस्थान तक पाई जाती है। यहाँ नवमें गुणस्थान के पाँचों भागों के अलग-अलग ओघालाप कह कर विषय को बहुत ही सरल कर दिया गया है। इसीलिए पाँचों के कोष्ठक भी अलग-अलग दिये गये हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के द्वितीय भागवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—उनके एक नौवां गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त, जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण एवं एक परिग्रहसंज्ञा, होती है। इस गुणस्थान में एक परिग्रह संज्ञा के होने का कारण यह है कि अन्तरकरण करने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त जाकर वेद का उदय नष्ट हो जाता है इसलिए द्वितीय भागवर्ती जीव के मैथुन संज्ञा नहीं रहती है। संज्ञा आलाप के पश्चात् उनके एक मनुष्यगति पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पूर्वोक्त नौ योग, अपगतवेद, चारों कषाएं, चार ज्ञान, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारी, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

\*नं. १७

**अनिवृत्तिकरण-प्रथमभाग-आलाप**

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अनि. प्र. भा.	१ सं.प.	६	१०	२ मै. परि.	१ म.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व. ४ औ.१	३	४	४ के. विना.	२ सा. छे.	३ के.द. विना.	६ द्र. १ भा.	१ भ.	२ औ. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

\*नं. १८

**अनिवृत्तिकरण-द्वितीयभाग-आलाप**

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अनि. द्वि. भा.	१ सं.प.	६	१०	१ मै.	१ म.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपग.	४	४ के. विना.	२ सा. छे.	३ के.द. विना.	६ द्र. १ भा.	१ भ.	२ औ. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

चतुःस्थानस्थित-अनिवृत्तिकरणानां कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, परिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, द्वौ कषायौ, क्रोधोदये विनष्टे पुनोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा मानोदयोऽपि नश्यति तेन मानकषायोऽत्र नास्ति। चत्वारि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*२०</sup>।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के चतुर्थभागवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—एक नवमां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, एक परिग्रह संज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, पूर्वोक्त नौ योग, अपगतवेद, माया और लोभ ये दो कषाएं होती हैं। दो कषायों के होने का कारण यह है कि क्रोधकषाय का उदय नष्ट होने पर पुनः एक अन्तर्मुहूर्त

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अनि. तृ. भा.	१ सं.प.	६ १०		१ परि.	१ म.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपरा.	३ विना. की	४ के. विना.	२ सा. छे.	३ के.द्र. विना.	६ द्र. १ भा.	१ भ.	२ औ. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अनि. चतु. भा.	१ सं.प.	६	१०	१ प.	१ म.	१ पंचे.	१ त्रस.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपग.	२ माया. ली	४ के. विना.	२ सा. छे.	३ के.द्र. विना.	६ द्र. १ भा.	१ भ.	२ औ. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

पंचमस्थानस्थित-अनिवृत्तिनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः परिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, लोभकषायः, मानोदये विनष्टे पुनः अन्तर्मुहूर्तं गत्वा मायोदयोऽपि नश्यति तेन मायाकषायस्तत्र नास्ति। चत्वारि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता, भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*२१</sup>।

सूक्ष्मसाम्पराधिकानामोघालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, सूक्ष्मपरिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायो, नव योगाः, अपगतवेदः, सूक्ष्मलोभकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे-द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं क्षाधिकं च। संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयोगिनो भवन्त्य-नाकारोपयोगिनो वा<sup>\*२२</sup>।

आगे जाकर मानकषाय का उदय भी नष्ट हो जाता है इसलिए मानकषाय इस भागवर्ती जीवों के नहीं है। कषाय के पश्चात् उन अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान होते हैं, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम होते हैं, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन होते हैं, द्रव्य से छहों लेश्याएं तथा भाव से एक शुक्ललेश्या होती है। वे भव्यसिद्धिक होते हैं, उनके औपशमिक और क्षाधिक ये दो सम्यग्दर्शन होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक होते हैं तथा साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पंचमभागवर्ती जीवों के भागवर्ती ओघालाप कहने पर—उनके एक नवमां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, परिग्रह संज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, पूर्वोक्त नौ योग, अपगतवेद, लोभकषाय है। यहाँ लोभकषाय होने का कारण यह है कि मानकषाय का उदय नष्ट हो जाने पर पुनः एक अन्तर्मुहूर्त आगे जाकर माया कषाय का उदय भी नष्ट हो जाता है इसलिए इस भाग में मायाकषाय नहीं पाई जाती है। आगे केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम, केवलदर्शन के बिना तीन

## \*नं. २१

## अनिवृत्तिकरण-पंचमभाग-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	१	१	१	१	९	०	१	४	२	३	६	१	२	१	१	२
अनि.	सं.प.			प.		पंचे.	त्रस.	म.४	०		के.	सा.	के.द्र.	द्र.	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
पंच.								व.४	अ			छे.	विना.	१		क्षा.			अनाकार
भा.								औ.१						भा.					

## \*नं. २२

## सूक्ष्मसाम्पराय-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	१	१	१	१	९	०	१	४	१	३	६	१	२	१	१	२
सू.	सं.प.			सू.	म.	पंचे.	त्रस.	म.४		सू.लो.	के.	सूक्ष्म.	के.द.	द्र.	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
				प.				व.४			विना.		विना.	१		क्षा.			अनाकार
								औ.१					भा.	शु.					

रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे।

दो चक्की दहकप्पे आहुदुयकोडिणिवुदे वंदे ॥१॥

मध्यप्रदेशस्थित-सिद्धवरकूटसिद्धक्षेत्रे वीराब्दे द्वाविंशत्यधिक पंचविंशतिशततमे चैत्र शुक्लासप्तम्यां अस्मत्संघसन्निध्येऽत्र पुनः त्रयोदशद्वीपरचनाया मन्दिरस्य शिलान्यासः कारितो महामहोत्सवेन भव्य भाक्तितजनैः। एषु त्रयोदशद्वीपेषु विराजयिष्यमाणाः सर्वा जिनप्रतिमा अस्माकं सर्वेषां श्रावकश्राविकाणां च मंगलं कुर्वन्तु।

मध्यलोकस्थितान् सर्वान्, अष्टापञ्चाशदुत्तराः।

चतुःशताकृत्रिमांस्तान्, जिनगेहन् नमाम्यहम् ॥१॥

उपशान्तकषायाणामोघालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, उपशान्तसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायो, नव योगाः, अपगतवेदः, उपशान्तकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, यथाख्यातशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या।

केन कारणेन शुक्ललेश्या किंचात्र कषायोदयो नास्तीति चेत् ?

अस्मिन् गुणस्थाने कर्म-नोकर्मलेपनिमित्तयोगोऽस्ति, अतएव शुक्ललेश्या कथ्यते।

दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से एक शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—उनके एक दशवां गुणस्थान होता है, एक संज्ञी पर्याप्तक जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण होते हैं, एक सूक्ष्मपरिग्रहसंज्ञा होती है, मनुष्यगति है, पंचेन्द्रिय जाति है तथा उनकी एक त्रसकाय है, चार मनोयोग होते हैं, चार वचन योग और एक काययोग ये नौ योग होते हैं। वे अपगतवेदी होते हैं, उनमें एक सूक्ष्मलोभ कषाय है, केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान हैं, एक सूक्ष्मसाम्परायविशुद्धि संयम है, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन हैं, द्रव्य से छहों लेश्याएं हैं और भाव से एक शुक्ललेश्या है, वे भव्यसिद्धिक हैं, उनमें औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—उनमें एक ग्यारहवां गुणस्थान है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, उपशान्त संज्ञा है अर्थात् इस ग्यारहवें गुणस्थान में समस्त संज्ञाएं उपशांत रहती हैं। क्योंकि यहाँ पर मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम रहता है इसलिए उसके निमित्त से होने वाली संज्ञाएं भी उपशान्त ही रहती हैं। आगे मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और एक औदारिक काययोग ) अपगतवेद, उपशान्तकषाय, केवलज्ञान के बिना चार ज्ञान, यथाख्यातशुद्धिसंयम, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से एक शुक्ल लेश्या होती है।

शंका—जब इस गुणस्थान में कषायों का उदय नहीं रहता है तो फिर यहाँ शुक्ललेश्या किस कारण से कही गई है ?

समाधान—इस गुणस्थान में कर्म और नोकर्म के लेप के निमित्तभूत योग का सद्भाव पाया जाता है इसलिए शुक्ललेश्या कही गई है।

भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२३।

क्षीणकषायाणां कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायो, नव योगाः, अपगतवेदः, क्षीणकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, यथाख्यातशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ताः भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४।

मध्यप्रदेशस्थित सनावदनगरे द्वाविंशत्यधिकपञ्चविंशतिशततमे चैत्रशुक्लाद्वादश्यां तिथौ अस्मत्संघसानिध्ये क्षुल्लकमोतीसागरजन्मभूमिस्थले 'णमोकारधाम' तीर्थस्य शिलान्यासः करितो भव्यश्रावकजनैः अस्मिन् तीर्थे स्थापयिष्यमाणाः

पुनः इस गुणस्थानवर्ती जीव भव्यसिद्धिक होते हैं, उनमें औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं, साकारोपयोगी तथा अनाकारोपयोगी होते हैं।

क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—एक बारहवां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, क्षीणसंज्ञा होती है। मनुष्यगति है, पञ्चेन्द्रिय जाति है, त्रसकाय, नौ योग, अपगतवेद, क्षीणकषाय, चार ज्ञान, यथाख्यात शुद्धिसंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या और भाव से एक शुक्ललेश्या है, वे भव्यसिद्धिक, क्षायिकसम्यक्त्वी, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

यहाँ क्षीणसंज्ञा होने का यह कारण है कि कषायों का यहाँ पर सर्वथा क्षय हो जाता है इसलिए संज्ञाओं का क्षीण हो जाना स्वाभाविक ही है।

मध्यप्रदेश में बसे हुये निमाड़ प्रान्त के एक “सनावद” नामक नगर में वीरनिर्वाण संवत् २५२२ में चैत्र शुक्ला द्वादशी तिथि को मेरे संघ सानिध्य में मेरे शिष्य पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर महाराज की जन्मभूमि में उनके गृहस्थावस्था के लघुभ्राता प्रकाश चन्द्र जैन द्वारा

\*नं. २३

उपशान्तकषाय-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	०	१	१	१	९	०	०	४	१	३	द्र.	१	२	१	१	२
१	सं.पं.			१	म.	पं.	त्रस.	म.४	१	अक.	के.	यथा.	के.द.	६	सं.	औ.	सं.	आहार	साकार
				१				व.४	१		विना.		विना.	भा.		क्षा.			अनाकार
								औ.१					१	शु.					

\*नं. २४

क्षीणकषाय-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	०	१	१	१	९	०	०	४	१	३	द्र.	१	१	१	१	२
१	सं.पं.			१	म.	पं.	त्रस.	म.४	१	क्षीण.	के.	यथा.	के.द.	६	भ.	क्षा.	सं.	आहार	साकार
				१				व.४	१		विना.		विना.	भा.					अनाकार
								औ.१					१	शु.					



पञ्चपरमेष्ठिमूर्तयो णमोकारमहामन्त्राक्षराणि चास्माकं सर्वभाक्तितानां च सर्वसौख्यं क्षेमं सुभिक्षं च वितरन्तु इति कामयामहे<sup>१</sup>।

अर्हन्तो मंगलं कुर्युः, सिद्धाः कुर्युश्च मंगलम्।

आचार्याः पाठकाश्चापि, साधवो मम मंगलम् ॥१॥

सयोगिकेवलिनं भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः।

केवली भगवान् कपाट-प्रतर-लोकपूरणगतः पर्याप्तोऽपर्याप्तो वा ?

प्रदत्त एक सुन्दर भूखण्ड पर “णमोकार धाम” नाम के एक नूतन तीर्थ का शिलान्यास भव्य श्रावकों के द्वारा किया गया। इस तीर्थ में स्थापित होने वाली पञ्चपरमेष्ठी भगवन्तों की मूर्तियाँ और णमोकार महामन्त्र के पैंतीसों अक्षर हम लोगों को तथा समस्त भक्तजनों के लिए सभी प्रकार के सुख, क्षेम ( कल्याण ) तथा सुभिक्षता प्रदान करें यही मेरी अभिलाषा है।

*श्लोकार्थ* —अर्हन्त भगवान् मेरा मंगल करें, सिद्ध भगवान् मंगलकारी हों, आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी तथा सर्वसाधुपरमेष्ठी मेरा एवं सभी का मंगल करें।

सन् १९६७ में पूज्य गणिनी आर्थिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने आर्थिका संघ सहित सनावद नगर में चातुर्मास किया था। उस समय उनकी प्रबल प्रेरणा के फलस्वरूप वहाँ के श्रेष्ठी श्री अमोलक चन्द्र जैन सराफ के बड़े सुपुत्र ब्र. मोतीचन्द जी ने माताजी का शिष्यत्व स्वीकार कर संघ में प्रवेश किया। पुनः अपने कर्तव्य का पूर्ण निर्वाह करते हुये हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कराया, देशभर में ज्ञानज्योतिरथ का प्रवर्तन करवाया तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित प्रत्येक गतिविधियों को वृद्धिगंत करने के पश्चात् ८ मार्च सन् १९८७ को फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन क्षुल्लक दीक्षा धारण की और २ अगस्त, १९८७ को उन्हें जम्बूद्वीप धर्मपीठ के पीठाधीश पद पर अभिषिक्त किया गया।

अभिनव चामुण्डराय का आदर्श प्रस्तुत करने वाले उन क्षुल्लक मोतीसागर महाराज ने पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी संघ के साथ मांगीतुंगी सिद्ध क्षेत्र की ओर पद विहार करते हुये अपनी जन्मभूमि सनावद में प्रवेश किया और कुछ नूतन निर्माण की प्रेरणा भी प्रदान की, एतदर्थ उनके लघु भ्राता प्रकाशचंद जैन सराफ ने सनावद-इन्दौर मार्ग पर पहाड़ों के मध्य अपने द्वारा क्रय की गई एक भूमि को नवनिर्माण योजना हेतु दान में देने की घोषणा कर दी पुनः पूज्य माताजी द्वारा बताई गई “णमोकार धाम” योजना का ३१ मार्च १९९६ को सनावद एवं आसपास निमाड़ प्रांत के भक्तों द्वारा शिलान्यास किया गया। उसका निर्माण कार्य चल रहा है उसी का वर्णन उपर्युक्त टीका की पंक्तियों में टीकाकर्त्री ने किया है।

सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—उनके एक तेरहवां गुणस्थान होता है, संज्ञीपर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं।

१. सनावद नगर में (क्षुल्लक मोतीसागर जी की जन्मभूमि में) ‘णमोकार धाम’ इस नूतन तीर्थ का ३१-३-१९९६ को शिलान्यास सम्पन्न हुआ।

न तावत्पर्याप्तः, 'औदारिकमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं' इत्येतेन सूत्रेण तस्य अपर्याप्तसिद्धेः।

सयोगिनं—मुक्त्वान्ये औदारिकमिश्रकाययोगिनः अपर्याप्ताः 'सम्मामिच्छाइट्ठि—संजदासंजद—संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता' इति सूत्रनिर्देशात् ?

नैतद् वक्तव्यं, आहारकमिश्रकाययोगप्रमत्तसंयतानां अपि पर्याप्तत्वप्रसंगात्। न चैवं, 'आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं' इति सूत्रेण तस्यापर्याप्तभावसिद्धेः ?

'आहारमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं' अस्य सूत्रस्यानवकाशत्वात्। एतेन सूत्रेण 'संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता' एतत्सूत्रं बाधिष्यते "औदारिकमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं" इति एतेन न बाध्यते सावकाशत्वेन बलाभावात् ?

न, 'संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता' इत्येतस्यापि सूत्रस्य सावकाशत्वदर्शनात्।

द्वयोरपि सूत्रयोः सावकाशयोः सयोगिस्थानं युगपत् प्राप्तयोः 'संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता' इति एतेन सूत्रेण

**शंका** —कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त करने वाले जो केवली भगवान् हैं वे पर्याप्त होते हैं या अपर्याप्त ?

**समाधान** — वे पर्याप्त तो कहे नहीं जा सकते क्योंकि "औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तक जीवों के होता है" इस सूत्र से उनके अपर्याप्तपना सिद्ध है इसलिए वे अपर्याप्तक ही हैं।

**शंका** —सयोगकेवलियों को छोड़कर अन्य औदारिक मिश्रकाययोगीजीव अपर्याप्तक होते हैं क्योंकि "सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थान में जीव नियम से पर्याप्तक होते हैं" इस सूत्र निर्देश से यही सिद्ध होता है। यहाँ शंकाकार का यह अभिप्राय है कि औदारिकमिश्रयोग वाले जीव अपर्याप्तक होते हैं यह सामान्यविधि है और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संयतासंयत एवं संयत जीव पर्याप्तक होते हैं यह विशेष विधि है और संयतों में सयोगकेवलियों का अन्तर्भाव हो ही जाता है अतएव "विशेषविधिना सामान्यविधिर्बाध्यते" इस नियम के अनुसार उक्त विशेष विधि से सामान्य विधि बाधित हो जाती है जिससे कपाटादि समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान् को अपर्याप्त सिद्ध करना असंभव है ?

**समाधान** — ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा कहने पर तो आहारकमिश्रकाययोग वाले प्रमत्तसंयत जीवों को भी पर्याप्तपना मानना पड़ेगा किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि "आहारकमिश्रकाययोग" अपर्याप्तकों के होता है" इस सूत्र से वे अपर्याप्तक ही सिद्ध होते हैं।

**शंका** — "आहारकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकों के ही होता है" यह सूत्र अनवकाश है अर्थात् इस सूत्र की प्रवृत्ति के लिए कोई दूसरा स्थल नहीं है अतः इस सूत्र से "संयतों के स्थान में जीव नियम से पर्याप्तक ही होते हैं" यह सूत्र बाधित हो जाता है किन्तु "औदारिक मिश्रकाययोग अपर्याप्तकों के ही होता है" इस सूत्र वचन से संयतों के स्थान में जीव पर्याप्तक ही होते हैं" यह सूत्र बाधित नहीं होता है क्योंकि "औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकों के होता है" यह सूत्र सावकाश होने के कारण अर्थात् इस सूत्र की प्रवृत्ति के लिए सयोगियों को छोड़कर अन्य स्थल भी होने के कारण निर्बल है अतः आहारकसमुद्घात को प्राप्त जीवों के जिस प्रकार अपर्याप्तपना सिद्ध किया जा सकता है उस प्रकार समुद्घातगत केवलियों के नहीं किया जा सकता है ?

**समाधान** — ऐसा नहीं है क्योंकि "संयतों के स्थान में जीव नियम से पर्याप्तक होते हैं" यह

‘ओरालियमिस्सकायजोगो अपज्जत्ताणं’ इति एतत्सूत्रं बाध्यते परत्वात् ?

नैतद् वक्तव्यं, परशब्दः इष्टवाचक इति गृह्यमाणे पूर्वेण बाध्यते इत्यनैकान्तिकत्वात्।

नियमशब्दः सप्रयोजनो निष्प्रयोजनो वा ?

अनयोर्द्वयोः पक्षयोर्न द्वितीयपक्षः संभवति, श्रीपुष्पदन्तवचनविनिर्गतस्य निष्फलत्वविरोधात्। न नैतस्य सूत्रस्य नित्यत्वप्रकाशनफलं, नियमशब्दव्यतिरिक्तसूत्राणामनित्यत्वप्रसंगात्। न चैवं, ‘ओरालियकायजोगो पज्जत्ताणं’ इति सूत्रे नियमाभावेनापर्याप्त्येषु अपि औदारिककाययोगस्यास्तित्वप्रसंगात्। ततो नियमशब्दो ज्ञापकः। अन्यथा अनर्थकत्वप्रसंगात्।

किमतेन ज्ञाप्यते ?

‘सम्मामिच्छाद्वि-संजदासंजद-संजदद्वारेण णियमा पज्जत्ता’ इत्येतत्सूत्रमनित्यमिति तेनोत्तरशरीरमुत्थापितसम्यग्-गमिथ्यादृष्टि-संयतासंयत-संयतानां कपाट-प्रतर-लोकपूरणगतसयोगिनां च सिद्धमपर्याप्तम्।

प्रारब्धाधर्शरीरी अपर्याप्तो नाम। न च सयोगकेवलनि शरीरारंभोऽस्ति, ततो न तस्यापर्याप्तमिति चेत् ?

सूत्र भी सावकाश देखा जाता है। अर्थात् सयोगी को छोड़कर अन्य स्थल में भी इस सूत्र की प्रवृत्ति देखी जाती है अतः निर्बल है और इसीलिए “औदारिकमिश्रकाययोग अपर्याप्तकों के ही होता है” इस सूत्र की प्रवृत्ति को नहीं रोक सकता है।

शंका —दोनों ही सूत्रवचनों का सावकाश होते हुये भी सयोगी गुणस्थान में युगपत् प्राप्त हैं फिर भी “संयतों के स्थान में जीव नियम से पर्याप्तक होते हैं” इस सूत्र के द्वारा “औदारिक-मिश्रकाययोग अपर्याप्तकों के ही होता है” यह सूत्र बाधित हो जाता है क्योंकि यह सूत्र पर है और “परो विधिर्बाधको भवति” अर्थात् पर विधि बाधित होती है ?

समाधान —ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि पर शब्द इष्ट अर्थात् अभिप्रेत अर्थ का वाचक है ऐसा अर्थ ग्रहण कर लेने पर पूर्वसूत्र के द्वारा बाधित हो जाता है। अतः शंकाकार के पूर्वकथन में अनेकान्त दोष आ जाता है।

शंका —नियम शब्द सप्रयोजन है कि निष्प्रयोजन ?

समाधान —इन दोनों विकल्पों में से दूसरा विकल्प तो माना नहीं जा सकता है क्योंकि श्री पुष्पदन्त स्वामी के वचन से निकले हुये तत्त्व में निरर्थकता का होना विरुद्ध है तथा सूत्र की नित्यता का प्रकाशन करना भी नियम शब्द का फल नहीं हो सकता है क्योंकि ऐसा मानने पर जिन सूत्रों में नियम शब्द नहीं पाया जाता है उन्हें अनित्यता का प्रसंग आ जायेगा, परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर “औदारिककाययोग पर्याप्तकों के होता है” इस सूत्र में नियम शब्द का अभाव होने से अपर्याप्तकों में भी औदारिककाययोग के अस्तित्व का प्रसंग प्राप्त होगा जो कि इष्ट नहीं है अतः सूत्र में आया हुआ नियम शब्द ज्ञापक है नियामक नहीं। यदि ऐसा न माना जाये तो उसको अनर्थकपने का प्रसंग आ जायेगा।

शंका —इस नियम शब्द के द्वारा क्या ज्ञापित होता है ?

समाधान —इससे यह ज्ञापित होता है कि “सम्यग्गमिथ्यादृष्टि, संयतासंयत और संयतस्थान में जीव नियम से पर्याप्तक होते हैं” यह सूत्र अनित्य है। अपने विषय में सर्वत्र समान प्रवृत्ति का नाम नित्यता है और अपने विषय में ही कहीं प्रवृत्ति हो तथा कहीं न हो इसका नाम अनित्यता है। इससे उत्तरशरीर को उत्पन्न करने वाले सम्यग्गमिथ्यादृष्टि और संयतासंयतों के तथा कपाट, प्रतर

न, तस्य केवलिनो भगवतः षट्पर्याप्तिशक्तिवर्जितस्यापर्याप्तव्यपदेशात् । षड्भिरीन्द्रियैर्विना चत्वारः प्राणा द्वौ वा । द्रव्येन्द्रियाणां निष्पत्तिं प्रतीत्य केऽपि दश प्राणान् भणन्ति । तत्र घटते । कुतः? भावेन्द्रियाभावात् । भावेन्द्रियं नाम पंचानामिन्द्रियाणां क्षयोपशमः । न सः क्षीणावरणेऽस्ति । अथ द्रव्येन्द्रियस्य यदि ग्रहणं क्रियते तर्हि संज्ञिनामपर्याप्तकाले सप्तप्राणान् पिंडीकृत्य द्वौ चैव प्राणौ स्तः, पञ्चानां द्रव्येन्द्रियाणामभावात् । तस्मात् सयोगिकेवलिनः चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ वा ।

क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, सप्त योगाः — सत्यमनोयोगः, असत्यमृषामनोयोगः, सत्यवचनयोगः, असत्यमृषावचनयोगः, औदारिककाययोगः, कपाटगतस्य औदारिकमिश्रकाययोगः, प्रतर-लोकपूरणयोः कार्मणकाययोगः एवं सयोगिकेवलिनो भगवतः सप्त योगाः भवन्ति । अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता भवन्ति\*२५।

और लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवलियों के अपर्याप्तपना सिद्ध हो जाता है।

शंका — जिस जीव का आरंभ किया हुआ शरीर अर्ध अर्थात् अपूर्ण है उसे अपर्याप्त कहते हैं परन्तु सयोगी अवस्था में शरीर का आरंभ तो होता नहीं अतः सयोगी के अपर्याप्तपना कैसे बन सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि कपाट आदि समुद्घात अवस्था में सयोगी छह पर्याप्तिरूप शक्ति से रहित होते हैं अतएव उन्हें अपर्याप्त कहा है। सयोगकेवलियों के पाँच भावेन्द्रियाँ और भावमन नहीं रहता है अतः इन छह के बिना चार प्राण पाये जाते हैं और दो प्राण भी होते हैं। अर्थात् समुद्घात की अपर्याप्त अवस्था में वचनबल और स्वासोच्छ्वास का अभाव हो जाने से तेरहवें गुणस्थान के अन्त में आयु और कायबल ये दो ही प्राण रह जाते हैं। वहाँ द्रव्येन्द्रियों की पूर्णता होने के कारण कितने ही आचार्य सयोगकेवलियों के दश प्राण भी कहते हैं परन्तु उनका ऐसा कथन घटित नहीं होता है। क्यों घटित नहीं होता है? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्य श्रीवीरसेन स्वामी ने कहा है कि चूँकि सयोगी जिनेन्द्र के भावेन्द्रियाँ नहीं पाई जाती हैं। पाँचों इन्द्रियावरण कर्मों के क्षयोपशम को भावेन्द्रिय कहते हैं परन्तु जिनका आवरण कर्म समूल नष्ट हो गया है उनके वह क्षयोपशम नहीं होता है और यदि प्राणों में द्रव्येन्द्रियों का ही ग्रहण किया जावे तो संज्ञी जीवों के अपर्याप्त काल में सात प्राणों के स्थान पर कुल दो ही प्राण कहे जायेंगे क्योंकि उनके द्रव्येन्द्रियों का अभाव पाया जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के चार अथवा दो ही प्राण होते हैं।

तेरहगुणस्थान में इस प्रकार प्राण आलाप के पश्चात् आगे की श्रंखला में उनके क्षीणसंज्ञा

\*नं. २५

सयोगिकेवली के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	४।२	०	१	१	१	७	०	०	१	१	१	६	१	१	०	२	२
सं.प.	सं.अ.	प.		प्रा.	म.	पंचे.	त्रस.	म.२ व.२ औ.२ का.१	कपाट	अक.	के.	यथा.	के.द.	द्र. ६ भा. १ शु.	भ.	क्षा.	अनु.	आहार अनाहार	साकार असाकार यू.उ.

वैशाखासितद्वितये, दीक्षार्थिकातिथेर्दिनं, एकचत्वारिंशत्तमं भूयादाजन्म मंगलम्॥१॥

नमः श्रीपार्श्वनाथाय कमठासुर मर्दिने। यस्य भक्तिप्रसादेन लब्धं संयतिकाव्रतम्॥२॥

अयोगिकेवलिनं भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः — पूर्वोक्तपर्याप्तयस्तथैव स्थिताः सन्ति इति षट्पर्याप्तयो भणिताः। न पुनः तत्र पर्याप्तिजनितकार्यमस्ति, आयुःप्राण एक एव।

है, अर्थात् चार संज्ञाओं में से कोई भी संज्ञा नहीं रहती है, एक मनुष्य गति है, पञ्चेन्द्रियजाति है, त्रसकाय है और सात योग होते हैं। उन सात योगों के नाम इस प्रकार हैं—सत्यमनोयोग, अनुभय- मनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभय वचनयोग, औदारिककाययोग, कपाटसमुद्धात को प्राप्त केवली के औदारिक मिश्रकाययोग और प्रतर तथा लोकपूरण समुद्धात करने वाले केवलियों के कार्मणकाययोग इस प्रकार सात योग सयोगकेवली के होते हैं। योग के पश्चात् उनके अपगतवेद है अर्थात् वेदरहित अवस्था होती है क्योंकि मात्र द्रव्यवेद वहाँ विवक्षित है, भाववेद नहीं। इसी प्रकार वे कषायरहित अकषाय होते हैं, उनके एक केवलज्ञान पाया जाता है, एक यथाख्यातशुद्धि संयम होता है, केवलदर्शन होता है, द्रव्य से उनमें छहों लेश्याएं और भाव से एक शुक्ललेश्या पाई जाती है, वे भव्यसिद्धिक हैं, उनके एक क्षायिक सम्यक्त्व होता है, वे संज्ञी और असंज्ञी के विकल्प से रहित होते हैं, वे आहारी और अनाहारी दोनों प्रकार की अवस्थाओं से सहित होते हैं तथा साकार और अनाकार दोनों उपयोगों से युक्त होते हैं।

श्लोकार्थ —वैशाख कृष्णा द्वितीया तिथि जो मेरी आर्थिकादीक्षा का दिवस है, आज चालीस वर्ष उस दीक्षा के पूर्ण करके मैंने इकतालीसवें वर्ष में प्रवेश किया है अतः यह दीक्षा की इकतालीसवीं वर्षगाँठ जीवन के लिए मंगलमयी होवे॥१॥

कमठ नामक असुर का मर्दन करने वाले तीर्थकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् को मेरा नमस्कार है, जिनकी भक्ति के प्रसाद से मैंने संयतिका-आर्थिका के व्रतों को प्राप्त किया है॥२॥

भावार्थ —भगवान् पार्श्वनाथ के गर्भकल्याणक से पावन वैशाख कृष्णा द्वितीया तिथि को माधोराजपुरा ( राज. ) में इन्होंने पूज्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज के करकमलों से आर्थिकादीक्षा ग्रहण कर “ज्ञानमती” नाम प्राप्त किया था। उस तिथि को ही उपर्युक्त प्रकरण लिखते समय “खरगोन” मध्यप्रदेश में स्मरण करते हुये तेईसवें तीर्थकर उपसर्ग विजेता भगवान् पार्श्वनाथ को नमन किया है ताकि आगे का लेखनकार्य भी निर्विघ्न सम्पन्न होवे।

संभवतः ज्ञानमती माताजी के जीवन पर इस दीक्षातिथि का ही प्रभाव है कि बड़े-बड़े संघर्ष एवं विघ्नों को भी उपसर्ग समझ कर अपने आत्मबल से सहन करके महान् कार्यो को सम्पन्न कर लेती हैं और कभी किसी के प्रति द्वेषभाव न करके समदर्शिता का भाव रखती हैं। ऐसे संतों के प्रति ही “मेरीभावना” के लेखक ने लिखा है—

स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।

ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुःख समूह को हरते हैं।।

रहे सदा सत्संग उन्हीं का ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।

उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

केन कारणेन ?

न तावद् ज्ञानावरणक्षयोपशमलक्षण-पञ्चेन्द्रियप्राणास्तत्र सन्ति, क्षीणावरणे क्षयोपशमाभावात्। आनापान-भाषा-मनःप्राणा अपि न सन्ति, पर्याप्तिजनित-प्राणसंज्ञित-शक्त्यभावात्। न शरीरबलप्राणोऽप्यस्ति, शरीरोदय-जनित-कर्म-नोकर्मागमाभावात्। तत् एकश्चैव प्राणः। उपचारमाश्रित्य एको वा षड् वा सप्त वा प्राणाः भवन्ति। एषः प्राणः पुनः अप्रमाणः।

उन निःस्वार्थ त्याग-तपस्या की धनी पूज्य ज्ञानमती माताजी के कुछ गुण मुझमें भी अवतरित हों यही अभिलाषा है।

अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों के ओघालाप कहने पर—उनके एक चौदहवां गुणस्थान है, एक पर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। पूर्व से आई हुई पर्याप्तियाँ इस चौदहवें गुणस्थान में उसी प्रकार स्थित रहती हैं, इसीलिए यहाँ पर छहों पर्याप्तियाँ कही गई हैं किन्तु यहाँ पर पर्याप्तिजनित कोई कार्य नहीं होता है अतः आयु नामक एक ही प्राण होता है।

शंका —एक आयुप्राण होने का क्या कारण है ?

समाधान —ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमरूप पाँच इन्द्रिय प्राण तो अयोगकेवली के हैं नहीं, क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय हो जाने पर क्षयोपशम का अभाव पाया जाता है। इसी प्रकार आनापान, भाषा और मनःप्राण भी उनके नहीं हैं क्योंकि पर्याप्ति से उत्पन्न प्राणसंज्ञा वाली शक्ति का उनके अभाव है। इसी प्रकार उनके शरीर-कायबल नाम का भी प्राण नहीं है क्योंकि उनके शरीर नामकर्म के उदयजनित कर्म और नोकर्मों के आगमन का अभाव है, इसलिए अयोगकेवली के एक आयु प्राण ही होता है ऐसा समझना चाहिए किन्तु उपचार का आश्रय लेकर उनके एकप्राण, छहप्राण अथवा सातप्राण भी होते हैं। यह आयुप्राण भी यहाँ उपचार से ही है क्योंकि वहाँ अवस्थान के कारणभूत नये कर्मों का आना और योगप्रवृत्ति आदि भी नष्ट हो गये हैं इसलिए आयुप्राण को भी अप्राणरूप से ही समझना चाहिए, केवल औपचारिकरूप से उसका अस्तित्व है।

प्राण आलाप के पश्चात् उन अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों के क्षीणसंज्ञा है, मनुष्यगति है, पञ्चेन्द्रिय जाति है, त्रसकाय है, वे योगरहित होने से अयोगी हैं, अपगतवेदी हैं, कषायरहित अकषायी हैं, उनके एक केवलज्ञान है, एक यथाख्यात-विहारशुद्धि संयम है, एक केवलदर्शन है, उनके द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से लेश्यारहित स्थान होता है अतः अलेश्या कहे जाते हैं।

यहाँ लेश्या न होने का कारण यह है कि कर्मलेप के कारणभूत योग और कषाय इन दोनों का ही उनके अभाव पाया जाता है। लेश्या आलाप के आगे भव्यसिद्धिक, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और असंज्ञी विकल्पों से रहित, अनाहारक, साकारोपयोग तथा अनाकारोपयोग इन दोनों ही उपयोगों से समन्वित होते हैं।

विशेषार्थ —चौदह गुणस्थानों में “अयोगकेवली” अन्तिम चौदहवाँ गुणस्थान है और उसका काल मात्र अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है। अतः उसकी तो सम्पूर्ण व्यवस्था योगप्रक्रिया से रहित होने के कारण उपचार मात्र है तथापि जिन प्राण और पर्याप्तियों का कथन इसमें किया गया है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, अयोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन अलेश्या, लेपकारणयोगकषायाभावात्। भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यग्दृष्टयो, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्ति\*<sup>२६</sup>।

वास्तव में अयोगीजिन के एक आयुप्राण ही होता है फिर भी उपचार से उनके यहाँ पर एक या छह या सात प्राण बतलाए हैं। जहाँ मुख्य का तो अभाव हो किन्तु उसके कथन करने का प्रयोजन या निमित्त हो वहाँ पर उपचार की प्रवृत्ति होती है। उपचार की इस व्याख्या के अनुसार यहाँ चौदहवें गुणस्थान में क्षयोपशम रूप मुख्य इन्द्रियों का तो अभाव है। फिर भी अयोगी जिनके पंचेन्द्रियजाति नामकर्म का उदय पाया जाता है और वह जीवविपाकी है, इस निमित्त से उन्हें पंचेन्द्रिय कहना बन जाता है। इसलिए उनके पाँच इन्द्रिय प्राणों का कथन करना भी सप्रयोजन है। इस प्रकार पाँच इन्द्रियों में आयु को मिला देने पर छह प्राण हो जाते हैं। यहाँ पर इन्द्रियों से अभिप्राय उस शक्ति से है जिससे अयोगी जिनमें पंचेन्द्रियपने का व्यवहार होता है परन्तु उस शक्ति के सम्पादन का या पाँच इन्द्रियों का आधार शरीर है, अतः इस निमित्त से अयोगी जिनके कायबल का कथन करना भी सप्रयोजन है। इस प्रकार पूर्वोक्त छह प्राणों में कायबल के और मिला देने पर सात प्राण हो जाते हैं। यद्यपि उनके पहले की छह पर्याप्तियाँ उसी प्रकार से स्थित हैं, अतः वे पर्याप्तक कहे जाते हैं तथा पर्याप्तक अवस्था में मनःप्राण भी होता है, इसलिए उनके मनःप्राण का भी कथन करना चाहिए था। परन्तु उसके कथन नहीं करने का यह कारण प्रतीत होता है कि उनमें संज्ञी व्यवहार लुप्त हो गया है। औपचारिक संज्ञीव्यवहार भी उनमें नहीं माना गया है, अतः अयोगियों के मनः प्राण नहीं कहा। इसी प्रकार वचनबल और श्वासोच्छ्वास के अभाव का भी कारण समझ लेना चाहिए। ऊपर सयोगी जिनके जो पाँच इन्द्रियाँ और एक मन इस प्रकार छह प्राणों का निषेध करके केवल चार ही प्राण बतलाए हैं वह मुख्य कथन है अतः जिस उपचार की अपेक्षा यहाँ छह अथवा सात प्राण कहे हैं वही उपचार वहाँ भी लागू होता है। आयु प्राण तो अयोगियों के मुख्य प्राण है फिर भी उसे भी उपचार में ले लिया है, इसलिए इसे कथन का विवक्षा भेद ही समझना चाहिए। यहाँ उपचार का प्रयोजन ऐसा प्रतीत होता है कि विवक्षित पर्याय में रखना जो आयु का काम है वह यहाँ भी पाया जाता है, इसलिए तो वह मुख्य प्राण है। फिर भी जीवन का अवस्थान अल्प है और अवस्थान के कारणभूत नये कर्मों का आना,

\*नं. २६

अयोगिकेवली के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अयोगी.	१ प.	६	१ अनुभू	० क्षिण.	१ म.	१ पंचे.	१ त्रस.	० अयोग	० अपगत	० क्षीण	१ के.	१ यथा.	१ के	६ ० द्र. भाव अलिश.	१ भ.	१ क्षा.	० अनुभू	१ अनाहारक	२ साकार अनाकार यू.उ.

सिद्धानामिति भण्यमानेऽस्त्येकं अतीतगुणस्थानं, अतीतजीवसमासः, अतीतपर्याप्तयः, अतीतप्राणाः, क्षीणसंज्ञा, सिद्धगतिः, अनिन्द्रियाः, अकायाः, अयोगिनः, अपगतवेदाः, क्षीणकषायाः, केवलज्ञानिनः, नैव संयता नैवासंयता नैव संयतासंयताः, केवलदर्शिनः, द्रव्यभावाभ्यां अलेश्याः, नैव भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यग्दृष्टयो, नैव संज्ञिनः, नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्ति\*२७।

इतो विस्तरः—गुणस्थानानामालापान् पठित्वा पुनश्च गुणस्थानातीतानां सिद्धानां चालापान् अभ्यस्य सिद्धपदप्राप्त्यर्थमेव भावना संजायते तर्हि एतत्सिद्धपदं कथं लभेत ? इति जिज्ञासायां श्रीयोगीन्दुदेवस्य दोहकसूत्रं स्मर्यते—

मेल्लिवि सयल अवक्खडी जिय णिच्चिंतउ होइ।

चिनु णिवेसहि परमपए देउ णिरंजणु जोइ\*११५॥

अस्यायमर्थः—हे जीव ! दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षास्वरूपापध्यानादिसमस्तचिन्ताजालं मुक्त्वा निश्चिन्तो भूत्वा चित्तं परमात्मस्वरूपे स्थिरं कुरु, तदनन्तरं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्माञ्जनरहितं देवं परमाराध्यं निजशुद्धात्मानं ध्यायेति भावार्थः।

योगप्रवृत्ति आदि भी नष्ट हो गये हैं, अतः आयु भी इस अपेक्षा से औपचारिक प्राण कहा जाता है। इस प्रकार अयोगियों के उपचार से एक या छह या सात प्राण कहे गये हैं।

सिद्धपरमेष्ठियों के ओघालाप कहने पर—उनमें एक अतीतगुणस्थान अर्थात् गुणस्थान से रहित अवस्था पाई जाती है। इसी प्रकार अतीतजीवसमास, अतीतपर्याप्ति, अतीतप्राण, क्षीणसंज्ञा, सिद्धगति, अनिन्द्रिय, अकाय, अयोगी, अवेदी, क्षीणकषाय, केवलज्ञानी, संयत-असंयत और संयतासंयत विकल्पों से रहित, केवलदर्शनी, द्रव्य और भाव से अलेश्य ( लेश्या रहित ), भव्यसिद्धिक ( विकल्पातीत ), क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से मुक्त, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी दोनों प्रकार के होते हैं।

इसका विस्तार करते हैं—गुणस्थानों के अलापों को पढ़कर पुनः गुणस्थानातीत सिद्धों के आलाप का अभ्यास करके सिद्धपद को प्राप्त करने की ही भावना उत्पन्न होती है। तब वह सिद्धपद कैसे प्राप्त हो? ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रीयोगीन्दुदेव का यह दोहकसूत्र स्मरण आता है—

श्लोकार्थ—हे जीव! सम्पूर्ण चिन्ताओं को छोड़कर निश्चिन्त होकर अपने मन को परम पद में लगाकर निरञ्जनदेव को देख।११५॥

इसका यह अर्थ है कि हे जीव! देखे, सुने और भोगे हुए भोगों की वाञ्छारूप खोटे ध्यान आदि समस्त चिन्ताजाल को छोड़कर निश्चिन्त होकर अपने चित्त को परमात्मस्वरूप में स्थिर करो, उसके

## \*नं. २७

## सिद्धों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	१	०	१	०	०	१	०	१	२
अतीत गु.	अतीत जी.	अतीत प.	अतीत प्रा.	क्षीण सं. सिद्धगति	अतीन्द्रिय	अतीत काय	अयोगी	अपगतवेद	क्षीण क.	क्षीण केवलज्ञान	अनुभय	केवलदर्शन	अलेश्या	अनुभय	क्षायिक सं.	अनुभय	अनाहारक	साकार अनाकार	युगपत



अस्य परमात्मनो ध्यानेनैव परंपरया सिद्धपदं लप्स्यते नात्र संदेहः कर्तव्यः।

एवं चतुर्दशगुणस्थानेषु आलापे कथ्यमाने सप्तविंशतिः संदृष्टयो गताः।

‘ऊनाख्यात्सिद्धक्षेत्राद् ये, स्वर्णभद्रादिसाधवः।’

चत्वारो मुक्तिधामापुस्तेभ्यो नित्यं नमोऽस्तु मे॥१॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीत-षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचित-  
सत्प्ररूपणान्तगते श्रीवीरसेनाचार्यकृतविंशतिप्ररूपणाधारेण विंशतितमे शताब्दौ  
प्रथमाचार्यचारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरा-  
चार्यस्तस्य शिष्या-गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्ता-  
मणिटीकायां गुणस्थानेषु विंशतिप्ररूपणाप्ररूपकः  
प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

पश्चात् भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म के अंजन से रहित परम आराध्यदेवस्वरूप निज शुद्धात्मा का ध्यान करो ऐसा भावार्थ है।

इस परमात्मा के ध्यान से ही परंपरा से सिद्धपद प्राप्त हो सकता है इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार चौदह गुणस्थानों में आलापों का कथन करने वाली सत्ताईस संदृष्टियाँ पूर्ण हुईं।

श्लोकार्थ — मध्यप्रदेश के ऊन ( पावागिरि ) नामक सिद्धक्षेत्र से जिन स्वर्णभद्र आदि चार मुनिराजों ने मोक्षधाम को प्राप्त किया है उनको मेरा नित्य ही नमस्कार होवे॥१॥

इस प्रकार श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्त एवं भूतबलि द्वारा रचित षट्खण्डागम ग्रन्थराज के प्रथम खण्ड में श्रीपुष्पदन्त आचार्य विरचित सत्प्ररूपणा प्रकरण के अंतर्गत श्रीवीरसेनाचार्य कृत बीस प्ररूपणा के आधार से बीसवीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बराचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागर महाराज के प्रथमपट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या गणिनीप्रमुख ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त चिन्तामणि नाम की टीका में गुणस्थानों में बीस प्ररूपणाओं का प्ररूपण करने वाला प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।



१. यहाँ पर भी स्वर्णभद्रादि चार मुनियों की एवं आचार्य श्री शांतिसागरजी, आ. श्री वीरसागर जी के चरण स्थापना की घोषणा की गई। ६-४-१९९६ को यहाँ मेरा ४१वाँ आर्थिकादीक्षा दिवस मनाया गया।

## अथ द्वितीयो महाधिकारः अथ गतिमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

श्रीऋषभादिवीरान्ता-श्रुतुर्विंशतयो जिनाः।

तेभ्यस्तत्प्रतिमाभ्यश्च, सिद्धिप्राप्त्यै नमो नमः॥१॥

चतुर्गतिभ्यो निर्गत्य पञ्चमीं गतिमाश्रिताः। अनन्तानन्तसिद्धास्तान् सिद्धिगत्यै नमाम्यहम्॥१॥

अथात्र गतिमार्गणासु पञ्चपञ्चाशदुत्तरशतकोष्ठकानि सन्ति, तत्रापि नरकगतौ एकत्रिंशत्कोष्ठकानि भवन्ति। तेषामेव विस्तरेणालापा उच्यन्ते।

आदेशेन गत्यानुवादेन नरकगतौ नारकाणां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिक-औदारिकमिश्र-आहार-आहारमिश्रैर्विना एकादश योगाः, नपुंसकवेदः, नारका द्रव्यभावाभ्यां नपुंसकवेदा एव भवन्ति इति।

चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि-त्रीण्यज्ञानानि त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, द्रव्यलेश्या कालाकालाभासा सुष्ठुकृष्णा इति यदुक्तं भवति। एषा नारकाणां पर्याप्तकाले

---

अथ द्वितीय महाधिकार प्रारंभ

अब गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है

मंगलाचरण

श्लोकार्थ —श्री ऋषभदेव भगवान् से लेकर अंतिम तीर्थंकर महावीर पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर भगवान् एवं उनकी प्रतिमाओं को सिद्धि प्राप्ति के लिए मेरा नमस्कार है॥१॥

चार गतियों से निकल कर पंचम गति को प्राप्त अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठियों को सिद्धि गति की प्राप्ति हेतु मैं नमस्कार करता हूँ॥२॥

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका —यहाँ इस गतिमार्गणा में एक सौ पचपन कोष्ठक हैं। उनमें से प्रथम नरकगति में इकतीस कोष्ठक हैं। उन्हीं के विस्तार से आलाप यहाँ कहे जा रहे हैं।

आदेश-गुणस्थान की अपेक्षा गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकियों के आलाप कहने पर—उनके प्रारंभिक चार गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास ( पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, पर्याप्त काल की अपेक्षा दश प्राण और अपर्याप्त काल की अपेक्षा सात प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रिय जाति है, उनके एक त्रसकाय है, औदारिक, औदारिकमिश्र और आहारक, आहारकमिश्र इन चार योगों को छोड़कर ग्यारह योग होते हैं। उनके एक नपुंसकवेद होता है क्योंकि नारकियों के स्त्री और पुरुष ये दोनों वेद नहीं होते हैं, उनके द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से एक नपुंसक वेद ही रहता है।

उन नारकियों के चारों कषाय हैं, तीनों अज्ञान और तीन ज्ञान ये छह ज्ञान होते हैं, एक असंयम होता है, केवलदर्शन के बिना तीन दर्शन होते हैं, द्रव्य से पर्याप्तत्व की अपेक्षा

शरीरलेश्या भवति। विग्रहगतौ पुनः नारकादिसर्वजीवानां द्रव्यलेश्या शुक्ला एव भवति, कर्मविस्त्रसोपचयस्य धवलवर्णं मुक्त्वान्यवर्णाभावात्। शरीरगृहीत-प्रथमसमयप्रभृति यावदपर्याप्तकाल-चरमसमय इति तावत् शरीरस्य कापोतलेश्या चैव, संबलितसकल-वर्णात्। भावेन कृष्ण-नील-कापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः आहारिणः, अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२८।

तेषां चैव पर्याप्तनारकाणां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्याः भावेन कृष्ण-नील-कापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका

कालाकालाभास लेश्या और अपर्याप्तत्व की अपेक्षा कापोत और शुक्ललेश्या पाई जाती है। पर्याप्त अवस्था में जो कालाकालाभास लेश्या कही है उसका तात्पर्य यह है कि उनके पर्याप्त अवस्था में अतिकृष्ण लेश्या होती है। नारकियों की पर्याप्त अवस्था में यह शरीरलेश्या होती है किन्तु विग्रहगति में नारकी आदि सभी जीवों की द्रव्यलेश्या शुक्ल ही होती है क्योंकि कर्मों के विस्त्रसोपचय का धवलवर्ण छोड़कर अन्यवर्ण नहीं होता है तथा शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय से लगाकर अपर्याप्तकाल के चरम समय तक शरीर की कापोत लेश्या ही होती है क्योंकि उस समय शरीर संवलित सकल वर्ण वाला होता है। भाव की अपेक्षा तो कृष्ण, नील और कापोतलेश्या होती है। लेश्या आलाप के आगे वे भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के होते हैं, उनके छहों सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक और अनाहारक दोनों भेद वाले होते हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं नारकियों के पर्याप्तकाल सम्बन्धी ओघालाप कहने पर— उनके आदि के चार गुणस्थान हैं, एक जीवसमास ( संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास ) है, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, पञ्चेन्द्रियजाति है, एक त्रसकाय है, नौ योग हैं ( चार मनोयोग, चार वचनयोग और एक वैक्रियिककाययोग ऐसे ९ योग हैं ), तीन वेदों में से एक नपुंसक वेद है, चारों कषाएं हैं, तीनों अज्ञान हैं और आदि के तीन ज्ञान भी हैं, इस प्रकार छह ज्ञानों का वहाँ अस्तित्व पाया जाता है अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारकियों के तीन अज्ञान और सम्यग्दृष्टि नारकियों के तीन ज्ञान जानना चाहिए। संयम की अपेक्षा वहाँ असंयम है, आदि के तीन दर्शन हैं, लेश्या की दृष्टि से वहाँ द्रव्य से परमकृष्ण लेश्या होती है और भाव से कृष्ण, नील और कापोत ये तीन

\*नं. २८

नारकसामान्य-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	२	६	१०	४	१	१	१	११	१	४	६	१	३	द्र.३	२	६	१	२	२
(१५)	सं.प.	प.	७	न.	पं.	त्र.	म.४	व.४	न.	अज्ञा.३	असं.	के.द.	विना.	कृ. का.	भ. अ.		सं.	आहार	अनाहार
	सं.अ.	अ.					वै. २	कर्म.१		ज्ञा.३				शु. भा.३				साकार	अनाकार
														अशु.					

अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२९।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने स्तो द्वे गुणस्थाने—मिथ्यात्वमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं च, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, विभंगज्ञानेन विना पंच ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोत-शुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनील-कापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि—कृतकृत्यवेदकं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं मिथ्यात्वं च। संज्ञिनः, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३०।

लेश्याओं का अस्तित्व पाया जाता है। वे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के होते हैं। सम्यक्त्व वहाँ छहों रह सकते हैं। अर्थात् क्षायिक सम्यग्दर्शन युक्त कोई बद्धायुष्क मनुष्य प्रथम नरक तक भी चले जाते हैं इस अपेक्षा से नरक में क्षायिक सम्यक्त्व का अस्तित्व भी स्वीकार किया गया है। वे संज्ञी हैं, आहारक हैं और साकार तथा अनाकार दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन नारकियों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—उनके मिथ्यात्व और असंयत सम्यग्दृष्टि ये दो गुणस्थान हैं, एक ( संज्ञीपर्याप्त ) जीवसमास है, छहों अपर्याप्तियाँ हैं, सात प्राण हैं, चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, पञ्चेन्द्रिय जाति है, त्रसकाय है, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये दो योग हैं, एक नपुंसकवेद है, चारों कषायें हैं, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान हैं, असंयम है, आदि के तीन दर्शन हैं, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या हैं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं हैं, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के हैं, मिथ्यात्व, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं। इनमें वेदकसम्यक्त्व तो कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा होता है और उसमें क्षायिक सम्यक्त्व एवं मिथ्यात्व के मिला देने पर नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में तीन सम्यक्त्व होते हैं। सम्यक्त्व आलाप के आगे

### \*नं. २९

### नारकसामान्य पर्याप्त-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	६	१	३	द्र.१	२	६	१	१	२
मि.	सं.पं.	प.			न.	पं.	पं.	म.४	न.		अज्ञा.३	असं.	के.द.	कृ.	भ.		सं.	आहार	साकार
सा.								व.४			ज्ञा.३		विना.	भा.३	अ.				अनाकार
सं.								वै. १						अशु.					
अ.																			

### \*नं. ३०

### नारकसामान्य अपर्याप्त-आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	५	१	३	द्र.२	२	३	१	२	२
मि.	सं.अ.	अप.			न.	पं.	पं.	वै.मि.	न.		कुम.	असं.	के.द.	का.शु	भ.	मि.	सं.	आहार	साकार
वि.								कर्म.			कुश्रु.		विना.	भा.३	अ.	क्षा.		अनाहार	अनाकार
क्र.											ज्ञा.३		विना.	अशु.		क्षायो.			अनाकार

संप्रति नारकमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रःसंज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३१।

तेषामेव सामान्यनारकपर्याप्तानां कथ्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि अज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः,

वे नारकी संज्ञिक हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर— उनके एक प्रथम गुणस्थान है, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास हैं, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ हैं, उनके दश और सात प्राण होते हैं। अर्थात् पर्याप्त अवस्था में दशों प्राण होते हैं और अपर्याप्त अवस्था में उन मिथ्यादृष्टि नारकियों के सात प्राण पाये जाते हैं। पुनः उनके चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रिय जाति है, एक त्रसकाय है, ग्यारह योग ( औदारिक, औदारिकमिश्र और आहारक, आहारकमिश्र इन चार योगों को छोड़कर शेष ११ योग ) होते हैं, एक नपुंसक वेद है, चारों कषायें हैं, तीनों अज्ञान हैं, असंयम है, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन हैं, द्रव्य से ( पर्याप्त की अपेक्षा ) कालाकालाभास—परमकृष्ण अपर्याप्त की अपेक्षा कापोत और शुक्ल लेश्या होती है तथा भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं हैं, वे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के हैं, सम्यक्त्व की अपेक्षा उनके मिथ्यात्व होता है, वे संज्ञिक होते हैं, आहारक और अनाहारक हैं, तथा साकारोपयोगी अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं नारकियों के पर्याप्तकालसम्बन्धी आलाप कहने पर— उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, चारों संज्ञाएं हैं, नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रिय जाति है, त्रसकाय है, चारों मनोयोग, चारों वचन योग, कार्मणकाययोग ये नौ योग हैं, एक नपुंसकवेद है, चारों कषायें हैं, तीनों अज्ञान हैं, असंयम है, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्ण लेश्या और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन

\*नं. ३१

नारकसामान्य-मिथ्यादृष्टि आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ स.पं. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० प. ७ अ.	४	१ न.	१ णं.	१ णं.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.१	१ न.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ च.अ.	३ द्र.३ कृ. का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मिथ्या.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३२।

एषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने यदन्तरं तदेव कथ्यते — षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः द्वौ योगौ — वैक्रियिकमिश्र-  
कार्मणनामधेयौ, विभंगज्ञानेन विना द्वे अज्ञाने, द्वे लेश्ये कापोतशुक्ले द्रव्येण, आहारिणः अनाहारिणश्च भवन्ति। शेषाः  
प्ररूपणाः पर्याप्तनारकाणामिव गृहीतव्याः\*३३।

सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः,  
नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने,

लेश्याएं हैं, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के हैं, मिथ्यात्व है, संज्ञिक हैं, आहारक हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी हैं।

उन्हीं नारकी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकाल सम्बन्धी आलाप कहने पर — उनमें पर्याप्तकों से जो अन्तर है उसी को कहते हैं कि उनके छहों अपर्याप्ति हैं, सात प्राण हैं, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण नाम के दो योग हैं, विभंगज्ञान के बिना दो अज्ञान हैं, द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के हैं। शेष प्ररूपणाएं पर्याप्त नारकी जीवों के समान ही जानना चाहिए।

अब द्वितीय गुणस्थानवर्ती सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर — उनके एक सासादन गुणस्थान है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रिय जाति है, एक त्रसकाय है, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचन योग और वैक्रियिककाययोग ) हैं, एक नपुंसकवेद है, चारों कषायें हैं, तीनों अज्ञान हैं, असंयम है, दो दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास लेश्या और भाव से कृष्ण, नील, कापोत

\*नं. ३२

नारकसामान्य-मिथ्यादृष्टि पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१	२	१	१	१	२
मि.	सं.अ.				न.	पुं.	पुं.	म.४	न.		अज्ञा.	असं.	चक्षु.	कृ.	भ.	मिथ्या.	सं.	आहार	साकार
								व.४					अच.	भा.३	अ.			अनाहार	अनाकार
								वै.१						अशु.					

\*नं. ३३

नारकसामान्य-मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	२	१	२	द्र.२	२	१	१	२	२
मि.	सं.अ.	अपुं.	अपुं.		न.	पुं.	पुं.	वै.मि.	पुं.		कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	मिथ्या.	सं.	आहार	साकार
								कर्म.			कुशु.		अचक्षु.	शु.	अ.			अनाहार	अनाकार
														भा.३					
														अशु.					

द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३४</sup>।

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३५</sup>।

लेश्याएं हैं, भव्यसिद्धिक हैं, सासादन सम्यक्त्व है, संज्ञी हैं, आहारक हैं तथा वे साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीयगुणस्थानवर्ती नारकी जीवों के आलाप कहने पर — उनके एक तृतीय गुणस्थान होता है, एक संज्ञी पर्याप्तक जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रियजाति है, एक त्रसकाय है, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और वैक्रियिक काययोग ये नौ योग हैं, एक नपुंसकवेद है, चारों कषाएं हैं, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान हैं, एक असंयम है, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्ण लेश्या और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं हैं। पुनः भव्यत्व की अपेक्षा वे भव्यसिद्धिक होते हैं, छह सम्यग्दर्शनों में से उनके एक सम्यग्मिथ्यात्व नामक सम्यक्त्व होता है, वे संज्ञी होते हैं, आहारक हैं तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

### \*नं. ३४

### नारकसामान्य-सासादन आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१ कृ. भा.३ अशु.	१	१	१	१	२
सा.	सं.प.				न.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ वै.१	पुं.		अज्ञा.	असं.	च. अच.		भ.	सासा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

### \*नं. ३५

### नारकसामान्य-सम्यग्मिथ्यादृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१ कृ. भा.३ अशु.	१	१	१	१	२
सम्य.	सं.प.				न.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ वै.१	पुं.		ज्ञान. मिश्र. अज्ञा.	असं.	च. अच.		भ.	सम्य.	सं.	आहार	साकार अनाकार

असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभासकापोतशुक्ललेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३६</sup>।

एषामेव पर्याप्तानां अपर्याप्तजीवसमास-षडपर्याप्ति-सप्तप्राणाः द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये अनाहारिणश्च न भवन्ति। शेषाः पूर्वोक्तप्ररूपणाः सन्ति<sup>\*३७</sup>।

अब असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नारकी जीवों के आलाप कहते हैं— उनके एक चतुर्थगुणस्थान है, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास हैं, छहों पर्याप्तियाँ हैं, और छहों अपर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण और सात प्राण हैं। अर्थात् अपर्याप्त जीवों के सात प्राण तथा पर्याप्त के दशों प्राण होते हैं। पुनः उनके चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रियजाति है, एक त्रसकाय है, ग्यारह योग (चार मन के, चार वचन के और वैक्रियक काययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग ये ११ योग) हैं। एक नपुंसकवेद है, चारों कषाएं हैं, आदि के तीन ज्ञान हैं, असंयम है, आदि के तीन दर्शन हैं। लेश्याओं की अपेक्षा उन असंयत सम्यग्दृष्टि नारकियों के द्रव्य से कालाकालाभास कृष्णलेश्या, कापोत लेश्या और शुक्ल लेश्या पाई जाती है तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं। वे भव्यसिद्धिक होते हैं, उनके औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक और अनाहारक होते हैं तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीवों के पर्याप्त अवस्था में एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा अनाहारकपना ये चीजें

### \*नं. ३६ नारकसामान्य-असंयतसम्यग्दृष्टि के सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. ऊं	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	१ न.	१ पं.	१ पूँ.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.	१ पूँ.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.३ कृ. का.शु. भा.३ अशु.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ३७ नारकसामान्य-असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. ऊं	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ पं.	१ पूँ.	९ म.४ व.४ वै.१	१ पूँ.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ कृ. भा.३ अशु.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



एतेषामेवापर्याप्तानां नारकसम्यग्दृष्टीनां अपर्याप्तजीवसमास एकः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, वैक्रियिक-मिश्रकार्मणयोगौ द्वौ, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन जघन्या कापोतलेश्या, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, आहारिणः अनाहारिणश्च भवन्ति, शेषाः, पर्याप्तेषु कथिताः प्ररूपणाः सन्ति\*३८।

अधुना प्रसंगानुसारेण सप्तस्वपि पृथिवीषु लेश्या कथनं क्रियते—

काऊ काऊ काऊ, नीला नीला य नील-किण्हा य।

किण्हा य परमकिण्हा, लेस्सा पढमादिपुढवीणं\*१।

प्रथमपृथिव्यां जघन्या कापोतलेश्या, द्वितीयायां मध्यमा कापोतलेश्या, तृतीयायां उत्कृष्टा कापोतलेश्या जघन्या नीललेश्या च भवति। चतुर्थ्यां मध्यमा नीललेश्या, पंचम्यां उत्कृष्टा नीला जघन्या कृष्णा च, षष्ठ्यां मध्यमा कृष्णा,

नहीं पाई जाती हैं। शेष प्ररूपणाएं पूर्वोक्त प्रकार ही हैं।

अर्थात् उनके एक चतुर्थ गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, नपुंसकवेद, चारों कषायें हैं, आदि के तीन ज्ञान हैं, असंयम है, आदि के तीन दर्शन हैं, द्रव्य से उनके कालाकालाभास कृष्णलेश्या है तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं हैं, वे भव्यसिद्धिदक हैं, उनके तीन सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं और साकार, अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित हैं।

उन्हीं नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—उनमें एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास है, छहों अपर्याप्तियाँ हैं, अपर्याप्त संबंधी सात प्राण हैं, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण ये दो योग हैं, द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं हैं और भाव से जघन्य कापोतलेश्या हैं, उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के होते हैं। शेष प्ररूपणाएं पर्याप्तकों के समान ही हैं।

अब यहाँ प्रसंगानुसार सातों नरकपृथिवियों में भी लेश्याओं का कथन किया जाता है—

गाथार्थ —कापोत, कापोत, कापोत और नील, नील, नील तथा कृष्ण, कृष्ण एवं परमकृष्ण लेश्या प्रथमादि पृथिवियों में क्रमशः जानना चाहिए।

प्रथम पृथिवी में जघन्य कापोत लेश्या होती है, दूसरी पृथिवी में मध्यम कापोतलेश्या होती है, तृतीय पृथिवी में उत्कृष्ट कापोत लेश्या और जघन्य नीललेश्या होती है। चतुर्थ पृथिवी में

\*नं. ३८

नारकसामान्य-असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	३	१	३	द्र.२	१	२	१	२	२
वृं.	सं.अ.	अप.	कृं.		न.	पृं.	पृं.	वै.मि.	न.		मति.	असं.	के.द.	का.	भ.	क्षा.	सं.	अहार	अनाकार
								कार्म.			श्रुत.		विना.	शु.		क्षायो.		साकार	अनाकार
											अव.			भा.३					
														अशु.					

सप्तम्यां परमकृष्णा च भवति।

अधुना प्रथमायां नरकभूमौ सामान्येनालापाः कथ्यन्ते —

प्रथमायां नरकपृथिव्यां नारकाणां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि-त्रीण्यज्ञानानि त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि-त्रीणि सम्यक्त्वानि, मिथ्यात्व-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वानि च, संज्ञिनः, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*<sup>३९</sup>।

एतेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, एको जीव समासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि

मध्यम नीललेश्या होती है, पंचम पृथिवी में उत्कृष्ट नील लेश्या एवं जघन्य कृष्णलेश्या होती है, छठी पृथिवी में मध्यम कृष्णलेश्या होती है तथा सातवीं पृथिवी में परमकृष्ण लेश्या होती है।

अब प्रथम नरक भूमि में सामान्य आलाप कहते हैं —

प्रथम नरकभूमि में नारकियों के आलाप कहने पर उनमें चार गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास होते हैं, छह पर्याप्ति और छह अपर्याप्तियाँ होती हैं, दश प्राण और सात प्राण होते हैं, चार संज्ञाएं होती हैं, एक नरकगति होती है, एक पञ्चेन्द्रियजाति होती है, त्रसकाय होती है, ग्यारह योग होते हैं, वहाँ एक नपुंसकवेद होता है, चार कषायें होती हैं, मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान होते हैं तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ये तीन अज्ञान होते हैं, एक असंयम होता है, तीन दर्शन होते हैं, द्रव्य से कालाकालाभासरूप कृष्ण, कापोत और शुक्ल लेश्या होती है तथा भाव से जघन्यकापोत-लेश्या है, वे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के होते हैं। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र ये छह सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, वे आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के होते हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

इसी प्रथम नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त नारकियों के आलाप कहने पर — उनमें चार गुणस्थान होते हैं, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, एक नरकगति होती है, एक पञ्चेन्द्रियजाति है, एक त्रसकाय है, नौ योग ( चार मनोयोग, चार वचनयोग और एक वैक्रियिक काययोग ) होते हैं, एक नपुंसकवेद हैं, चारों

\*नं. ३९

प्रथमपृथिवी-नारकसामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	२	६प.	१०	४	१	१	१	११	१	४	६	१	३	द्र.३	२	६	१	२	२
मि.	सं.प.	६अ.	७		न.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		ज्ञान.३	असं.	के.द.	कृ.का.	भ.		सं.	आहार	साकार
सा.	सं.अ.							व.४			अज्ञा.		विना.	शु.	कृ.			अनाहार	साकार
सम्य.								वै.२			३			भा.१					अनाकार
अवि.								का.१						का.					अ

दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या भावेन जघन्या कापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४०</sup>।

एतेषामेवापर्याप्तानां कथ्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने, एकोऽपर्याप्तो जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगौ द्वौ, विभंगज्ञानमन्तरेण पंच ज्ञानानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, त्रीणि सम्यक्त्वानि-क्षायिकं क्षायोपशमिकं मिथ्यात्वं च। आहारिणोऽनाहारिणः, शेषाः पर्याप्तवत् भवन्ति<sup>\*४१</sup>।

संप्रति प्रथमपृथिवीगतमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः,

कषायें होती हैं, तीनों अज्ञान और आदि के तीन ज्ञान ये छह ज्ञान होते हैं, एक असंयम होता है, आदि के तीन दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्ण लेश्या और भाव से जघन्य कापोतलेश्या होती है, वे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक होते हैं, उनमें छहों सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं तथा साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं प्रथम पृथिवीगत नारकियों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके प्रथम और चतुर्थ ये दो गुणस्थान होते हैं, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास है, छहों अपर्याप्तियाँ हैं, सात प्राण हैं, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण ये दो योग हैं, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान हैं, द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं हैं, क्षायिक, क्षायोपशमिक और मिथ्यात्व ये तीन सम्यक्त्व हैं। वे आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के होते हैं, शेष सभी प्ररूपणाएं पर्याप्तकों के समान ही उनमें होती हैं।

अब पृथिवीगत मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों के आलाप कहे जाते हैं—उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है, दो जीवसमास होते हैं, छहों पर्याप्ति और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, दश प्राण

## \*नं. ४०

## प्रथमपृथिवी-नारक पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ ः	१ ः	९ म.४ व.४ वै.१	१ ः	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा. ३	१ असं.	३ के.द. विना.	१ द्र. कृ. भा.१ का.	२ प्रं. कृ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

## \*नं. ४१

## प्रथमपृथिवी-नारक अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ मि. वि. कृ.	१ ः	६ अप.	७	४	१ न.	१ ः	१ ः	२ वै.मि. कार्म.	१ ः	४	५ कुम. कु.श्रु. ज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	२.२ का. शु. भा.१ का.	२ प्रं. कृ.	३ मि. क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४२।

एतेषामेव पर्याप्तनारकाणां कथ्यमाने अपर्याप्तजीवसमास-अपर्याप्तप्राण-द्वियोग-द्विलेश्या-अनाहारावस्था निष्कासनीया भवन्ति\*४३।

अपर्याप्तनारकाणां च पर्याप्तजीवसमास-पर्याप्ति-पर्याप्तप्राण-नव योग पर्याप्तलेश्याः निष्कास्य शेषाः सर्वाः प्ररूपणाः

हैं और सात प्राण (अपर्याप्त की अपेक्षा) हैं, चारों संज्ञाएं हैं, एक नरकगति है, एक पञ्चेन्द्रियजाति है, एक त्रसकाय है, ग्यारह योग (औदारिक, औदारिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र इन चार को छोड़कर) हैं, एक नपुंसकवेद है, चार कषायें हैं, तीन अज्ञान हैं, एक असंयम है, दो दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभासरूप कृष्णलेश्या, कापोत और और शुक्ल लेश्या है तथा भाव से जघन्य कापोतलेश्या है, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के हैं, सम्यक्त्व की अपेक्षा उनमें एक मिथ्यात्व है, वे संज्ञी होते हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के हैं, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं प्रथम पृथिवी वाले मिथ्यादृष्टि नारकों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर अपर्याप्त जीवसमास, अपर्याप्तियाँ, प्राण, दो योग, दो लेश्याएं, अनाहारक अवस्था आदि इन सभी अपर्याप्त अवस्था संबंधी प्ररूपणाओं को उनमें से निकाल देना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्त अवस्था में उन प्रथम नरक के मिथ्यादृष्टि नारकों के पर्याप्तकाल संबंधी सभी प्ररूपणाएं निकालकर प्रतिपादन करना चाहिए। जैसे—पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, पर्याप्तप्राण, नवयोग, पर्याप्त लेश्याएं इन सभी के अतिरिक्त शेष प्ररूपणाएं

\*नं. ४२

प्रथमपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ न.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	१ वे.	४ क.	३ संज्ञा	१ असं.	२ च. अच.	द्र.३ कृ. का. शु भा.१ का.	२ भ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ४३

प्रथमपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ इं.	१ का.	९ म.४ व.४ वै.१	१ वे.	४ क.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ च. अच.	द्र.१ कृ. भा.१ का.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

प्रतिपादनीया भवन्ति\*४४।

प्रथमपृथिवीगतसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४५।

एषामेव सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाणेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि

उनमें होती हैं।

अब प्रथम पृथिवी के सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकियों के ओघालाप कहे जाते हैं—उनमें एक द्वितीय गुणस्थान है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास है, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण और चारों संज्ञाएं हैं, उनके एक नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और वैक्रियिककाययोग) हैं, एक नपुंसकवेद है, चारों कषायें हैं, तीन अज्ञान हैं, एक असंयम है, दो दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्णलेश्या और भाव से जघन्य कापोतलेश्या होती है, वे भव्यसिद्धिक हैं, उनके एक सासादनसम्यक्त्व होता है, वे संज्ञी और आहारक हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी हैं।

अब उन्हीं प्रथम पृथिवी में उत्पन्न होने वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थानवर्ती नारकियों के ओघालाप कहे जाते हैं—उनमें एक तृतीय गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नवयोग,

\*नं. ४४

प्रथमपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	२	१	२	द्र.२	२	१	१	२	२
मि.	सं.अ.	अप.			न.	ः	ः	वै.मि.	ः	कुम.	असं.	च.	अच.	का. शु. भा.१ का.	ः	मि.	सं.	आहार अनाहार	साकार अनाकार

\*नं. ४५

प्रथमपृथिवी-नारक सासादनसम्यग्दृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१	१	१	१	१	२
सा.	सं.प.				न.	ः	ः	म.४ व.४ वै.१	ः	अज्ञा.	असं.	च.	अच.	कृ. भा.१ का.	भ.	सासा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

त्रिभिरज्ञानैर्मिश्रितानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभासलेश्या, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४६।

असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्, पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४७।

एषामेव पर्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टीनां आलापे भण्यमाने अपर्याप्तजीवसमास-अपर्याप्ति-सप्तप्राणा द्रव्येण

नपुंसकवेद, चारों कषायें, तीनों अज्ञानमिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, दो दर्शन हैं तथा द्रव्य से कालाकालाभासकृष्णलेश्या और भाव से जघन्य कापोतलेश्या होती है, वे भव्य-सिद्धिक हैं, उनके सम्यग्मिथ्यात्व नामक एक सम्यक्त्व है, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं, वे साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं प्रथमपृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने पर— उनमें एक चतुर्थ गुणस्थान है, दो जीव समास हैं, छहों पर्याप्तियाँ हैं, दशों प्राण हैं, चारों संज्ञाएं हैं, नरकगति है, पञ्चेन्द्रिय जाति है, एक त्रसकाय है, नौ योग हैं, नपुंसकवेद है, चारों कषायें हैं, आदि के तीन ज्ञान हैं, असंयम हैं, आदि के तीन दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्ण लेश्या और भाव से जघन्य कापोतलेश्या है, वे भव्यसिद्धिक हैं, उनके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक हैं तथा वे साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं प्रथम पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने

\*नं. ४६

प्रथमपृथिवी-नारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१	१	१	१	१	२
सम्य.	सं.प.				न.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		ज्ञान.	असं.	च.	कृ.	भ.	सम्यग्मि.	सं.	आहार	साकार
								व.४			अज्ञा.		अ.	भा.१					अनाकार
								वै.१			मिश्र.			का.					

\*नं. ४७

प्रथमपृथिवी-नारक असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६प.	१०	४	१	१	१	११	१	४	३	१	३	द्र.३	१	३	१	२	२
पुं.	सं.प.	६अ.	७		न.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		मति.	असं.	के.द.	कृ.का.	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
अ.	सं.अ.							व.४			श्रुत.		विना	शु.		क्षा.		अनाकार	अनाकार
								वै.२			अव.			भा.१		क्षायो.			
								का.१						का.					

कापोतशुक्ललेश्ये अनाहारिणः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*४८।

एतेषामेवापर्याप्तानां कथ्यमाने पर्याप्तजीवसमास-पर्याप्ति-दशप्राणाःअपनेतव्याः। वैक्रियिकमिश्रकर्मणयोगौ द्वौ, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे च। एवं शेषाः प्ररूपणाः सामान्यवत् ज्ञातव्याः\*४९।

द्वितीयायां पृथिव्यां नारकाणामालापे भण्यमाने चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन मध्यमकापोतलेश्या,

पर अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या, अनाहारक ये अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं को निकालकर पर्याप्त प्ररूपणाएं ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं नारकियों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर पर्याप्तजीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दश प्राणों को उनमें से निकाल देना चाहिए। पुनः उनमें वैक्रियिकमिश्र और कर्मण ये दो योग, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या तथा उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं। इसी प्रकार शेष प्ररूपणाएं सामान्य पर्याप्त के समान जानना चाहिए।

अब द्वितीय पृथिवी में उत्पन्न नारकियों के ओघालाप कहे जाते हैं—उनमें प्रारम्भ के चार गुणस्थान, दो जीव समास, छहों पर्याप्ति एवं छहों अपर्याप्तियाँ, दश प्राण और सात प्राण, चारों संज्ञाएं, नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( औदारिक-औदारिकमिश्र और आहारक, आहारकमिश्र इन चार को छोड़कर ) हैं। नपुंसकवेद है, चारों कषायों और छह ज्ञान ( तीनों अज्ञान और आदि के तीन ज्ञान ) हैं, असंयम है, आदि के तीन दर्शन हैं, द्रव्य से कालाकालाभास कृष्णलेश्या, कापोत और शुक्ललेश्या है तथा भाव से मध्यमकापोतलेश्या होती है, उनमें

\*नं. ४८

प्रथमपृथिवी-नारक असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१ कुं.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ वै.१	१ नं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना	३.१ कृ. भा.१ का.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ४९

प्रथमपृथिवी-नारक असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अप.	७	४	१ न.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	१ न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना	३.२ का.शु. भा.१ का.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना पंच सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ताः वा\*५०।

तेषां एवं पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तयोग्यप्ररूपणाः अपनेतव्याः\*५१।

पुनश्चैतेषामपर्याप्तानां कथ्यमाने पर्याप्तप्ररूपणा अपनेतव्याः। मिथ्यात्वमेकमेव गुणस्थानं, द्वे अज्ञाने, इत्यादिव्यवस्था ज्ञात्वा कथयितव्या\*५२।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के हैं, उनमें क्षायिक सम्यक्त्व के बिना शेष पाँच सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी हैं, आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के हैं, वे साकार और अनाकार दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं द्वितीय पृथिवी के नारकियों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों के कथन में अपर्याप्त अवस्था संबंधी प्ररूपणाओं को निकाल देना चाहिए।

तथा उनके अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों का वर्णन करने पर पर्याप्त अवस्था संबंधी प्ररूपणाएं कम कर देनी चाहिए। अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में उनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान

\*नं. ५०

द्वितीयपृथिवी-नारक सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. सम्य. अ.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ न.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	१ न.	४	६ अज्ञा.३ ज्ञान.३	१ असं.	३ के.द. विना	३ द्र.३ कृ. का.शु. भा.१ का.	२ भ. अ.	५ औ. क्षायो. मि. सासा. सम्य.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ५१

द्वितीयपृथिवी-नारक पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ इं.	१ का.	९ म.४ व.४ वै.१	१ न.	४	६ ज्ञा.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना	३ द्र.१ कृ. भा.१ का.	२ भ. अ.	५ मि. सासा. सम्य. औप. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ५२

द्वितीयपृथिवी-नारक अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ न.	१ इं.	१ का.	२ वै.मि. कर्म.	१ न.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ का.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



अत्र द्वितीयनरके नारकाणां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, नपुंसकवेदः चत्वारः कषायाः, त्रीणि अज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कालाकालाभास-कापोत-शुक्ललेश्याः, भावेन मध्यमा कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता अनाकारोपयुक्ता वा भवन्ति\*५३।

एतेषां पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धि-प्ररूपणाः प्ररूपयितव्याः\*५४।

ही होता है, कुमति और कुश्रुत ये दो अज्ञान होते हैं इत्यादि व्यवस्था जानकर समस्त कथन करना चाहिए।

इसी द्वितीय पृथिवी में उत्पन्न मिथ्यादृष्टि नारकियों का कथन किये जाने पर उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दो जीव समास, छहों पर्याप्ति और छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण और सात प्राण होते हैं। उनमें चारों संज्ञाएं, एक नरकगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग हैं तथा उनका नपुंसकवेद होता है, उनके चारों कषायें, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन हैं। उनमें द्रव्य से कालाकालाभासरूप कृष्णलेश्या, कापोत और शुक्ललेश्या होती है तथा भाव से मध्यम कापोतलेश्या पाई जाती है। वहाँ भव्यसिद्धिक भी हैं और अभव्यसिद्धिक जीव भी होते हैं, सम्यक्त्व की अपेक्षा उनके मिथ्यात्व पाया जाता है, वे संज्ञी हैं, आहारक और अनाहारक हैं तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उसी द्वितीय नरक पृथिवी में उत्पन्न मिथ्यादृष्टि नारकियों के पर्याप्तकाल संबंधी ओघालाप में केवल पर्याप्त अवस्था संबंधी प्ररूपणाओं का कथन करना चाहिए।

\*नं. ५३

द्वितीयपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६अ. ६पं.	१० ७	४	१ न.	१ णं.	१ णं.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	१ णं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.३ कृ. का. शु. भा.१ का.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ५४

द्वितीयपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ णं.	१ णं.	९ म.४ व.४ वै.१	१ णं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ च. अच.	द्र.१ कृ. भा.१ का.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तानां कथ्यमानेऽपर्याप्तसंबंधिप्ररूपणाः कथयितव्याः\*५५।

सासादनसम्यग्दृष्टीनामपि भावलेश्या मध्यमा कापोता एतदेवान्तरं न किञ्चिदन्यत्\*५६।

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि भावलेश्यां विहाय न किञ्चिदन्तरं सामान्येन\*५७।

एवमेवासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः

उन्हीं मिथ्यादृष्टि नारकियों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें अपर्याप्तप्ररूपणाओं को ही गर्भित करना चाहिए।

उन द्वितीयनरक के सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती नारकियों के भी भावलेश्या मध्यमकापोत है यही अन्तर जानना चाहिए और अधिक कुछ अंतर नहीं है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वाले उन द्वितीय नरक के नारकियों में भी भावलेश्या को छोड़कर सामान्य से कोई अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार द्वितीय नरक में उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकियों का

\*नं. ५५

द्वितीयपृथिवी-नारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	२	२	१	४	२	१	२	द्र.२	२	१	१	२	२
मि.	सं.अ.	अप.			न.	पुं.	पुं.	वै.मि.	पुं.		कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	साकार
								कर्म.			कुश्रु.		अच.	शु.	अ.			अनाहार	अनाकार
														भा.१					
														का.					

\*नं. ५६

द्वितीयपृथिवी-नारक सासादनसम्यग्दृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१	१	१	१	१	२
सा.	सं.प.				न.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		अज्ञा.	असं.	चक्षु.	कृ.	भ.	सासा.	सं.	आहार	साकार
								व.४					अच.	भा.१					अनाकार
								वै.१						का.					

\*नं. ५७

द्वितीयपृथिवी-नारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र.१	२	१	१	१	२
सम्य.	सं.प.				न.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		ज्ञान.	असं.	च.	कृ.	भ.	सम्य.	सं.	आहार	साकार
								व.४			३		अच.	भा.१					अनाकार
								वै.१			अज्ञा.			का.					
											मिश्र.								

जघन्योत्कृष्ट-नीलकापोतलेश्ययोः सप्तसागरोपमकालनिर्देशात्। तेन कारणेन तृतीयपृथिव्यामुत्कृष्टा कापोतलेश्या जघन्या नीललेश्या च वक्तव्या। चतुर्थ्या पृथिव्यां मध्यमा नीललेश्या। पंचम्यां पृथिव्यां चतुर्णामुपरिमेन्द्रकाणामुत्कृष्टा

चौथी पृथिवी में मध्यम नीललेश्या है। पाँचवीं पृथिवी के पाँच इन्द्रक बिलों में से ऊपर के

द्वितीयपृथिवी-नारक असंयतसम्यग्दृष्टि आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ न.	१ पुं.	१ त्रसं.	९ म.४ व.४ वै.१	१ पुं.	४	३ मति श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ कृ. भा.१ का.	१ भ.	२ औप. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नीललेश्या चैव भवति। पंचमे इन्द्रकबिले उत्कृष्टा नीललेश्या जघन्या कृष्णलेश्या च भवति।

कुतः?

जघन्योत्कृष्टकृष्णनीललेश्ययोः सप्तदशसागरोपमकालनिर्देशात्। अत एते द्वे लेश्ये पञ्चमपृथिवीगतनारकाणां भवन्ति।

षष्ठ्यां पृथिव्यां नारकाणां मध्यमा कृष्णलेश्या भवति।

सप्तम्यां पृथिव्यां नारकाणां उत्कृष्टा कृष्णलेश्या भवति।

इदं नारकाणां अशुभलेश्याप्रकरणं ज्ञात्वा शुभलेश्याभ्य एव भावना विधातव्या। किंचाशुभलेश्या दुर्गतिदुःखकारणान्येव भवन्ति तथा च शुभलेश्या यदि सम्यक्त्वसहितास्तर्हि परंपरया मोक्षकारणं भवितुमर्हन्ति।

एवं नरकगतौ आलापे कथ्यमाने एकोनत्रिंशत्संदृष्टयो गताः।

इति नरकगत्यालापाः।

चार इन्द्रक बिलों में उत्कृष्ट नीललेश्या ही है और पाँचवें इन्द्रक बिल में उत्कृष्ट नीललेश्या तथा जघन्य कृष्णलेश्या है।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि जघन्य कृष्णलेश्या और उत्कृष्ट नीललेश्या का आगम में सत्रह सागरप्रमाण काल का निर्देश किया गया है। अतएव ये दोनों लेश्याएं पाँचवीं पृथिवी के नारकियों के होती हैं। छठी पृथिवी के नारकियों के मध्यम कृष्णलेश्या होती है। सातवीं पृथिवी के नारकियों के उत्कृष्ट कृष्णलेश्या होती है।

इस प्रकार इन नारकी जीवों की अशुभलेश्या के प्रकरण को जानकर हम सभी को शुभलेश्याओं की ही भावना करनी चाहिए, क्योंकि अशुभलेश्याएं दुर्गति के दुःखों को प्राप्त कराने में ही कारण होती हैं तथा सम्यक्त्व से सहित यदि शुभलेश्याएं हैं तो परम्परा से वे मोक्ष का कारण बन सकती हैं।

इस प्रकार नरकगति के आलापों के कथन में उनतीस संदृष्टियाँ पूर्ण हुईं।

नरकगति के आलाप पूर्ण हुए।

*विशेषार्थ* —नरकगति में प्रारंभ के चार गुणस्थान ही होते हैं, उससे आगे के पंचम आदि गुणस्थान वहाँ पाये ही नहीं जाते हैं क्योंकि नरकों में देशसंयम अथवा सकल संयम आदि की योग्यता ही नहीं पाई जाती है।

नरकगति में उपर्युक्त जो प्ररूपणाएं कही गई हैं उनमें प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान के समस्त नारकियों की पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्थाओं के द्वारा उनकी स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। प्रथम नरक से लेकर सातवें नरकपर्यन्त सभी नारकी अपनी-अपनी योग्यतानुसार गुणस्थानों में अवस्थान करते हैं। चूंकि षट्खंडागम की ध्वला टीका में चारों ही गतियों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति मानी है अतः नरकों में भी उस सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की योग्यता पर यहाँ कुछ विषयों की पुष्टि की जा रही है।

कितने ही अनादिमिथ्यादृष्टि नारकी जीव जातिस्मरण से, धर्मोपदेश से और वेदना से अभिभूत होकर सम्यक्त्व को उत्पन्न कर लेते हैं। अर्थात् तीन कारणों में से किसी भी कारण के मिलने पर नारकियों के सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। इनमें सामान्यरूप से भवस्मरण के द्वारा सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती है किन्तु यदि किसी ने पूर्वभव में धर्मबुद्धि से कुछ अनुष्ठान किये

अथ तिर्यग्गत्यालापा उच्यन्ते —

अत्र तिर्यग्गतौ एकचत्वारिंशत्संदृष्टयः सन्ति, तत्र तावत् प्रथमतः तिरश्चां भेदान् प्रतिपाद्य तेष्वालापाः प्रतिपाद्यन्ते।

तिर्यग्गतौ तिरश्चां भण्यमाने तिर्यञ्चः पञ्चविधा भवन्ति — तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्ताः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमत्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ताश्चेति।

थे और वे वास्तविक धर्मरूप न होने से उनका फल नहीं मिल सका ऐसा जानकर ही कदाचित् किसी को सम्यक्त्व उत्पन्न हो गया हो तो वह जातिस्मरण निमित्तक कहलाता है और इस प्रकार की बुद्धि सब नारकी जीवों के होती नहीं है, क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व के उदय के वशीभूत नारकी जीवों के पूर्वभवों का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव है। अतः इस प्रकार का जातिस्मरण ही सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है।

कोई-कोई सम्यग्दृष्टि देव किसी नारकी को अपने पूर्व का संबंधी जान लेते हैं और यदि उसको धर्म में लगाना चाहते हैं तो वे वहाँ नरकों में जाकर धर्मोपदेश देकर सम्यक्त्व ग्रहण करा देते हैं। सम्यक्त्वोत्पत्ति का यह कारण प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय इन तीन नरकों तक पाया जाता है, इससे आगे यह कारण नहीं होता है क्योंकि देवों की गमनशक्ति नहीं है। किन्तु नीचे की चार पृथिवियों में जातिस्मरण और वेदनानुभव ये दो निमित्त सम्यक्त्व उत्पत्ति के लिए बताये गये हैं।

वेदना से उत्पन्न होने वाले सम्यग्दर्शन के वर्णन में कहा है कि वेदनासामान्य तो सम्यक्त्व उत्पत्ति का कारण नहीं है किन्तु जिन जीवों के ऐसा उपयोग होता है कि अमुकवेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या अमुक असंयम से उत्पन्न हुई है उन्हीं जीवों की वेदना सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती है। अर्थात् मैंने पूर्वभव में अमुक पाप किया जिसके फलस्वरूप मुझे आज यहाँ इस नरक में यह घोर वेदना मिल रही है ऐसा भाव हो जाने से उस पाप और मिथ्यात्व से भय उत्पन्न होता है पुनः सम्यक्त्व प्रगट हो जाता है, परन्तु अन्य जीवों की वेदना यहाँ सम्यक्त्व का कारण नहीं बनती है।

इस प्रकार नरकगति में भी सम्यग्दर्शन के कारणों को जानकर अपने मनुष्यगति में प्राप्त हो चुके सम्यग्दर्शन को दृढ़ रखने का पुरुषार्थ करना चाहिए ताकि नरकों में जन्म न लेना पड़े।

अब तिर्यञ्चगति के आलाप कहे जाते हैं—

तिर्यञ्च गति में इकतालीस ( ४१ ) संदृष्टियाँ होती हैं, उनमें सर्वप्रथम तिर्यञ्च जीवों के भेदों का प्रतिपादन करके उनके आलाप कहे जाते हैं—

तिर्यञ्च गति में तिर्यञ्च जीवों के आलाप का वर्णन करते हुये कहते हैं कि तिर्यञ्च जीव पाँच प्रकार के होते हैं—१. सामान्य तिर्यञ्च, २. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, ३. पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, ४. पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यञ्च और ५. पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त तिर्यञ्च।

उनमें से सामान्य तिर्यञ्च जीवों के आलाप कहने पर उनके आदि के पाँच गुणस्थान होते हैं, चौदहों जीवसमास हैं, संज्ञी जीवों की अपेक्षा उनमें छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ मानी गई हैं, तथा पाँच पर्याप्तियाँ—पाँच अपर्याप्तियाँ असंज्ञी और विकलत्रयों के होती हैं, एवं एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा चार पर्याप्तियाँ और चार अपर्याप्तियाँ होती हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के दश प्राण और सात प्राण होते हैं, असंज्ञी पंचेन्द्रियों के नौ प्राण और

एतेषामेव पर्याप्तानामालापे कथ्यमाने अपर्याप्तजीवसमासाः अपर्याप्तावस्थायाः पर्याप्तयः प्राणाः  
औदारिकमिश्रकार्मणयोगौ अनाहारिणश्चैते निष्कासनीयाः\*६०।

उन्हीं सामान्य तिर्यञ्चों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप का कथन करने पर उपर्युक्त वर्णन में से अपर्याप्त अवस्था संबंधी जीवसमास, पर्याप्तियाँ, प्राण, औदारिकमिश्र एवं कर्मणकाययोग और

## सामान्य तिर्यचों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्य. अवि. देश.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४ ति.	५	६	११ म.४ व.४ औ.२ कर्म.१	३ ४			६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## सामान्य तिर्यंचों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	हं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्प्य अवि. देश.	७  पूर्वा:	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	१ ति.	५	६	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	२ भ. अभ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेव तिरश्चां अपर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति त्रीणि गुणस्थानानिमिथ्यात्व-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः, सप्त जीवसमासाः, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः षट् प्राणाः पञ्चप्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट्कायाः, द्वौ योगौ, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन विना पञ्च ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः।

किं कारणम् ?

येन तेजः पद्मलेश्यावन्तोऽपि देवा तिर्यक्षु उत्पद्यमाना नियमेन नष्टलेश्या भवन्तीति।

भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं कृतकरणीयं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वमेवं चत्वारि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*६१।

अनाहारक इन चीजों को निकालकर शेष सभी का अस्तित्व पाया जाता है ऐसा समझना चाहिए।

इन्हीं तिर्यञ्च जीवों के अपर्याप्त अवस्था के आलाप कहे जाते हैं—

उनके आदि के तीन—मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र ये तीन गुणस्थान पाये जाते हैं अपर्याप्त संबंधी सात जीवसमास, संज्ञीपंचेन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय एवं विकलत्रयों की अपेक्षा छह और पाँच अपर्याप्तियाँ, एकेन्द्रिय अपर्याप्त के चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियों के सातप्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियों के सात प्राण, चतुरिन्द्रियों के छह प्राण, त्रीन्द्रियों के पाँच प्राण, द्विन्द्रियों के चार प्राण और एकेन्द्रिय जीवों के तीन प्राण होते हैं। अपर्याप्त तिर्यञ्चों के चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रिय जाति पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, दो योग ( औदारिक मिश्र और कर्मणयोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान, असंयम आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्याएं एवं भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं होती हैं।

प्रश्न—उन अपर्याप्त तिर्यञ्चों में तीनों अशुभ लेश्याएं ही क्यों पाई जाती हैं ?

उत्तर—क्योंकि तेजो ( पीत ) एवं पद्मलेश्या वाले भी देव आदि तिर्यञ्चों में उत्पन्न होते हैं तो नियम से उनकी शुभ लेश्याएं नष्ट हो जाती हैं इसलिए अपर्याप्त तिर्यञ्चों के तीन अशुभलेश्याएं ही होती हैं।

लेश्या आलाप के पश्चात् आगे की श्रृंखला में वे अपर्याप्त तिर्यञ्च भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों भेद पाये जाते हैं। उनके मिथ्यात्व, सासादन, क्षायिक एवं कृतकृत्य की अपेक्षा वेदक ये चार सम्यक्त्व होते हैं। वे संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं, आहारक

\*नं. ६१

सामान्य तिर्यचों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३	७	६अ.	७	४	१	५	६	२	३	४	५	१	३	द्र.२	२	४	२	२	२
मि.	अ.	५अ.	७		ति.			औ.मि.			कुम.	असं.	के.द.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	साकार
सा.	प.	४अ.	६					कर्म.			कुश्रु.		विना.	शु.	अ.	सा.	असं.	अनाहार	अनाकार
अवि.			५								मति.			भा.३		क्षा.			
			४								श्रुत.			अशु.		क्षायो.			
			३								अव.								

संप्रति तिर्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वं एतदेवान्तरं, शेषाः प्ररूपणाः सामान्यवत् ज्ञातव्याः\*६२॥

और अनाहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है, तीन अज्ञान होते हैं, असंयम है, दो दर्शन होते हैं, सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा उनके मिथ्यात्व होता है, यही इन तिर्यचों में अंतर पाया जाता है। शेष प्ररूपणाएं सामान्य तिर्यचों के समान जानना चाहिए।

उन्हीं सामान्य तिर्यचों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहे जाते हैं—

उन मिथ्यादृष्टि पर्याप्त तिर्यच जीवों के इकतालिस ( ४१ ) सदृष्टि हैं ( कोष्ठक हैं ) उनमें से प्राथमिक रूप से तिर्यचों के भेदों का प्रतिपादन करके उनमें आलाप बतलाते हैं।

तिर्यचगति में तिर्यचजीवों के कथन के अंतर्गत तिर्यच पाँच प्रकार के बताये गये हैं—

१. सामान्य तिर्यच २. पञ्चेन्द्रिय तिर्यच ३. पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच ४. पञ्चेन्द्रिय योनिमती ( स्त्रीवेदी ) तिर्यच ५. पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यच।

इनमें से प्रथम सामान्य तिर्यचों का वर्णन किया जाता है—

उनमें आदि के पाँच गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ एवं छहों अपर्याप्तियाँ ( संज्ञी की अपेक्षा ) हैं। असंज्ञी और विकलत्रय जीवों की अपेक्षा पाँच पर्याप्तियाँ और पाँचों ही अपर्याप्तियाँ ( मन के बिना ) होती हैं। एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा वहाँ चार पर्याप्तियाँ और चार अपर्याप्तियाँ ( भाषा और मन के बिना ) पाई जाती हैं। प्राणप्ररूपणा के अंतर्गत पञ्चेन्द्रिय तिर्यचों ( संज्ञी ) के दशों प्राण और सात ( अपर्याप्त के ) प्राण होते हैं और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के नौ प्राण तथा सात प्राण ( अपर्याप्त अवस्था में ) पाये जाते हैं।

इसी प्रकार चार इन्द्रिय पर्याप्तक के आठ प्राण और अपर्याप्तक के छह प्राण होते हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त अवस्था में सात प्राण और अपर्याप्त अवस्था में पाँच प्राण होते हैं। पर्याप्तक दो इन्द्रियों के छह प्राण तथा अपर्याप्तकों में चार प्राण पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय पर्याप्तकों के चार तथा अपर्याप्तकों के तीन प्राण होते हैं। पुनः संज्ञामार्गणा के अनुसार तिर्यचों के सभी संज्ञाएं होती हैं, एक तिर्यचगति होती है, एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक पाँचों जातियाँ, छहों काय और ग्यारह योग ( औदारिक द्विक् और आहारक द्विक् को छोड़कर ) होते हैं। तीनों वेद होते हैं, चारों कषाय, छह ज्ञान ( तीन

\*नं. ६२

सामान्य तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	१ ति.	५	६	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ च. अच.	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अभ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



एतेषां पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*६३।

एवमेवापर्याप्तानां तिर्यग्मिथ्यादृष्टीनां पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः अपनेतव्या भवन्ति\*६४।

अज्ञान एवं तीन सुज्ञान), दो संयम ( असंयम और देशसंयम ), तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी-असंज्ञी, आहारक-अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

इन्हीं तिर्यञ्च जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों का कथन करने पर उनमें से अपर्याप्त जीवसमास, अपर्याप्त अवस्था संबंधी पर्याप्तियाँ, प्राण, औदारिकमिश्र और कर्मणयोग एवं अनाहारक ये प्ररूपणाएं निकाल देना चाहिए।

इसी प्रकार उन तिर्यञ्चों के अपर्याप्त काल संबंधी आलापों को कहने पर उनमें मिथ्यात्व, सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान पाये जाते हैं, सात जीवसमास ( अपर्याप्त संबंधी ), छहों अपर्याप्तियाँ ( संज्ञी की अपेक्षा ), पाँच अपर्याप्तियाँ ( असंज्ञी और विकलत्रयों की अपेक्षा ), चार अपर्याप्तियाँ ( एकेन्द्रियों की अपेक्षा ), सात प्राण ( संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक की अपेक्षा ), छह प्राण ( चार इन्द्रिय जीवों के ), पाँच प्राण ( तीन इन्द्रियों के ), चार प्राण ( दो इन्द्रियों के ) एवं तीन प्राण ( एकेन्द्रियों के ) होते हैं। आगे उनके चारों संज्ञाएं हैं, एक तिर्यञ्चगति होती है, एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक पाँचों जातियाँ होती हैं, पृथिवीकाय आदि छहों काय, दो योग ( औदारिकमिश्र और कर्मणकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान के बिना पाँचों ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या पाई जाती हैं।

शंका — अपर्याप्त तिर्यञ्चों में तीन अशुभ लेश्याएं ही किसलिए पाई जाती हैं ?

समाधान — क्योंकि तेजो ( पीत ) और पद्मलेश्या वाले भी देव यदि तिर्यञ्चों में जन्म धारणकर लेते

### \*नं. ६३ सामान्य तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ हिं.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	१ ति.	५	६	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मिथ्या.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ६४ सामान्य तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अ. प.	६अप. ५अप. ४अप.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	१ ति.	५	६	२ औ.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मिथ्या.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धि-जीवसमास-पर्याप्ति-प्राण-योग-अनाहाराः प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*६६।

सामान्य तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के ओघालाप अब कहे जाते हैं — उनके एक सासादन गुणस्थान, दो जीव समास ( संज्ञीपर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण ( पर्याप्त की अपेक्षा ), सात प्राण ( अपर्याप्त की अपेक्षा ), चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक काययोग,

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ ति.	१ प्रं.	१ प्रं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प	६	१०	४	१ ति.	१ पुं.	१ सू.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार असाकार

एतेषामेवापर्याप्तानां पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*६७।

अत्र द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः भवन्ति।

सामान्यतिर्यक्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*६८।

औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग), तीनों अज्ञान ( कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ), असंयम, दो दर्शन ( चक्षु एवं अचक्षु ), द्रव्य एवं भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सामान्य तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में अपर्याप्त संबंधी सभी आलाप छोड़कर कथन करना चाहिए। अर्थात् एक अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, अपर्याप्तकाल संबंधी सातप्राण, औदारिकमिश्र और कर्मण ये दो योग, अनाहारक अवस्था ये सभी प्ररूपणाएं उन पर्याप्त तिर्यञ्चों में नहीं पाई जाती हैं, शेष सभी प्ररूपणा उनमें पाई जाती हैं।

इसी प्रकार उन सासादन सम्यग्दृष्टि सामान्य तिर्यचों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों में से पर्याप्तकाल संबंधी सभी प्ररूपणाएं निकल जाती हैं। इनके द्रव्यरूप से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती सामान्य तिर्यञ्च जीवों के आलाप कहे जाते हैं— उनके एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थान होता है, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्च गति, एक पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, नवयोग ( चार

### \*नं. ६७ सामान्य तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	३	४	२	१	२	द्र.२	१	१	१	२	२
सा.	सं.अ.	अप.			ति.	पृ.	पृ.	औ.मि.			कुम.	असं.	चक्षु.	का.शु.	भ.	सासा.	सं.	आहार	साकार
								कर्म.			कुश्रु.		अच.	भा.३				अनाहार	अनाकार
														अशु.					

### \*नं. ६८ सामान्य तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
पृ.	सं.प.				ति.	पृ.	पृ.	म.४			ज्ञान.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	सम्य.	सं.	आहार	साकार
								व.४			३		अच.						अनाकार
								औ.१			अज्ञा.								
											मिश्र.								

सामान्यतिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टीनां निगद्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यगगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*६९।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धित आलापा अपनेतव्याः\*७०।

एतेषामेवापर्याप्तानामुच्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः,

मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिककाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित तीन अज्ञान, असंयम, दो दर्शन (चक्षु-अचक्षु), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

सामान्य तिर्यञ्च असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहे जाते हैं—उनके एक असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान पाया जाता है, दो जीवसमास (संज्ञी पर्याप्तक-संज्ञी अपर्याप्तक), छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण तथा सात प्राण (पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों की अपेक्षा), चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग (चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, कर्मणकाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक), संज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप में अपर्याप्तसंबन्धी आलाप निकाल देना चाहिए।

### \*नं. ६९ सामान्य तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६प.	१०	४	१	१	१	११	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	२	२
सं.प.	सं.प.	६अ.	७		ति.	पिं.	प्लं.	म.४			मति.	असं.	के.द.	भा.६	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
	सं.अ.							व.४			श्रुत.		विना		क्षायो.			अनाहार	अनाकार
								औ.२			अव.								
								का.१											

### \*नं. ७० सामान्य तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.प.	सं.प.				ति.	पिं.	प्लं.	म.४			मति.	असं.	के.द.	भा.६	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
								व.४			श्रुत.		विना		क्षायो.				अनाकार
								औ.१			अव.								

तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, पुरुषवेदः — स्त्रीनपुंसकवेदाभ्यां तिर्यग्गतौ सम्यक्त्वेन सहोत्पादाभावात्। चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन जघन्या कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वेमनुष्याः पूर्वबद्धतिर्यगायुषः पश्चात् सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा असंख्यातवर्षायुष्केषु तिर्यक्षूत्पद्यन्ते नान्यत्र, तेन भोगभूमितिर्यक्षूत्पद्यमानान् अपेक्ष्यासंयतसम्यग्दृष्टिरपर्याप्तकाले क्षायिकसम्यक्त्वं लभते। तत्रोत्पद्यमानकृतकरणीयं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वं लभ्यते। एवं तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टेरपर्याप्तकाले द्वे सम्यक्त्वे भवतः। संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*७१</sup>।

सामान्यतिर्यक्संयतासंयतानामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः,

उन्हीं सामान्य तिर्यञ्च असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके एक चतुर्थ गुणस्थान होता है, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तिचाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये दो योग, पुरुषवेद होता है क्योंकि तिर्यञ्चजीवों में सम्यग्दर्शन के साथ स्त्रीवेद एवं नपुंसकवेद का अभाव पाया जाता है अर्थात् उनके केवल एक पुरुषवेद ही होता है। पुनश्च उनमें चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से जघन्य कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व (क्षायिक और क्षायोपशमिक) होते हैं। इसका कारण यह है कि जिन मनुष्यों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व तिर्यचायु को बांध लिया है वे उसके बाद सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर और दर्शनमोहनीय का क्षपण कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमि के तिर्यञ्चों में ही उत्पन्न होते हैं, अन्यत्र उनकी उत्पत्ति संभव नहीं है, इसीलिए भोगभूमि के तिर्यचों में उत्पन्न होने वाले जीवों की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि के अपर्याप्त काल में क्षायिक-सम्यक्त्व पाया जाता है तथा उन्हीं भोगभूमि के तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वाले जीवों के कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा वेदक सम्यक्त्व भी पाया जाता है। अतः तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकाल में दो सम्यक्त्व होते हैं। सम्यक्त्व आलाप के इस कथन के पश्चात् वे संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब सामान्य तिर्यञ्चों संयतासंयत गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहे जाते हैं—उनके एक

### \*नं. ७१ सामान्य तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	३	१	३	द्र.२	१	२	१	२	२
सं.अ.	सं.अ.	अप.	अप.	ति.	ति.	ति.	ति.	औ.मि.	पु.		मति.	असं.	के.द.	का.शु	भ.	क्षा.	सं.	आहार	अनाहार
क								कर्म.			श्रुत.		विना.	भा.१	क्षायो.			साकार	अनाकार
											अव.			का.					

चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि अज्ञानानि संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे।

केन कारणेन ?

तिर्यक्संयतासंयता दर्शनमोहनीयं कर्म न क्षपयन्ति, तत्र जिज्ञानाभावात्। मनुष्याः पूर्वं बद्धतिर्यगायुषः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः कर्मभूमीषु नोत्पद्यन्ते किन्तु भोगभूमीषु। भोगभूमीषूत्पन्ना अपि न संयमासंयमं प्रतिपद्यन्ते, तेन तिरश्चां संयतासंयतगुणस्थाने क्षायिकसम्यक्त्वं नास्ति।

संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*७२।

तिरश्चां पंचभेदेषु द्वितीयभेदे पञ्चेन्द्रियतिरश्चां भण्यमाने सन्ति पंच गुणस्थानानि, चत्वारो जीवसमासाः — संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तभेदात्। षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव

देशविरत ( पंचम ) गुणस्थान पाया जाता है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति और त्रसकाय पाई जाती हैं। आगे उनके नवयोग ( चार मनोयोग, चारों वचनयोग और एक औदारिककाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से पित, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं, भव्यत्वगुण तथा क्षायिक सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं।

प्रश्न — वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व किस कारण नहीं पाया जाता है ?

उत्तर — क्योंकि संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च जीव दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण नहीं करते हैं, चूँकि वहाँ पर केवली-श्रुतकेवली का अभाव पाया जाता है। जो मनुष्य पूर्व में तिर्यञ्चायु का बंध कर चुके हैं उसके बाद क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, वे मनुष्य कर्मभूमियों में उत्पन्न नहीं होते हैं बल्कि भोगभूमियों में ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु भोगभूमियों में पैदा होने वाले तिर्यञ्च संयमासंयम को प्राप्त नहीं होते हैं, इसलिए तिर्यञ्चों के संयमासंयम गुणस्थान में क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता है। सम्यक्त्व आलाप के आगे वे संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

तिर्यञ्च जीवों के पाँच भेदों में से द्वितीय भेद वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के आलाप अब प्रारंभ होते हैं — उनमें आदि के पाँच गुणस्थान पाये जाते हैं, चार जीवसमास होते हैं, ( संज्ञी पर्याप्त, संज्ञी

\*नं. ७२

सामान्य तिर्यच संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.६	१	२	१	१	२
सं.प.					ति.	पि.	पु.	म.४			मति.	देश.	के.द.	भा.३	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
								व.४			श्रुत.		विना.	शुभ.	क्षायो.				अनाकार
								औ.१			अव.								

प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, द्वौ संयमौ— असंयमो देशसंयमश्च, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ताः वा<sup>\*७३</sup>।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने संति पंच गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ इत्यादयः पर्याप्तसंबन्धिनः आलापाः कथयितव्याः<sup>\*७४</sup>।

अपर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त ये चार जीवसमास ही उनमें पाये जाते हैं)। उनमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय की अपेक्षा छहों पर्याप्तियाँ एवं छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय की अपेक्षा पाँच पर्याप्तियाँ और पाँच अपर्याप्तियाँ पाई जाती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच प्राणी के पर्याप्त अवस्था में दशों प्राण होते हैं एवं अपर्याप्त अवस्था में उनके सात प्राण पाये जाते हैं तथा असंज्ञी जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था में क्रमशः नौ प्राण और सात प्राण होते हैं। इसके पश्चात् आलाप के वर्णन में उनके चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, छह ज्ञान (तीन अज्ञान एवं आदि के तीन ज्ञान), दो संयम (असंयम और देशसंयम), तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छह सम्यक्त्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी तथा अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के पर्याप्त अवस्था संबंधी आलापों में उनके पाँच गुणस्थान, दो जीवसमास आदि पर्याप्तकाल संबंधी सभी आलापों का कथन करना चाहिए अर्थात् उन्हें इस प्रकार जानें कि—

### \*नं. ७३

### पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्य. अवि. देश.	४ सं.प. स.अ. अ.प. अ.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४ १ १ १	१ ति. पं. पं.	१ इं. इं. इं.	१ का. का. का.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३ ४	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ७४

### पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्य. अवि. देश.	२ सं.प. अ.सं. प.	६ ५	१० ९	४ १ १ १	१ ति. पं. पं.	१ इं. इं. इं.	१ का. का. का.	९ म.४ व.४ औ.२	३ ४	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अभ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति त्रीणि गुणस्थानानि—मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं असंयतगुणस्थानं । द्वौ योगौ—औदारिकमिश्रकर्मणयोगौ, विभंगज्ञानेन विना पञ्च ज्ञानानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्ण-नील-कापोतलेश्याः, चत्वारि सम्यक्त्वानि—मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं कृतकरणीयं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वं इति चत्वारि भवन्ति सम्यग्मिथ्यात्वं उपशमसम्यक्त्वं च नास्ति। संज्ञिनः असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ताः वा<sup>५६</sup>।

उनमें आदि के पाँच गुणस्थान संभावित होते हैं, संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं तथा छहों पर्याप्तियाँ ( संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा ) पाई जाती हैं, दश एवं नौ प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, छह ज्ञान ( तीन अज्ञान तथा आदि के तीन सम्यग्ज्ञान ), असंयम और देशसंयम ये दो संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक छहों सम्यक्त्व, संज्ञी-असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकार एवं अनाकार ये दोनों उपयोग उनमें पाये जाते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलाप प्रारंभ होते हैं—

उनके तीन गुणस्थान ( मिथ्यात्व, सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टि ) होते हैं, दो जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त-असंज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं, छहों अपर्याप्तियाँ और पाँच अपर्याप्ति ( असंज्ञी के ) होती हैं। पुनः उनके क्रमशः सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्च गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय पाये जाते हैं। आगे योगमार्गणा की अपेक्षा औदारिकमिश्र और कर्मण ये दो योग उनमें होते हैं, तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान ( मति, श्रुत, अवधि एवं कुमति, कुश्रुत ) होते हैं। संयम मार्गणा की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यञ्चों के असंयम अवस्था ही रहती है तथा आदि के तीन दर्शन होते हैं। लेश्यामार्गणा के अनुसार उनके द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं रहती हैं एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। उनमें भव्य और अभव्य दोनों श्रेणी के जीव रहते हैं इसलिए भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों भेद इस भव्यमार्गणा के अंतर्गत होते हैं। आगे उनके चार सम्यक्त्व ( मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व एवं कृतकृत्य की अपेक्षा वेदक सम्यक्त्व ) होते हैं तथा उन अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों के सम्यग्मिथ्यात्व एवं उपशम ये दो सम्यक्त्व नहीं पाये जाते हैं। उनमें संज्ञीमार्गणा की अपेक्षा संज्ञी-असंज्ञी दोनों भेद होते हैं, आहारक और अनाहारक होते हैं तथा वे साकारोपयोगी

### \*नं. ७५

### पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अ.	२ सं. अप. असं. अप.	६अ. ५अ.	७ ७	४ ४	१ ति.	१ पं.	१ पं.	२ मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	३ द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	४ मि. सा. क्षा. क्षायो.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



पंचेन्द्रियतिरश्चां मिथ्यादृष्टीनामुच्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं इत्यादि संज्ञ्यसंज्ञिसहिताः प्ररूपणाः कथयितव्याः\*७६।  
एतेषामेव पर्याप्तानां उच्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धि-प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*७७।

एवं अनाकारोपयोगी इन दोनों भेदों से समन्वित होते हैं।

अब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप की अपेक्षा उनके एक गुणस्थान तथा संज्ञी-असंज्ञी सहित समस्त प्ररूपणाएं जानना चाहिए। इनका विश्लेषण निम्न प्रकार है—

उनके एक प्रथम मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थान पाया जाता है, चार जीवसमास ( संज्ञीपर्याप्त-अपर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त ) होते हैं, संज्ञी के छहों पर्याप्तियाँ ( पर्याप्त की अपेक्षा ), छहों अपर्याप्तियाँ ( संज्ञी अपर्याप्त की अपेक्षा ), असंज्ञी पर्याप्त को पाँच पर्याप्तियाँ और अपर्याप्त को पाँच अपर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी के दशों प्राण, अपर्याप्त के सात प्राण और असंज्ञी के नौ प्राण, अपर्याप्त के सात प्राण होते हैं। आगे उन तिर्यञ्चों के चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप में अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाएं उसमें से निकाल देना चाहिए। उसका विस्तारपूर्वक कथन निम्न प्रकार है—

उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है, संज्ञीपर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं, संज्ञी जीव के छहों पर्याप्तियाँ और असंज्ञी के पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार संज्ञी तिर्यञ्चों के दशों

### \*नं. ७६ पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४	१ ति.	१ णि.	१ णं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि. असं.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ७७ पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. असं. प.	६ ५	१० ९	४	१ ति.	१ णि.	१ णं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि. असं.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

अपर्याप्तानां च मिथ्यादृष्टीनामुच्यमाने पर्याप्तसंबन्धि-प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*७८।

पंचेन्द्रियतिर्यक्सासादनानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयोवेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*७९।

प्राण होते हैं एवं असंज्ञी के नौ प्राण होते हैं। पुनः उनके चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्च गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिक काययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों में पर्याप्त संबंधी सभी प्ररूपणाएं निकालकर कथन किया जाता है, यथा—

उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, संज्ञी अपर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, संज्ञी के छहों अपर्याप्तियाँ, असंज्ञी के पाँच अपर्याप्तियाँ, संज्ञी के सात प्राण और असंज्ञी के सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्र एवं कर्मणकाययोग ये दो योग, तीनों वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्याएं, भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप का वर्णन प्रारंभ होता है—

उनके एक सासादन गुणस्थान, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ,

### \*नं. ७८ पंचेन्द्रिय तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ. असं. अप.	६ अ. ५ अ.	७ ७	४ ४	१ ति.	१ णि.	१ णि.	२ औ.मि. कर्म.	३ ३	४ ४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	६.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ७९ पंचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४ ४	१ ति.	१ णि.	१ णि.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३ ३	४ ४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषां पर्याप्तानां आलापे भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धि-प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*८०।

एतेषामेवापर्याप्तानां उच्यमाने पर्याप्तालापाः अपनेतव्याः\*८१।

छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादन सम्यक्त्व, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में अपर्याप्त संबंधी सभी प्ररूपणाएं निकाल देना चाहिए। अर्थात् निम्नप्रकार से उन आलापों को समझना चाहिए—

उनके एक सासादन गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, एक पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चार मन के, चार वचन के, एक औदारिक काययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञीपना, आहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों उपयोग होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप में पर्याप्त संबंधी सभी प्ररूपणाएं छोड़कर कथन करना चाहिए। जैसे—

उनके एक सासादन गुणस्थान, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्रकर्मणकाययोग ),

### \*नं. ८० पंचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	१ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ८१ पंचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	२ औ.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पंचेन्द्रियतिर्यक्-सम्यग्मिथ्यादृष्टानामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*८२।

पञ्चेन्द्रियतिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टीनामुच्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*८३।

तीनों वेद, चारों कषाय, कुमति और कुश्रुत ये दो अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्याएं, भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं, भव्यत्व, सासादन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थान होता है, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों उपयोग होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर उनके चतुर्थ गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दश प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, पंचेन्द्रियजाति,

\*नं. ८२

पंचेन्द्रिय तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. सं.प.	१	६	१०	४	१	१	१	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ ज्ञान. ३ अज्ञा. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ८३

पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. सं.प. सं.अ.	२	६प. ६अ.	१० ७	४	१	१	१	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पर्याप्तानां पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः प्ररूपयितव्याः\*८४।

एतेषामेवापर्याप्तानां अपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः कथयितव्याः। विशेषेण तु द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन जघन्या कापोतलेश्या तिरश्चां, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे इत्यादयः\*८५।

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः,

त्रसकाय, ग्यारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों उपयोग होते हैं।

उन्हीं पंचेन्द्रिय असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप इस प्रकार जानना चाहिए—

उनके एक चतुर्थ गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप में अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाएं कहना चाहिए। इसमें विशेष बात यह है कि उनके द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या होती है और भाव से उन तिर्यञ्चों के जघन्य कापोत लेश्या होती है। पुनः सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा उनमें उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं.....इत्यादि।

#### \*नं. ८४ पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं. कं	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ पं.	१ पं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	६ भा.६	१ भ	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

#### \*नं. ८५ पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं. कं	१ सं.अ. अप.	६	७	४	१ ति.	१ पं.	१ पं.	२ औ.मि. कार्म.	१	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	२ का. शु. भा.१ का.	१ भ.	२ क्षायो. क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजः-पद्म-शुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता वा भवन्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>८६</sup>।

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तानामुच्यमाने मिथ्यादृष्टेरारभ्य संयतासंयतपर्यन्ताः भंगाः पञ्चेन्द्रियतिर्यगवत् ज्ञातव्याः। केवलं विशेषः—पुरुषनपुंसकवेदौ द्वौ एव भवतः, स्त्रीवेदोऽत्र नास्ति। अथवा त्रयोऽपि वेदा भवन्ति।

अस्यायमर्थः—पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तेषु “द्वौ वेदौ” इति कथनेन योनिमतीतिरश्चीनां पृथक् कथनं वर्तते। यदि पुनः पर्याप्तस्य योनिमतीतिरश्च्यश्च भेदो न कुर्यात् तर्हि त्रयोऽपि भेदाः अत्र भवन्ति।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिनीनां भण्यमाने सन्ति पञ्च गुणस्थानानि, चत्वारो जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, पंच पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, द्वौ संयमौ—असंयमो देशसंयमश्च, त्रीणि दर्शनानि,

अब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके पंचम गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, देशसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से पीत, पद्म, शुक्ल लेश्याएं, भव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकों के आलाप कहने पर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से प्रारंभ करके संयतासंयत गुणस्थान तक पञ्चेन्द्रिय तिर्यच सामान्य के आलापों के समान ही आलाप जानना चाहिए। विशेषता यह है कि पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के पुरुष और नपुंसक वेद ये दो ही वेद होते हैं, उनमें स्त्रीवेद नहीं होता है अथवा तीनों वेद भी होते हैं।

इसका विशेष अर्थ इस प्रकार है—

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्चों के दो ही भेद कहने का तात्पर्य यह है कि उनमें से योनिमती तिर्यचों का अलग से कथन हो जाता है। पुनः यदि पर्याप्त और योनिमती तिर्यचों का अलग-अलग कथन न किया जाये तो सभी तिर्यचों को एक सदृश कहने पर उनके तीनों वेद माने जाते हैं।

अब आगे योनिमती ( स्त्रीवेदी ) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का कथन प्रारंभ होता है—

उनके प्रारंभ के पाँच गुणस्थान होते हैं, चार जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त-असंज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ ( संज्ञी की अपेक्षा ),

\*नं. ८६

पंचेन्द्रिय तिर्यच संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.६	१	२	१	१	२
हृत्	सं.प.			ति.	पि.	पि.	म.४	व.४			मति.	देश.	के.द.	भा.३	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
							व.४	औ.१			श्रुत.		विना.	शुभ.		क्षायो.			अनाकार
											अव.								

द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना पंच सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्योऽसंज्ञिन्यः, आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*८७।

तासामेव पर्याप्तयोनिनीनां भण्यमाने सन्ति पञ्च गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, दश प्राणा नव प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, पञ्च सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्योऽसंज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*८८।

पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ ( असंज्ञी की अपेक्षा ) होती हैं, दश प्राण-सात प्राण, नौ प्राण-सात प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, एक पंचेन्द्रियजाति पाई जाती है। पुनः काय आदि मार्गणाओं की अपेक्षा उनके त्रसकाय, ग्यारह योग, स्त्रीवेद, चारों कषाय, छह ज्ञान ( आदि के तीन सम्यग्ज्ञान एवं तीनों मिथ्याज्ञान ), दो संयम ( असंयम और देशसंयम ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व-अभव्यत्व, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना पाँच सम्यक्त्व, संज्ञी और असंज्ञी, आहारक और अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी दोनों अवस्थाएं पाई जाती हैं।

उन्हीं पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यञ्चों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में उनके प्रारंभिक पाँच गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त ) होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ ( संज्ञी के ) और पाँच पर्याप्तियाँ ( असंज्ञी के ) होती हैं, संज्ञी के दश प्राण और असंज्ञी के नौ प्राण, चार संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, स्त्रीवेद, चारों कषाय, छह ज्ञान, दो संयम,

## \*नं. ८७

## पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्य. अवि. देश.	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४ ७	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ औ.२ कर्म.१	१ पुं.	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	५ पुं. विना.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## \*नं. ८८

## पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. सम्य. अवि. देश.	२ सं.प. असं.अ.	६प. ५प.	१० ९	४ ७	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ पुं.	४	६ अज्ञा.३ ज्ञान.३	२ असं. देश.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	५ पुं. विना.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

पञ्चेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तयोनिनामालापे भण्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने — मिथ्यात्वं सासादनं च, द्वौ जीवसमासौ, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोत लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं सासादनमिति द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिन्योऽसंज्ञिन्यः, आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*८९।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमिथ्यादृष्टिनां भण्यमाने मिथ्यादृष्टिसदृशाः सर्वे आलापा भवन्ति\*९०।

तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं पाई जाती हैं। वे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों अवस्था पाई जाती हैं। उनके क्षायिक सम्यक्त्व के बिना पाँच सम्यक्त्व होते हैं, वे संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं, आहारक होते हैं, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब पञ्चेन्द्रिय योनिमती तिर्यञ्चों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलाप प्रारंभ होते हैं —

उनके दो गुणस्थान होते हैं—मिथ्यात्व और सासादन, दो जीवसमास होते हैं—संज्ञी अपर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त, उसमें संज्ञी जीवों के छहों अपर्याप्तियाँ तथा असंज्ञी के पाँच अपर्याप्तियाँ (मन को छोड़कर) पाई जाती हैं। संज्ञी और असंज्ञी दोनों के अपर्याप्त अवस्था में सात-सात ही प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं होती हैं, तिर्यञ्चगति होती है, पञ्चेन्द्रियजाति पाई जाती है। उनके कायमार्गणा की अपेक्षा एक त्रसकाय है, दो योग (औदारिकमिश्रकाययोग एवं कार्मणकाययोग) हैं, एक स्त्रीब्द है, चारों कषाय हैं, दो अज्ञान (कुमति, कुश्रुत) हैं, एक असंयम है, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन हैं, लेश्या मार्गणानुसार उनके द्रव्य से कापोत और शुक्ल ये दो लेश्याएं पाई जाती हैं तथा भाव से कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं, वे भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के होते हैं, सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा उनके

\*नं. ८९

पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ मि. सा.	२ सं.अ. असं.अ.	६अ. ५अ.	७ ७	४ ७	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	२ औ.मि. कर्म.	१ कृ.	४	२ कुम. कुश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	२ मि. सा.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

\*नं. ९०

पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती मिथ्यादृष्टि के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४ ७	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	१ कृ.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



पर्याप्तानां एतासां पर्याप्तप्ररूपणाः ज्ञातव्याः\*९१।

आसामपर्याप्तानामपि अपर्याप्तप्ररूपणाः प्ररूपयितव्याः\*९२।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीनां सासादनानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ — असंज्ञिनीनां सासादनसम्यक्त्वं न संभवति। षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षट् लेश्याः,

मिथ्यात्व और सासादन ये दो सम्यक्त्व पाये जाते हैं, वे संज्ञी और असंज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं, आहारक एवं अनाहारक होते हैं तथा वे साकार-अनाकार दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि योनिमती तिर्यञ्च जीवों के सभी आलाप सामान्य मिथ्यादृष्टियों के समान चाहिए। अर्थात् उनमें संज्ञी-असंज्ञी, पर्याप्त-अपर्याप्त ये चारों अवस्थाएं पाई जाती हैं, इसलिए सम्पूर्ण कथन इन चारों की अपेक्षा से ही कहा गया है जो कि कोष्ठक के द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

उन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि योनिमती ( तिर्यचिनियों ) के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में सारा वर्णन पर्याप्त प्ररूपणाओं के समान जानना चाहिए। उन्हीं पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी ( योनिमती ) तिर्यचिनियों के अपर्याप्त काल संबंधी आलापों सभी अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं का कथन होता है। कोष्ठक के आधार से इन्हें स्पष्टतया समझा जा सकता है।

अब पञ्चेन्द्रिय योनिमती सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचिनियों के सामान्य आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक सासादन गुणस्थान होता है, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं। विशेष यह है कि असंज्ञी जीवों के सासादनसम्यक्त्वं नहीं होता है इसलिए इस द्वितीयगुणस्थानवर्ती तिर्यचिनियों के असंज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त जीवसमास नहीं माना गया है। उनके छहों पर्याप्तियाँ

### \*नं. ९१ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती मिथ्यादृष्टि के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. असं.प.	६ ५	१० ९	४	१ ति.	१ ष्टि.	१ प्र.	९ म.४ व.४ औ.१	१ ऋ	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ९२ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती मिथ्यादृष्टि के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अप. असं. अप.	६अ. ५अ.	७ ७	४	१ ति.	१ ष्टि.	१ प्र.	२ औ.मि. कर्म.	१ ऋ	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.२ का.शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मिथ्या.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

भव्यसिद्धिकाः सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिन्यः आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्यनाकारोपयुक्ता वा \*९३।

एतासां पर्याप्तानां भण्यमाने सर्वाः प्ररूपणाः पर्याप्तसंबन्धिन्यः कथयितव्याः \*९४।

आसामेवापर्याप्तानामपर्याप्तसंबन्धिप्ररूपणा गृहीतव्याः \*९५।

और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण और सात प्राण होते हैं, चार संज्ञाएँ हैं तथा तिर्यञ्चगति, पंचेन्द्रियजाति पाई जाती हैं। उनके एक त्रसकाय है, ग्यारह योग हैं, स्त्रीवेद है, चारों कषाय हैं, तीनों अज्ञान हैं, असंयम है, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन हैं, द्रव्य और भाव से उनके छहों लेश्याएँ होती हैं, वे भव्यसिद्धिक हैं, उनके एक सासादनसम्यक्त्व है, वे संज्ञी ही होते हैं, आहारक और अनाहारक होते हैं तथा साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय योनिमती सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चों के पर्याप्तकाल संबंधी सभी प्ररूपणाएँ पर्याप्त तिर्यञ्चों के समान ही जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन सासादन सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त तिर्यचिनियों के आलापों में अपर्याप्त संबंधी

### \*नं. ९३ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती सासादन सम्यग्दृष्टि के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ. ७	१० ७	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऌ.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	१ ऋ.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ९४ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती सासादन सम्यग्दृष्टि के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऌ.	९ म.४ व.४ औ.१	१ ऋ.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ९५ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती सासादन सम्यग्दृष्टि के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऌ.	२ औ.मि. कर्म.	१ ऋ.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्-योनिमतीसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्रितानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षट् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*९६।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमती-असंयतसम्यग्दृष्टीनामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षट् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*९७।

सभी प्ररूपणाएं घटित होती हैं। जैसा कि कोष्ठक में स्पष्ट किया गया है

अब आगे पञ्चेन्द्रिय योनिमती सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चों के आलाप कहे जाते हैं—उनके एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थान पाया जाता है, एक जीवसमास ( पञ्चेन्द्रिय संज्ञी ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक तिर्यञ्चगति, एक पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक काययोग ), एक स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान ( कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ), असंयम, दो ( चक्षु-अचक्षु ) दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञित्व, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

पञ्चेन्द्रिय योनिमती असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्चों के आलापों में उनके एक चतुर्थ गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रिय

### \*नं. ९६ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ संय.	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऌ.	९ म.४ व.४ औ.१	१ ऋ.	४	३ ज्ञान. ३ अज्ञा. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ९७ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती असंयतसम्यग्दृष्टियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ क्षि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऌ.	९ म.४ व.४ औ.१	१ ऋ.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	२ औप. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिनी-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञित्यः, आहारिण्यः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८।

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, संज्ञित्यसंज्ञिजीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ—औदारिकमिश्रकर्मणामानौ, नपुंसकवेदः,

जाति, त्रसकाय, नवयोग ( चार मनोयोग, चार वचनयोग एक औदारिककाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ( मति, श्रुत, अवधि ) ज्ञान, असंयम, आदि के तीन ( चक्षु, अचक्षु, अवधि ) दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

अब उन्हीं पञ्चेन्द्रिययोनिमती तिर्यच जीवों के संयतासंयतगुणस्थान संबंधी आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक पंचमगुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यञ्चगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नवयोग ( उपर्युक्त ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीन ज्ञान, संयमासंयम ( देशसंयम ), प्रारंभ के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं तथा भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, क्षायिक के बिना दो सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

**भावार्थ**—तिर्यचगति के जीवों में चौदह गुणस्थानों में से अधिक से अधिक पाँच गुणस्थान हो सकते हैं, इसीलिए यहाँ पाँच गुणस्थान की संभावित प्ररूपणाओं का कथन किया गया है। इससे यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि तिर्यच पशु आदि प्राणी भी अपनी योग्यतानुसार सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रतों को भी धारण कर देशव्रती बन सकते हैं। प्रथमानुयोग के पुराणग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्वभवों में हाथी ने मुनिराज के सम्मुख अणुव्रतों को ग्रहण किया, तब वह जंगल के सूखे पत्ते खाकर अपनी सूंड से नदी के जल को फूंक कर प्रासुक करके पीता था। जीवन में उसने समाधिपूर्वक मरण करके देवगति को प्राप्त किया था।

तीर्थकर महावीर ने दश भव पूर्व सिंह की पर्याय में जंगल के अंदर हिरण का शिकार करते समय चारणऋद्धिधारी युगल मुनिराजों से सम्बोधन प्राप्त कर अणुव्रत धारण किये थे पुनः धीरे-

### \*नं. ९८ पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती संयतासंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ देश.	१ सं.प.	६	१०	४	१ ति.	१ ऋ.	१ ऋ.	९ म.४ व.४ औ.१	१ ऋ.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ के.द. विना.	६ द्र.६ भा.६ शुभ.	१ भ. औप. क्षायो.	२	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*९९</sup>।

एवं तिर्यग्गतीनां विंशतिप्ररूपणाः ज्ञात्वा यानि यानि तिर्यग्गतिगमनकारणानि तानि तानि व्यक्तव्यानि भवन्ति। किंच सम्यग्दर्शनमेव तिर्यग्गतौ गमनकारणविरोधि वर्तते तदेव सर्वश्रेष्ठरत्नमिति विज्ञाय एतद्रत्नं प्रयत्नेन रक्षणीयं पुनश्च सम्यग्ज्ञानाराधनाबलेन स्वशक्त्यनुसारेण चारित्रमप्यवलम्बनीयं भवति।

धीरे जीवन का उत्थान करते हुये दशभव पश्चात् वे अहिंसा के अवतार भगवान महावीर बने। इसी प्रकार अनेक पशुओं ने समय-समय पर महापुरुषों के सम्बोधन से सम्यक्त्व एवं अणुव्रतों को धारण कर भावों से सच्चे श्रावक के कर्तव्यों का पालन किया है, तभी आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ में कहा है—

श्वापि देवोऽपि देवःश्वा, जायते धर्मकिल्बिषात्।

कापि नाम भवेदन्या, सपद्धर्माच्छरीरिणाम्॥

अर्थात् धर्म के प्रसाद से कुत्ता भी मरकर देव बन जाता है और अधर्म के फल स्वरूप देवता भी मरकर कुत्ते जैसी निंद्य योनि में जन्म ले लेता है अतः संसार में ऐसी कौन सी सम्पत्ति है जो प्राणियों को धर्म के प्रसाद से नहीं प्राप्त हो सकती है, अर्थात् धर्म के पालन से संसार की समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

सारांश यह है कि एकेन्द्रिय से लेकर चार इंद्रिय तक के तिर्यचप्राणियों के तो केवल मिथ्यात्व भाव ही रहता है किन्तु पञ्चेन्द्रिय संज्ञी तिर्यचों में सम्यग्दर्शन के साथ-साथ व्रतों को ग्रहण करने की योग्यता भी पाई जाती है, इसलिए किसी भी दीन-दुखी पशु-पक्षी को देखकर उसके सदैव सम्बोधित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अब पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यचों के आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, संज्ञी अपर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छह और पाँच पर्याप्तियाँ ( संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा ), सात-सात प्राण ( दोनों अवस्थाओं में ), चारो संज्ञाएं, तिर्यचगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्र एवं कार्मणकाययोग ), नपुंसक वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान ( कुमति और कुश्रुत ), असंयम, दो दर्शन ( चक्षु और अचक्षु ), द्रव्य से कापोत एवं शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएं, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों, मिथ्यात्व, संज्ञी और असंज्ञी दोनों, आहारक-अनाहारक,

\*नं. ९९

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६अ.	७	४	१	१	१	२	१	४	२	१	२	द्र.२	२	१	२	२	२
मि.	सं.अ.	५अ.	७		ति.	पि.	पि.	औ.मि.	पि.		कुम.	असं	चक्षु.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	उनाहार
	असं.अ.							कार्म.			कुश्रु.		अचक्षु.	शु.	अ.		असं.	साकार	अनाकार
														भा.३					
														अशु.					

एवं तिर्यग्गतीनां एकचत्वारिंशत्कोष्ठकानि गतानि।

इति तिर्यग्गत्यालापाः

### अथ मनुष्यगत्यालापाः कथ्यन्ते।

अत्र मनुष्यगतौ विंशतिप्ररूपणासु चत्वारिंशत् संदृष्टयः सन्ति, तत्र चतुर्विधमनुष्येषु मनुष्यगत्यालापाः कथ्यन्ते — मनुष्याश्चतुर्विधा भवन्ति — मनुष्याः मनुष्यपर्याप्ताः मनुष्यिन्यो मनुष्यापर्याप्ताश्चेति।

तत्र सामान्यमनुष्याणां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, द्वौ जीवसामासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञा अप्यस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदाः अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनो, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि

साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

इस प्रकार तिर्यचगति की बीस प्ररूपणाओं को जानकर उस गति में जाने के जो जो निमित्तकारण हैं उन्हें छोड़ने योग्य जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि तिर्यचगति को प्राप्त करने में मूल विरोधीकारण एक सम्यग्दर्शन ही है, जो उस गति में जाने से रोक सकता है। वह सम्यग्दर्शन ही संसार में सर्वश्रेष्ठ रत्न है, ऐसा जानकर उस रत्न की पुरुषार्थपूर्वक रक्षा करना चाहिए, पुनः सम्यग्ज्ञान की आराधना के बल से अपनी शक्ति अनुसार सम्यक्चारित्र का भी अवलम्बन लेना चाहिए। इस प्रकार तिर्यचगति संबंधी इकतालीस ( ४१ ) कोष्ठक पूर्ण हुए।

इति तिर्यग्गति के आलाप समाप्त हुए।

भावार्थ — चारों गतियों में से तिर्यचगति के आलापों का सार यही है कि संसार की चौरासी लाख योनियों से छोड़ने वाला सम्यग्दर्शन एक विशिष्ट रत्न है उसे प्राप्त करने का, संरक्षण और संवर्धन करने का सतत पुरुषार्थ करना चाहिए। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् सम्पूर्ण ज्ञान और चारित्र भी सम्यक् रूप से परिणत हो जाते हैं। इन तीनों की पूर्णता ही मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन करती है।

अब मनुष्यगति संबंधी आलाप कहे जाते हैं।

यहाँ मनुष्यगति में बीस प्ररूपणाओं की चालीस संदृष्टियाँ ( कोष्ठक ) हैं, उन चार प्रकार के मनुष्यों में सामान्य मनुष्यगति के आलाप कहे जाते हैं—

मनुष्य चार प्रकार के होते हैं— १. सामान्य मनुष्य, २. पर्याप्त मनुष्य, ३. मनुष्यिनी ( स्त्रियाँ ), ४. अपर्याप्त मनुष्य।

इनमें से सर्वप्रथम सामान्य मनुष्यों के आलाप कहने पर उनमें चौदहों गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ पाई जाती हैं, संज्ञी पर्याप्तक की अपेक्षा दशप्राण और अपर्याप्तक की अपेक्षा सात प्राण होते हैं, चारों संज्ञाएं और क्षीणसंज्ञा रूप भी स्थान होता है। पुनः मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, तेरह योग ( वैक्रियिक काययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग को छोड़कर ) तथा अयोगस्थान भी होता है। तीनों वेद तथा अपगत वेदस्थान भी होता है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है। आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी होता है। भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व तथा संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान भी होता है। आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चतुर्दशगुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः औदारिकमिश्र-आहारमिश्र-कार्मणयोगैर्विना दश वा अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोप्यस्ति, चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्वयभावाभ्यां षड् लेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः,

**भावार्थ**—मनुष्यगति एक ऐसा चौराहा है जहाँ से चारों गतियों के रास्ते खुले हैं, यही कारण है कि मनुष्य बड़े से बड़ा पाप करके नरक-निगोद को भी प्राप्त कर सकता है तथा अधिक से अधिक पुण्यमयी कार्यों से स्वर्ग तथा मोक्ष जैसे शाश्वत पद को पा सकता है। इस मनुष्यपर्याय को प्राप्त करने हेतु देवता भी लालायित रहते हैं इसलिए मनुष्यगति को समस्त गतियों में श्रेष्ठ माना गया है।

उपर्युक्त कोष्ठक में सभी प्रकार के मनुष्यों के परिणामों को स्पष्टरूप से प्रदर्शित करते हुये श्रीवीरसेनस्वामी ने जघन्य और उत्कृष्ट दोनों अवस्थाओं का वर्णन किया है कि उनमें प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप भावों का विकास होता है और चौदहवें गुणस्थान की अपेक्षा अयोगी सिद्धपद भी प्राप्त किया जा सकता है देखो! राजा श्रेणिक ने इसी मनुष्यगति में मिथ्यात्व एवं संक्लिष्ट परिणामों के कारण सप्तम नरक की आयु का बंध कर लिया था पुनः भगवान महावीर की भक्ति के प्रभाव से क्षायिक सम्यक्त्व एवं तीर्थंकर नामप्रकृति का भी बंध करके उस नरकायु का अपकर्षण करके प्रथम नरक की ८४ हजार वर्ष की आयुरूप में परिणत कर लिया। अतः कर्मों की विचित्र लीला जानकर प्रत्येक मनुष्य को कर्मबंध से छूटने का ही पुरुषार्थ करना चाहिए।

मनुष्यों की अग्रिम भेदश्रृंखला में पर्याप्त मनुष्यों के आलाप कहे जाते हैं— उनके चौदह गुणस्थान होते हैं, एक ( संज्ञीपर्याप्त ) जीवसमास होता है, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारोंसंज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञारूप स्थान भी होता है। आगे उनके एक मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिक-मिश्रकाययोग के बिना तेरह योग अथवा इन दोनों एवं औदारिकमिश्रकाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग इन पाँच योगों के बिना दशयोग भी होते हैं तथा अयोगस्थान भी है। पुनः उनके

## सामान्य मनुष्यों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४ सं. ५	१ म.	१ प.	१ त्रसं.	१३ वै.द्वि. विना. अयो.	३ अपग.	४ अकषा.	८	७	४	६.६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, अयोगिभगवतः शरीरनिमित्त-  
मागम्यमानपरमाणूनामभावं दृष्ट्वा पर्याप्तानामनाहारित्वं लभ्यते। साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा  
साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*१०१।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति पञ्च गुणस्थानानि — मिथ्यादृष्टिसासादन-अविरतसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयत-

तीनों वेद भी पाये जाते हैं और अपगतवेदस्थान भी होता है, चारों कषाय तथा उक्कषायस्थान भी है।  
आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है,  
भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी अवस्था तथा संज्ञी और असंज्ञी दोनों से रहित  
अवस्था भी रहती है। आहारक और अनाहारक दोनों विकल्प पाये जाते हैं।

इसमें पर्याप्त अवस्था में अनाहारक होने का कारण यह बतलाया गया है कि अयोगकेवली  
नामक चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् के शरीर के निमित्तभूत आने वाले परमाणुओं का  
अभाव देखकर पर्याप्तक मनुष्यों में भी अनाहारकपना बन जाता है। इसी प्रकार आगे उपयोग  
की अपेक्षा ये साकारोपयोगी भी होते हैं और अनाकारोपयोगी भी होते हैं तथा दोनों उपयोगों से  
एकसाथ ( केवलज्ञान की अपेक्षा ) समन्वित भी रहते हैं।

*विशेषार्थ* — उपर्युक्त आलापों में योगमार्गणा के कथन में जो दश और तेरह योगों की  
व्यवस्था बतलाई है, उसमें श्री वीरसेनाचार्य का अभिप्राय यह है कि दश योग तो मनुष्यों की  
पर्याप्त अवस्था में पाये ही जाते हैं परन्तु अपर्याप्त अवस्था में होने वाले औदारिकमिश्र, आहारकमिश्र  
और कार्मणकाययोग को मनुष्यों की पर्याप्त अवस्था में भी कहने का कारण यह है कि यद्यपि  
सयोगकेवली गुणस्थान में समुद्घात के समय योगों की अपूर्णता रहती है फिर भी उस समय पर्याप्त  
नामकर्म का उदय विद्यमान रहता है और शरीर की पूर्णता भी रहती है, इसलिए पर्याप्त नामकर्म के  
उदय और शरीर की पूर्णता की अपेक्षा कषाट, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घात केवली भी पर्याप्त हैं,  
इस प्रकार पर्याप्त अवस्था में औदारिकमिश्र तथा कार्मणकाययोग बन जाते हैं।

इसी प्रकार छठे गुणस्थान में आहारकमिश्रकाययोग के समय भी पर्याप्त नामकर्म का उदय  
रहता है, इसलिए निर्वृत्ति अपर्याप्त रहता हुआ ऐसा जीव भी पर्याप्त नामकर्म के उदय की अपेक्षा  
पर्याप्त ही है अतः पर्याप्त अवस्था में आहारकमिश्रकाययोग भी बन जाता है। अतः उपर्युक्त तीनों  
योग विवक्षा भेद से पर्याप्त अवस्था में भी बन जाते हैं, इसलिए मनुष्यों की पर्याप्त अवस्था में  
तेरहयोग भी बताये गये जानना चाहिए।

\*नं. १०१

सामान्य मनुष्यों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	ई.	का.	यो.	वे.	के.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	१ सं.प.	६	१०	४ क्षिणः	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	१३ वै.२विना १०।म.४ व.४ औ.१आ.१	३ अपरा.	४ अक्षि.	८	७	४	द्र.६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



सामान्यमनुष्य-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः—वैक्रियिकद्विक-आहारद्विकविरहिताः, त्रयोवेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः,

सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, संज्ञीपर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ, दश प्राण-सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, वैक्रियिकद्विक और आहारकद्विक के बिना ग्यारह योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम,

## सामान्य मनुष्यों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	ई.	का.	यो.	वे.	के.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संजि.	आ.	उ.
५	१	६	७	४	१	१	१	१३	३	४	६	४	४	द्र.२	२	४	१	२	२
मि.	सं.अ.	अ.		क्षीणसं.	म.	पे.	त्रस.	औ.मि. आ.मि. कर्म.	अपा.	अकषा.	विभ. मनः विना.	असं. सामा छेदो. यथा.	४	का. शु. भा.६	भ. अ.	मि. सा. क्षा. क्षायो.	सं. अनु.	आहार अनाहार	साकार अनाकार व्यु.उ.

मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता वा भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१०३।

एषामेव पर्याप्तानां कथ्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्या\*१०४।

एतेषामेवापर्याप्तानां निगद्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्या\*१०५।

सामान्यमनुष्य-सासादनसम्यग्दृष्टीनामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः

दो दर्शन (चक्षु-अचक्षु), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक और अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सामान्य मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में अपर्याप्त संबंधी सभी प्ररूपणाएं छोड़कर कथन जानना चाहिए। कोष्ठक में इनका स्पष्ट वर्णन देखें—

इसी प्रकार उन मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्यों के अपर्याप्त काल संबंधी आलापों के कथन में पर्याप्त संबंधी आलाप छोड़ देना चाहिए। कोष्ठक के माध्यम से इन्हें भी सुलभतया समझा जा सकता है।

अब सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती सामान्य मनुष्यों के आलाप कहने पर—एक सासादन गुणस्थान, दो जीवसमास (संज्ञीपर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त), छहों पर्याप्ति, छहों अपर्याप्तियाँ, दश

### \*नं. १०३ सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ. सं.प.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ पिं.	१ प्लं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १०४ सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पिं.	१ प्लं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ अ. भ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १०५ सामान्य मनुष्य मिथ्यादृष्टियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ म.	१ पिं.	१ प्लं.	२ औ.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मिथ्यात्व	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

षड्पर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१०६।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*१०७।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*१०८।

प्राण-सात प्राण ( पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा ), दशों प्राण ( पर्याप्त जीवों के ), सात प्राण ( अपर्याप्त के ), चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग) तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में मात्र पर्याप्त काल की प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए अर्थात् उसमें अपर्याप्त संबंधी आलाप नहीं होते हैं।

### \*नं. १०६ सामान्य मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संजि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. ६ भा. ६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १०७ सामान्य मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संजि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६ प.	१० ७	४	१ म.	१ इं.	१ का.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. ६ भा. ६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १०८ सामान्य मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संजि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ प. ६ अ.	७	४	१ म.	१ इं.	१ का.	२ औ.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र. २ का. ३ भा. ३ अशु.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

सामान्यमनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता वा अनाकारोपयुक्ता वा\*१०९।

मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षड्पर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*११०।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने में केवल अपर्याप्त आलापों को ही ग्रहण किया जाता है। कोष्ठक में इनका स्पष्टीकरण किया गया है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्यों के आलापों का कथन किया जा रहा है—उनके एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक गुणस्थान होता है, एक जीवसमास (संज्ञीपर्याप्त), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक मनुष्यगति, एक पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग (चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिककाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, तीन अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, दो दर्शन (चक्षु-अचक्षु), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व नामक सम्यक्त्व का एक भेद, संज्ञिक, आहारक तथा साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब आगे असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों के आलाप कहे जाते हैं—उनके एक चतुर्थ गुणस्थान पाया जाता है, दो जीवसमास (संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त), छहों पर्याप्तियाँ और

### \*नं. १०९ सामान्य मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पिं.	१ प्लं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ ज्ञा. ३ अज्ञा. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. ६	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ११० सामान्य मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ पिं.	१ प्लं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा. ६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नवयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>१११</sup>।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, पुरुषवेदः-देव नारक-मनुष्य-असंयतसम्यग्दृष्टयो यदि मनुष्येषु उत्पद्यन्ते तर्हि नियमात् पुरुषवेदेषु चैवोत्पद्यन्ते नान्यवेदेषु तेन पुरुषवेदश्चैव भणितः।

चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन षड्लेश्याः। तद्यथा — नारका असंयतसम्यग्दृष्टयः प्रथमपृथिव्या आरभ्य षष्ठीपृथिवी पर्यवसानासु पृथिवीषु स्थिताः कालं कृत्वा

छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण-सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग दोनों होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय — जाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीनों ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, अनाहारक और साकार एवं अनाकार दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों में एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ) तथा एक पुरुषवेद होता है।

इस अपर्याप्त अवस्था में केवल एक पुरुषवेद होने का यह कारण है कि देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर यदि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो नियम से पुरुषवेदी मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, अन्य वेद वाले मनुष्यों में नहीं, इसी कारण एक पुरुषवेद ही कहा है।

### \*नं. १११ सामान्य मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	३	४	३	१	३	६	१	३	१	१	२
विं.	सं.प.				म.	पिं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१			मति. श्रुत. अव.	असं.	के.द. विना.	द्र. ६ भा. ६	भ.	औ. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

मनुष्येषु चैवात्मात्मनः पृथिवीप्रायोग्यलेश्याभिः सहोत्पद्यन्ते इति कृष्णनीलकापोतलेश्या लभ्यन्ते। देवा अपि असंयतसम्यग्दृष्टयः कालं कृत्वा मनुष्येषु उत्पद्यमानाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याभिः सहमनुष्येषु उत्पद्यन्ते, तेन मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले षड् लेश्या भवन्ति। भव्यसिद्धिकाः उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा \*११२।

मनुष्यसंयतासंयतानामालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा \*११३।

वेदमार्गणा के पश्चात् उनके चारों कषाय, तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से छहों लेश्याएं होती हैं।

इस लेश्या प्रकरण का भी सारांश यह है कि पहली पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी पर्यन्त नरकों में रहने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी मरकर मनुष्यों में अपनी-अपनी पृथ्वी के योग्य लेश्याओं के साथ ही उत्पन्न होते हैं, इसलिए तो उनके कृष्ण, नील, कापोत लेश्याएं पाई जाती हैं। उसी प्रकार असंयतसम्यग्दृष्टि देव भी मरण करके मनुष्यों में उत्पन्न होते हुये अपनी-अपनी पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याओं के साथ ही मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, इसलिए मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्तकाल में छहों लेश्याएं बन जाती हैं।

इस लेश्या आलाप के आगे भव्यसिद्धिक, उपशम के बिना दो सम्यक्त्व ( क्षायिक-क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, अनाहारक एवं साकार तथा अनाकार ये दो उपयोग उनमें पाये जाते हैं।

अब संयतासंयत गुणस्थानवर्ती सामान्य मनुष्यों के आलाप कहे जा रहे हैं—उनके एक पंचम

### \*नं. ११२ सामान्य मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ जीव म.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ म.	१ म.	१ म.	२ औ.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. २ का. शु. भा.६	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. ११३ सामान्य मनुष्य संयतासंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पृथ्वी	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ म.	१ म.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

संप्रति प्रमत्तसंयतादारभ्य अयोगिकेवलपर्यन्तमिति मूलौघालापोऽनूनोऽनधिको वक्तव्यः।

मनुष्यपर्याप्तानां भण्यमाने मिथ्यादृष्टेरारभ्य आ अयोगिकेवलिनः इति सामान्यमनुष्यवत् भंगाः ज्ञातव्याः। अथवा स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ वक्तव्यौ, एतावन्मात्रश्चैव विशेषोऽस्ति।

मनुष्यिनीनां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञा अपि अस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः अयोगोऽप्यस्ति, अत्र आहार-आहारमिश्रकाययोगौ नस्तः।

किं कारणम् ?

येषां भावः स्त्रीवेदो द्रव्यं पुनः पुरुषवेदः, तेऽपि जीवाः संयमं प्रतिपद्यन्ते। द्रव्यस्त्रीवेदाः संयमं न प्रतिपद्यन्ते सचेतत्वात्। भावस्त्रीवेदानां द्रव्येण पुंवेदानामपि संयतानां नाहारद्विः समुत्पद्यते द्रव्यभावाभ्यां पुरुषवेदानामेव समुत्पद्यते तेन स्त्रीवेदेऽपि निरुद्धे आहारद्विकं नास्ति, ततः कारणात् एकादशयोगाः भणिताः।

गुणस्थान होता है, एक जीवसमास ( संज्ञीपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञी, आहारक, साकार और अनाकार दोनों उपयोग होते हैं।

अब प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थान से आरंभ करके अयोगकेवली नामक चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त न्यूनता और अधिकता रहित मूल ओघालाप जानना चाहिए। अर्थात् गुणस्थानों की अपेक्षा जो आलाप छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक कह आये हैं, वे ही यहाँ मनुष्यों के छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के समझना चाहिए, क्योंकि छठे से आगे के सभी गुणस्थान मनुष्यों के ही होते हैं इसलिए सामान्य कथन में और इस कथन में कोई विशेषता नहीं है।

मनुष्यपर्याप्तकों के आलाप कहने पर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक मनुष्य-सामान्य के आलापों के समान आलाप जानना चाहिए। अथवा वेद आलाप कहते समय स्त्रीवेद के बिना दो वेद ही कहना चाहिए, क्योंकि सामान्य मनुष्यों से पर्याप्त मनुष्यों में इतनी ही विशेषता है।

**भावार्थ** —जब सामान्य से पर्याप्त मनुष्यों का कथन होता है तब पर्याप्त मनुष्यों में तीनों वेद वाले मनुष्यों का ग्रहण हो जाता है, परन्तु जब मनुष्यों के अवान्तर भेदों में से केवल पर्याप्त मनुष्यों का ग्रहण किया जाता है तब पर्याप्त मनुष्यों से पुरुष और नपुंसक वेदी मनुष्यों का ही ग्रहण होता है, क्योंकि स्त्रीवेदी मनुष्यों का स्वतंत्र भेद गिनाया है। मनुष्य के अवान्तर भेदों में पर्याप्त शब्द पुरुष और नपुंसकवेदी मनुष्यों में ही रूढ़ है, इसलिए इस अपेक्षा से पर्याप्त मनुष्यों के आलाप कहते समय स्त्रीवेद को छोड़कर आलाप कहे हैं।

अब स्त्रीवेदी मनुष्यों ( मनुष्यिनी ) के आलाप कहे जाते हैं—

उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ-छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण-सात प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है।

‘अवगदवेदो वि अत्थि’ इति वचनात्। चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति, मनःपर्ययज्ञानेन विना सप्त ज्ञानानि, परिहारसंयमेन विना षट् संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, नैव संज्ञिन्यः नैवासंज्ञिन्योऽपि सन्ति, आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*११४।

वेद आलाप के आगे चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है। मनःपर्यय ज्ञान के बिना सात ज्ञान, परिहार विशुद्धि संयम के बिना छह संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं

## मनुष्यिनी स्त्रियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४ क्षीणसं.	१ म.	१ पंच.	१ त्रस.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	१ स्त्री. अपा.	४ अकषा.	७ मनः. विना	६ परिहा. विना.	४	६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	२ आहार अनहार	२ साकार अनाकार यु.उ.



एतासामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि इत्यादि सर्वं पूर्ववत्, योगा एकादश-वैक्रियिकद्विक-आहारद्विकमन्तरेण नव योगा—औदारिकमिश्र-कर्मणयोगाभ्यां विना वा\*११५।

एतासामेवापर्याप्तानां त्रीणि गुणस्थानानि—मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं सयोगिकेवलि गुणस्थानं च। द्वे अज्ञाने केवलज्ञानं च, द्वौ संयमौ-असंयमः यथाख्यातसंयमश्च। द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः शुक्ललेश्यया सह चतस्रो वा। मिथ्यात्वं सासादनसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वेन सह त्रीणि सम्यक्त्वानि। शेषं पूर्ववत् ज्ञातव्यं\*११६।

तथा अलेश्यास्थान भी होता है। भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिनी और असंज्ञिनी इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान भी होता है। आहारिणी, अनाहारिणी, साकारोपयोगिनी, अनाकारोपयोगिनी तथा साकार और अनाकार दोनों उपयोगों से युगपत् भी होती हैं।

उन्हीं मनुष्यिनियों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें चौदहों गुणस्थान पाये जाते हैं, दो जीवसमास होते हैं। इत्यादि सभी आलाप पूर्व के ही समान जानना चाहिए। उनके योगमार्गणा में भेद इस प्रकार हैं—वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग इन चार योगों के बिना ग्यारह योग अथवा उपर्युक्त चार और औदारिकमिश्रकाययोग तथा कर्मणकाययोग इन छह योगों के बिना नौ योग तथा अयोग स्थान भी होता है।

विशेष—स्त्रीवेदी मनुष्यों में चूँकि आहारकऋद्धि नहीं होती है अतएव इनके आहारक और आहारकमिश्र ये दो योग नहीं पाए जाते हैं। इसीलिए स्त्रीवेदियों के पर्याप्त अवस्था में ग्यारह अथवा नौ योग ही होते हैं।

उन्हीं स्त्रीवेदी मनुष्यों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहे जाते हैं—

उनके मिथ्यात्व, सासादन और सयोगकेवली नामक तीन गुणस्थान पाये जाते हैं, दो अज्ञान (कुमति-कुश्रुतज्ञान) और एक केवलज्ञान इन तीन ज्ञानों की संभावना रहती है, संयममार्गणा के

### \*नं. ११५ मनुष्यिनी स्त्रियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	१	६	१०	४	१	१	१	११	१	४	७	६	४	द्र. ६	२	६	१	२	२
	सं.प.			क्षीणपं.	म.	पं.	पं.	९	स्त्री	अक्षी.	मनः	परिहा.		भा. ६	भ.		सं.	आहार	साकार
								म. ४	अपरा.	अक्षी.	पर्याय	विना.		अले.	अ.		अनु.	अनाहार	अनाकार
								व. ४			विना								यु.उ.
								औ. १											
								अयो.											

### \*नं. ११६ मनुष्यिनियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	३	२	३	द्र. २	२	३	१	२	२
मि.	सं.अ.	अ		क्षीणपं.	म.	पं.	पं.	औ.मि.	स्त्री	अक्षी.	कुम.	असं.	चक्षु.	का.शु.	भ.	३	सं.	आहार	साकार
सा.								कर्म.	अपरा.	अक्षी.	कुश्रु.	यथा	अच.	भा. ४	अ.	मि.	अनु.	अनाहार	अनाकार
स.											के.		केव.	अशु. ३	क्षा.	सा.			यु.उ.
													शु. १						

मनुष्यिनीमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिन्यः, आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा \*११७।

मनुष्यिनीपर्याप्तानां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*११८।

अन्तर्गत उनमें एक असंयम और एक यथाख्यात संयम ये दो संयम पाये जाते हैं। लेश्यामार्गणा की अपेक्षा उनमें द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या होती हैं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या अथवा शुक्ललेश्या के साथ उक्त तीनों लेश्याएं मिलकर चार लेश्याएं होती हैं। सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा उनमें मिथ्यात्व, सासादन सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व ये तीन सम्यक्त्व होते हैं। शेष सभी व्यवस्था पूर्ववत् जानना चाहिए।

अब आगे मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के सामान्य आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं, छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं, दशों प्राण एवं सात प्राण पाये जाते हैं, चारों संज्ञाएं, एक मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु और अचक्षु ), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक ये दोनों अवस्थाएँ उनके पाई जाती हैं। सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा उनके मिथ्यात्व ही पाया जाता है, वे संज्ञी ही होती हैं, आहार और अनाहार दोनों अवस्था उनके होती हैं, इसी प्रकार उनके साकार और अनाकार दोनों उपयोग रहते हैं।

#### \*नं. ११७ मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ	१० ७	४	१ म.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	१ स्त्री.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. ६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### \*नं. ११८ मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ इं.	१ का.	९ म.४ व.४ औ.१	१ स्त्री.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. ६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

मनुष्यिनीमिथ्यादृष्ट्यपर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*११९।

मनुष्यिनीसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिन्यः,

उन्हीं मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी मनुष्यों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों के वर्णन में सभी अपर्याप्तकालीन आलापों को छोड़कर उनकी व्यवस्था जानना चाहिए। अर्थात् उनके एक प्रथम गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, एक मनुष्यगति, एक पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ), एक स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञित्व, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग उनके पाये जाते हैं।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों को छोड़कर उनका कथन जानना चाहिए।

अर्थात् उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये दो योग, स्त्रीवेद, चारों कषाय, कुमति और कुश्रुत ये दो अज्ञान, असंयम, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्याएं तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञित्व, आहारकत्व, अनाहारकत्व, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी मनुष्यों के सामान्य आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक सासादन गुणस्थान, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण-सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ),

### \*नं. ११९ मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	२	१	२	द्र. २	२	१	१	२	२
मि.	सं.अ.	अ			म.	पुं	पुं	औ.मि. कर्म.	स्त्री.		कुम. कुश्रु.	असं.	चक्षु. अच.	का. शु. भा.३ अशु.	भ. अ.	मि.	सं.	आहार अनाहार	साकार अनाकार

आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२०।

आसामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः कथयितव्याः\*१२१।

आसामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः ज्ञातव्याः भवन्ति \*१२२।

द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक-अनाहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग होते हैं।

इन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यिनियों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर उनमें सभी अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं का कथन छोड़कर पर्याप्तकालीन आलाप होते हैं।

अर्थात् उनके एक सासादन गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकार एवं अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

इसी प्रकार उन सासादनसम्यग्दृष्टि स्त्रीवेदी मनुष्यों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में

### \*नं. १२० सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यिनियों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ औ.२ का.१	१ स्त्री.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.६	१ भ.	१ सासां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १२१ सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यिनियों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ स्त्री.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.६	१ भ.	१ सासां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### \*नं. १२२ सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यिनियों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	२ औ.मि. कर्म.	१ स्त्री.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ का. शु. भा.३ अशु.	१ भ.	१ सासां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

मानुषीसम्यग्मिथ्यादृष्टीनामालापानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१२३</sup>।

मनुष्यिन्यसंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता

केवल अपर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाएं ही होती हैं ऐसा जानना चाहिए।

अर्थात् उनके एक सासादनगुणस्थान, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीनों अशुभ लेश्याएं, भव्यत्व, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक और अनाहारक ये दोनों अवस्था होती हैं, उपयोग की अपेक्षा उनके दोनों उपयोग भी पाये जाते हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों के आलाप कहते हैं—

उनके एक तृतीय गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान), असंयम, चक्षु और अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञित्व, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों के आलाप प्रस्तुत हैं—

उनमें एक चतुर्थ गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक और

नं. १२३

सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	१	२	द्र. ६	१	१	१	१	२
संय.	सं.प.				म.	प.	प.	म.४ व.४ औ.१	स्त्री.		ज्ञान. ३ अज्ञा. मिश्र.	असं.	चक्षु. अचक्षु.	भा.६	भ.	म.	सं.	आहार	साकार अनाकार

भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२४।

मनुष्यिनीसंयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२५।

मनुष्यिनीप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः — स्त्रीवेद नपुंसकवेदयोरुदये आहारद्विकं मनःपर्ययज्ञानं परिहारशुद्धिसंयमश्च न सन्ति। स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ — सामाधिक-छेदोपस्थापनौ,

क्षायोपशमिक), संज्ञित्व, आहारकत्व, साकार एवं अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब संयतासंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों के आलाप प्रस्तुत हैं—

उनके एक पंचम गुणस्थान होता है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग), स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक), संज्ञित्व, आहारकत्व, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग पाया जाता है।

अब प्रमत्तसंयत मनुष्यिनियों के आलाप कहे जाते हैं—

उनमें एक छठा गुणस्थान, एक (संज्ञीपर्याप्त) जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककायोग) होते हैं।

नं. १२४

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ स्त्री.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १२५

संयतासंयत मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ दृष्टि.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ स्त्री.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ के.द. विना.	६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१२६</sup>।

मनुष्यिनी-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, आहारसंज्ञया विना तिस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१२७</sup>।

इनके नौ योग होने का कारण यह है कि स्त्रीवेद और नपुंसक के उदय होने पर आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयम नहीं होते हैं।

योग आलाप के पश्चात् आगे की मार्गणा में स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ) संज्ञित्व, आहारकत्व एवं साकार-अनाकार ये दोनों उपयोग उनमें पाये जाते हैं।

अब अप्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों के आलापों में उनके एक सप्तम गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, आहार संज्ञा के बिना तीन संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, दो संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञीपना, आहारकपना तथा साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

### नं. १२६

### प्रमत्तसंयत मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र. ६	१	३	१	१	२
प्रमत्तः	सं.प.				म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१	स्त्री.		मति. श्रुत. अव.	सामा. छेदो.	के.द. विना.	भा.३ शुभ.	भ.	औ. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

### नं. १२७

### अप्रमत्तसंयत मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र. ६	१	३	१	१	२
अप्रमत्तः	सं.प.			विना. आह.	म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१	स्त्री.		मति. श्रुत. अव.	सामा. छेदो.	के.द. विना.	भा.३ शुभ.	भ.	औ. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

मनुष्यिनी-अपूर्वकरणानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः नव योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, वेदकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२८।

मनुष्यिनीप्रथमानिवृत्तिकरणानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, आहारभयसंज्ञाभ्यां विना द्वे संज्ञे, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नवयोगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिन्यः, आहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१२९।

अब अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती मनुष्यिनियों के आलाप के अन्तर्गत उनके एक आठवाँ गुणस्थान होता है, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, तीन संज्ञाएँ (आहारसंज्ञा के बिना), मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग), स्त्रीवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, दो संयम (सामायिक और छेदोपस्थापना), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ तथा भाव से शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, वेदक सम्यक्त्व के बिना औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारकत्व और साकार-अनाकार ये दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

अब अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भागवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप कहे जाते हैं—

उनके एक नवमाँ गुणस्थान होता है, एक (संज्ञीपर्याप्त) जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दशों प्राण, आहार एवं भय संज्ञा के बिना दो संज्ञाएँ होती हैं, एक मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नवयोग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग), स्त्रीवेद, चारों कषाय,

### नं. १२८ अपूर्वकरण गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र. ६	१	२	१	१	२
पुं.	सं.प.			विना.	म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१	स्त्री.		मति. श्रुत. अव.	सामा. छेदो.	के.द. विना.	भा.१ शुभ.	भ.	औ. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

### नं. १२९ अनिवृत्तिकरण प्रथमभागवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	२	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र. ६	१	२	१	१	२
अ. प्र. भा.	सं.प.			पुं. मं.	म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१	स्त्री.		मति. श्रुत. अव.	सामा. छेदो.	के.द. विना.	भा. शुभ.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार



आसां भाववेदिमनुष्यिनीनामनिवृत्तिकरणानां, द्वितीयभागे भण्यमाने एतदेवान्तरं-संज्ञासु परिग्रहसंज्ञा, वेदेष्वपगतवेदः, शेषाः प्ररुपणाः पूर्ववत्\*१३०।

आसामेव तृतीयभागे क्रोधकषायेन विना त्रयः कषायाः, शेषा आलापाः पूर्ववत्\*१३१।

एतासामेव चतुर्थे भागे मानकषायमन्तरेण द्वौ कषायौ स्तः शेषाः पूर्ववत्\*१३२।

आदि के तीन ज्ञान, दो संयम ( सामाधिक—छेदोपस्थापना ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ तथा भाव से शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, दो सम्यक्त्व ( औपशमिक और क्षायिक ), संज्ञित्व, आहारक, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

इन भाववेदी मनुष्यिनियों में अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के द्वितीयभाग के आलापों में केवल इतना ही अन्तर है कि संज्ञाओं में केवल एक परिग्रह संज्ञा होती है और वेदमार्गणा की अपेक्षा वे अपगतवेदी होते हैं। शेष प्ररुपणाएँ पूर्ववत्—प्रथम भाग के समान ही जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन भाववेदी मनुष्यिनियों के नवमें गुणस्थान के तृतीयभागवर्ती आलापों में केवल कषायमार्गणा का अन्तर है कि क्रोध कषाय के बिना उनके तीन कषायें पाई जाती हैं एवं शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

### नं. १३० अनिवृत्तिकरण के द्वितीयभागवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ. द्वि. भा.	१ सं.प.	६	१०	१ प.	१ म.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपग.	४	३ मति. श्रुत. अव.	२ सामा. छेदो.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा.१ शुभ.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १३१ अनिवृत्तिकरण के तृतीयभागवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ. तृ. भा.	१ सं.प.	६	१०	१ प.	१ म.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपग.	३ विना. क्रि.	३ मति. श्रुत. अव.	२ सामा. छेदो.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा.१ शुभ.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १३२ अनिवृत्तिकरण के चतुर्थभागवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ. च. भा.	१ सं.प.	६	१०	१ प.	१ म.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ औ.१	० अपग.	२ लौमि. मावां.	३ मति. श्रुत. अव.	२ सामा. छेदो.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा.१ शुभ.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

कश्चिदाशंकते — आसां भाववेदिनां मनःपर्ययज्ञानं कथं न मन्यते ?

आचार्यः समाधत्ते — अग्निदग्धबीजेऽङ्कुर इव स्त्रीनपुंसकवेदोदयदूषितजीवे वेदोदये विनष्टेऽपि मनःपर्ययज्ञानं नोत्पद्यते।

तर्हि केवलज्ञानं कथमुत्पद्यते इति चेत् ?

शुक्लध्यानबलेनैव, अथवा स्वभावोऽयं ज्ञातव्यः, यत् भावस्त्रीवेदिमहामुनीनां मनःपर्ययज्ञानं, परिहार-विशुद्धिसंयमः, आहारकर्द्धिश्च नोपजायन्ते।

आसामेव पंचमे भागे कषायेषु लोभकषाय एव। शेषा आलापाः पूर्ववत् कथयितव्याः\*१३३।

मनुष्यिनीनां सूक्ष्मसांपरायणगुणस्थानवर्तिदिगम्बरमहामुनीनां भण्यमाने संज्ञासु सूक्ष्मपरिग्रहसंज्ञा, कषायेषु

उन्हीं नवमगुणस्थानवर्ती भाव स्त्रीवेदी मनुष्यों के चतुर्थ भाग के आलाप कहने पर उनके मानकषाय भी छूट जाने से दो कषायों का सद्भाव ही पाया जाता है, शेष सभी प्ररूपणाएं पूर्व के समान ही रहती हैं।

यहाँ पर कोई शंका करता है कि इन भावस्त्रीवेदी मनुष्यों के मनःपर्ययज्ञान क्यों नहीं माना गया है?

इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं कि जैसे अग्नि से दग्ध हुए बीज में अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है, उसी प्रकार स्त्री और नपुंसकवेद के उदय से दूषित जीव में वेद का उदय नष्ट हो जाने पर भी मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

तब उनमें केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो जाता है?

इसमें शुक्लध्यान का निमित्त जानना चाहिए अथवा स्वभावजन्य प्रक्रिया ही समझना चाहिए, क्योंकि भावस्त्रीवेदी महामुनियों के मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि और आहारकर्द्धि उत्पन्न नहीं होने का नियम है।

उन्हीं अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती पंचमभागवर्ती स्त्रीवेदी मनुष्यों के आलाप कहने पर उनमें एक लोभकषाय की सत्ता पाई जाती है, शेष आलाप पूर्व के सदृश ही रहते हैं।

भावस्त्रीवेदी सूक्ष्मसाम्परायणगुणस्थानवर्ती दिगम्बर महामुनियों के आलाप कहने पर पूर्ववत् प्ररूपणाओं के कथन में अन्तर केवल इतना है कि संज्ञाओं की अपेक्षा उनमें एक सूक्ष्मपरिग्रहसंज्ञा, कषायों की अपेक्षा एक सूक्ष्मलोभकषाय, संयम की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम होता

## नं. १३३

## अनिवृत्तिकरण के पंचमभागवर्तिनी मनुष्यनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	१	१	१	१	९	०	१	३	२	३	द्र. ६	१	२	१	१	२
अ.	सं.प.			परि.	म.	प्रा.	प्रा.	म.४	क.	क.	मति.	सामा.	के.द.	भा.१	भ.	औप.	सं.	आहार	संकार
पं.								व.४			श्रुत.	छेदो.	विना.	शुभ.		क्षा.			अनाकार
भा.								औ.१			अव.								

सूक्ष्मलोभकषायः, संयमेषु सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमः, शेषाः पूर्ववत् ज्ञातव्याः\*१३४।

आसामेवोपशान्तकषायाणां महामुनीनां भण्यमाने उपशांतसंज्ञा, उपशांतकषायः, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, शेषाः प्ररुपणाः पूर्ववत् ज्ञातव्याः\*१३५।

आसामेव क्षीणकषायाणां भण्यमाने क्षीणसंज्ञा, क्षीणकषायः, शेषाः पूर्ववत्\*१३६।

है। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन्हीं स्त्रीवेदी उपशान्तकषायगुणस्थानवर्ती महामुनियों के आलाप कहने पर उनके एक उपशान्तकषाय पाई जाती है, एक यथाख्यातविहारशुद्धि संयम विशेषरूप से होता है तथा शेष प्ररुपणाएं पूर्ववत् जानना चाहिए। अर्थात् उनके एक ग्यारहवां गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, उपशान्त संज्ञा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग सहित नौ योग, अपगतवेद, उपशांतकषाय, आदि के तीन ज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक,

नं. १३४

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सू.	१ सं.प.	६	१०	१ सू. प.	१ म.	१ ः	१ ः	१ म.४ व.४ औ.१	० अपा.	१ ः लि. म. ः	३ मति. श्रुत. अव.	१ सूक्ष्म. सां.	३ के.द. विना.	६ भा.१ शुभ.	१ भ. औप. क्षा.	२	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १३५

उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ उप.	१ सं.प.	६	१०	० उ. स.	१ म.	१ ः	१ ः	१ म.४ व.४ औ.१	० अपा.	० उ. क.	३ मति. श्रुत. अव.	१ यथा.	३ के.द. विना.	६ भा.१ शुभ.	१ भ. औप. क्षा.	२	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १३६

क्षीणकषाय गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ क्षीण.	१ सं.प.	६	१०	० सं. क्षीण.	१ म.	१ ः	१ ः	१ म.४ व.४ औ.१	० अपा.	० क्षीणक.	३ मति. श्रुत. अव.	१ यथा.	३ के.द. विना.	६ भा.१ शु.	१ भ. क्षा.	१	१ सं.	२ आहार	२ साकार अनाकार

मनुष्यिनी-सयोगिजिनानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः द्वौ वा, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, सप्त योगाः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिन्यो नैवासंज्ञिन्यः, आहारिण्यः अनाहारिण्यः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>१३७</sup>।

मनुष्यिनी-अयोगिकेवलिजिनानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, एकः प्राणः, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, अयोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन अलेश्या, अभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिन्यो नैवासंज्ञिन्यः,

साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

उन्हीं स्त्रीवेदी क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती मुनिराजों के आलाप कहने पर उनमें सामान्य आलापों के अतिरिक्त विशेषरूप से एक क्षीणसंज्ञा ( संज्ञा रहित अवस्था ), क्षीणकषाय ( कषायरहित अवस्था ) पाई जाती है। शेषपूर्ववत् हैं, अर्थात् क्रमशः प्ररूपणाओं में उनके एक बारहवाँ गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, अपगतवेद, क्षीणकषाय, आदि के तीन ज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारकत्व, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

अब सयोगकेवली गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप कहने पर उनके एक सयोगकेवली ( तेरहवाँ ) गुणस्थान होता है, दो जीवसमास ( पर्याप्त और अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, चार प्राण अथवा दो प्राण ( समुद्घात की अपर्याप्त अवस्था में अथवा तेरहवें गुणस्थान के अंत में आयु और कायबल ये दो ही प्राण होते हैं ), क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, सातयोग ( सत्य और अनुभय ये दो मनोयोग, ये ही दोनों वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मण ये तीन काययोग ), अपगतवेदस्थान, अकषायस्थान, एक केवलज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, केवलदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या एवं भाव से एक शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञी और असंज्ञी इन दोनों अवस्थाओं से रहित, आहारकत्व, अनाहारकत्व साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से वे समन्वित होते हैं।

अब अयोगिजिनगुणस्थानवर्ती भावस्त्रीवेदी मनुष्यों के आलाप कहने पर उनके एक चौदहवाँ गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, एक प्राण ( आयु ), क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति,

### नं. १३७ सयोगिकेवली गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यिनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१. हिं	२ प. अ.	६अ. ६प.	४ २	० ५	१ म.	१ पिं	१ पिं	७ म.२ व.२ औ.१ का.१	० अपरा.	० अकषा.	१ के.	१ यथा	१ के.द.	६ भा.१ शुभ.	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु. उ.

अनाहारिण्यः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*१३८।

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१३९।

एवं मनुष्यगतौ चत्वारिंशत्कोष्ठकानि गतानि।

इतो विस्तरः—मनुष्यगतीनां विंशतिप्ररूपणाव्यवस्थां विज्ञाय संप्रति पर्याप्तमनुष्यशरीरं मयासंप्राप्तं एतन्महतपुण्योदयमेव, किंच अस्मिन्ननादिसंसारं पर्यटता मयानन्तकालपर्यन्तं न जानामि कियत्त्वारं चतुर्थकालेषु जन्मानि गृहीतानि मनुष्यपर्याये, किन्तु त्रसकाय, अयोगस्थान, अपगतवेद, अकषाय, एक केवलज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, केवलदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से अलेश्यास्थान, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित, अनाहारकत्व, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग पाये जाते हैं।

अब आगे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के आलाप कहने पर उनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त ), छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय-जाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्र और कर्मण ), नपुंसक वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान ( कुमति-कुश्रुत ), असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ), द्रव्य से कापोत एवं शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक-अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकार एवं अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यगति के चालीस कोष्ठक पूर्ण हुए।

उन्हीं का विस्तार करते हैं—मनुष्यगति की बीस प्ररूपणाओं की व्यवस्था जानकर इस कलिकाल में मैंने पर्याप्त मनुष्य का शरीर प्राप्त किया है इसे महान पुण्योदय का ही प्रभाव मानना

### नं. १३८ अयोगिकेवली गुणस्थानवर्तिनी मनुष्यनियों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६प.	१	०	१	१	१	०	०	०	१	१	१	६	१	१	०	१	२
मि.	पं.		आपु.	मं.	म.	पं.	पं.	अयोग.	अप.	अकषा.	के.	यथा	के.द.	द्र.	भ.	क्षा.	अनु.	आहार	साकार
				प्रीण										०				अनाकार	यु. उ.
				क्षी										भा.					

### नं. १३९ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	२	१	२	२.२	२	१	१	२	२
मि.	सं.	अ.			म.	पं.	पं.	औ.मि.	न.		कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	अनाकार
	अ.							कर्म.			कुश्रु.		अच.	शु.	अ.			साकार	अनाकार
														भा.३					
														अशु.					

तत्र सम्यक्त्वरत्नं न लब्धं, अतएवाद्यत्वे पञ्चमकाले जन्म गृहीतं। चतुर्थकाले तु तीर्थकरभगवतां समवसरणान्यपि बभूवुः परन्तु मया दर्शनं न प्राप्तं। अन्यथा मोक्षपदं प्राप्नुवम्। अधुना दुष्पमकालेऽपि यन्मया सम्यग्दर्शनं संप्राप्य सम्यग्ज्ञानं देशव्रतरूपेण उपचारमहाव्रतेन वा सम्यक्चारित्रमपि संप्राप्तं अतो मह्यं दुष्पमकालो चतुर्थकालापेक्षया श्रेष्ठतम एव इति भावयामि।

वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपञ्चविंशतिशततमे मांगीतुंगीतीर्थयात्रागमनप्रारंभेऽहं यां विंशतितीर्थकरजिनप्रतिमास्थापनायोजनं ददौ, साधुना वीराब्दे पञ्चविंशत्यधिकपञ्चविंशतिशततमे मार्गशीर्षशुक्लापूर्णायां मेरठमहानगरे कमलानगरनाम्नि कालोनीमध्ये पूर्णीजाता। अद्यात्र श्रीमहावीरजिनमंदिरे पंचकल्याणकप्रतिष्ठाभिः प्रतिष्ठिताः कमलकमलस्योपरि विराजमानाः श्रीऋषभादिवर्धमानान्तचतुर्विंशतितीर्थकराणां पञ्चमहाविदेहेषु विहरतांच श्रीसीमन्धरादि विंशतितीर्थकराणां सर्वा जिनप्रतिमा वंदामहे वयम्। इमा अन्याश्चापि जिनप्रतिकृतयोऽस्माकं श्रीप्रेमचन्द्रश्रावकादिभाक्तिकस्य च सर्वसौख्यं प्रयच्छन्तु, सर्वत्र क्षेमं सुभिक्षं शान्तिं च कुर्वन्त्विति<sup>१</sup>।

चतुर्विंशतितीर्थेशां विंशतितीर्थकर्तृणाम्।

पद्मपद्मस्य चोपरि, स्थिताश्च प्रतिमाः स्तुवे॥१॥

इति मनुष्यगत्यालापाः।

चाहिए। इस विषय में और अधिक क्या कहा जाए? क्योंकि अनादिसंसार में भटकते हुए मैंने अनन्तकाल पर्यन्त न जाने कितनी बार चतुर्थकालों में मनुष्यजन्म धारण किया। चतुर्थकाल में तीर्थकर भगवन्तो के समवसरण भी थे किन्तु मुझे उनके दर्शन नहीं प्राप्त हो सके अन्यथा मोक्षपद प्राप्त कर लेता। अब इस दुष्पम पंचमकाल में मैंने जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करके पुनः सम्यग्ज्ञान को पाकर देशव्रत अथवा उपचारमहाव्रतरूप सम्यक्चारित्र को भी प्राप्त किया है, अतः मेरे लिए यह पंचमकाल चतुर्थकाल की अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ-कार्यकारी है ऐसी मेरी भावना है।

सारांश यह है कि मनुष्यगति संबंधी प्ररूपणाओं के माध्यम से हमें उस गति की दुर्लभता जानकर वर्तमान में प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन एवं संयम का मूल्यांकन करते हुए अपने मानवजीवन को सफल बनाना चाहिए।

वीर निर्वाणसंवत् पच्चीस सौ बाईस में मांगीतुंगी तीर्थयात्रा को जाते हुएप्रारंभ में (मेरठ-उत्तरप्रदेश में) मैंने जो बीस तीर्थकर जिनप्रतिमा स्थापना की योजना बताई थी, वह अब वीर संवत् पच्चीस सौ पच्चीस में मगशिर शुक्ला पूर्णिमा के दिन मेरठ महानगर की कमलानगर कालोनी में पूर्ण हुई है।

आज यहाँ श्री महावीर जिनमंदिर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के द्वारा प्रतिष्ठित कमल-कमल के ऊपर विराजमान हुई श्रीऋषभदेव से लेकर वर्धमान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थकरों की तथा पाँच महाविदेहों में विहरण करने वाले श्रीसीमन्धर आदि बीस तीर्थकरों की समस्त प्रतिमाओं को हमारा वन्दन है। ये सभी एवं अन्य और भी प्रतिष्ठित हुई जिनप्रतिमाएं हमारे तथा प्रतिमा विराजमान करने वाले श्रीप्रेमचंद जैन आदि सभी श्रावक और भाक्तिकों के सम्पूर्ण सौख्य की पूर्ति करें, सर्वत्र क्षेमसुभिक्ष एवं शान्ति करें यही मंगलकामना है।

श्लोकार्थ —वर्तमानकालीन चौबीस तीर्थकरों की एवं विदेहक्षेत्रों के बीस तीर्थकरों की जो प्रतिमाएं कमल-कमल पर स्थित हैं उन सबकी मैं स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार मनुष्यगति के आलापों का प्रकरण पूर्ण हुआ।

१. मेरठ शहर में गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के ससंघ सानिध्य में कमलानगर जैनमंदिर में २४ कमलों पर एवं २० कमलों पर चौबीस प्रतिमाएं एवं बीस प्रतिमाएं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराके विराजमान की गईं। २७ नवम्बर से ३ दिसम्बर १९९८ तक यह प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, असंयमः,

उन्हीं सामान्य देवताओं के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें आदि के चार गुणस्थान,

## देवों के सामान्य आलाप

[illegible]

त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः।

अत्र कश्चित् शिष्यो ब्रवीति—

देवानां पर्याप्तकाले द्रव्यतः षड् लेश्या भवन्तीति न घटते, तेषां पर्याप्तकाले भवतः षड् लेश्याभावात्। यदि कश्चित् ब्रूयात्, मा भवन्तु देवानां भावतः षड् लेश्या द्रव्यतः पुनः षड् लेश्या भवन्ति चैव, द्रव्यभावयोरेकत्वाभावात्। इत्येतदपि वचनं न घटते, यस्माद् या भावलेश्याः तल्लेश्यावन्त एव औदारिक-वैक्रियिक-आहारशरीरनोकर्मपरमाणव आगच्छन्ति।

तत्कथं ज्ञायते ?

इति भणिते सौधर्मादिदेवानां भावलेश्यानुरूपद्रव्यलेश्याप्ररूपणात् ज्ञायते। न च देवानां पर्याप्तकाले तेजः-पद्मशुक्ललेश्या मुक्त्वा अन्यलेश्याः सन्ति, तस्मात् देवानां पर्याप्तकाले द्रव्यतस्तेजः पद्मशुक्ललेश्याभिर्भूतव्यमिति।

अत्रोपयोगिन्यो गाथाः—

किण्हा भमरसमण्णा णीला पुण णीलगुलियसंकासा।

काओ कओदवण्णा तेऊ तवणिज्जवण्णा य।।१।।

पम्मा पउमसवण्णा सुक्का पुण कासकुसुमसंकासा।

किण्हादि-दव्व-लेस्सा-वण्णविसेसो मुणेयव्वो।।२।।

एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मन के, चारों वचन के, वैक्रियिककाययोग ), दो वेद, चारों कषाय, छह ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं होती हैं।

यहाँ कोई शिष्य कहता है—

देवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य से छहों लेश्याएं होती हैं ऐसा घटित नहीं होता है क्योंकि उनके पर्याप्तकाल में भाव से छहों लेश्याओं का अभाव पाया जाता है। इसमें यदि कोई कहे कि देवों में भाव से छहों लेश्याएं भले ही न हों वे किन्तु द्रव्य से छहों लेश्याएं होती ही हैं क्योंकि द्रव्य और भाव में एकता का अभाव पाया जाता है, ऐसा कथन भी नहीं बनता है क्योंकि जो भावलेश्या होती है उसी लेश्या वाले ही औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर संबंधी नोकर्म परमाणु आते हैं।

ऐसा कैसे जाना जाता है? इस प्रकार कहने पर सौधर्म आदि देवों के भावलेश्या के अनुरूप ही द्रव्यलेश्या का प्ररूपण किये जाने से उक्त बात जानी जाती है तथा देवों के पर्याप्तकाल में तेज, पद्म और शुक्ल इन तीन लेश्याओं को छोड़कर अन्य लेश्याएं होती नहीं हैं इसलिए देवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य की अपेक्षा भी तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएं होनी चाहिए।

इस संबंध में यहाँ उपयोगी गाथाएं प्रस्तुत हैं—

गाथार्थ—कृष्ण लेश्या भौर के समान अत्यन्त काले वर्ण की होती है, नीललेश्या नील की गोली के समान नीलवर्ण की होती है, कापोत लेश्या कपोत वर्ण वाली होती है, तेजो लेश्या सोने के समान वर्णवाली होती है, पद्मलेश्या पद्म के समान वर्ण वाली होती है और शुक्ल लेश्या कांस के फूल के समान श्वेतवर्ण की होती है। इस प्रकार कृष्णादि द्रव्यलेश्याओं के वर्णन विशेष जानना चाहिए।।१-२।।



भावलेश्यालिंगं स्तोकोच्चयेन एता गाथा ज्ञातव्याः—

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं वुच्चित्तु वाउपडिदाइं।  
 अब्भंतरलेस्साणं भिंदइ एदाइं वयणाइं॥३॥  
 तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।  
 सुक्का य परमसुक्का लेस्ससमासो मुणेयव्वो॥४॥  
 तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।  
 एत्तो य चोहसण्णं लेस्साभेदो मुणेयव्वो॥५॥

भवनत्रिकदेवानां जघन्या तेजोलेश्या, सौधर्मैशानयोर्देवानां मध्यमा तेजोलेश्या, सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानामुत्कृष्टा तेजोलेश्या जघन्या पद्मलेश्या च। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्राणां षण्णां स्वर्गाणां देवानां मध्यमा

भावलेश्याओं के स्वरूप का संक्षेप से कथन इस गाथा में किया गया है—

**गाथार्थ**—जड़-मूल से वृक्ष को काटो, स्कन्ध से काटो, उपशाखाओं से काटो, फलों को तोड़ कर खाओ और वायु के निमित्त से स्वयं गिरे फलों को खाओ, इस प्रकार ये वचन अभ्यन्तर अर्थात् भावलेश्याओं के अलग-अलग भेद को प्रगट किया है॥३॥

तीन प्रकार के देवों में तेजो लेश्या का जघन्य अंश पाया जाता है, दो के तेजोलेश्या का मध्यम अंश, दो के तेजोलेश्या का उत्कृष्ट एवं पद्मलेश्या का जघन्य अंश, छह के पद्मलेश्या का मध्यम अंश, दो के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट एवं शुक्ललेश्या का जघन्य अंश, तेरह के शुक्ल लेश्या का मध्यम अंश तथा चौदह के परमशुक्ल लेश्या होती है। इस प्रकार तीनों शुभ लेश्याओं का भेद जानना चाहिए॥४-५॥

**विशेषार्थ**—उपर्युक्त लेश्याओं के प्रकरण को गोम्मटसार आदि ग्रंथों में आचार्यों ने स्पष्ट करते हुए बताया है कि फलों से लदे हुए वृक्ष को देखकर कृष्णलेश्या वाला मनुष्य विचार करता है कि इस वृक्ष को जड़-मूल से उखाड़ कर फलों को खाना चाहिए। नीललेश्या वाला सोचता है कि इस वृक्ष को स्कन्ध से अर्थात् जड़ से ऊपर के भाग को काटकर फल खाना चाहिए। कापोत लेश्या वाला विचार करता है कि इस वृक्ष की शाखाओं को काटकर फल खाना चाहिए। तेजोलेश्या वाला विचार करता है कि इस वृक्ष की उपशाखाओं को काटकर मुझे फल खाना है। पद्मलेश्या वाला विचार करता है कि वृक्ष से केवल फलों को तोड़कर ही खा लूँ तथा शुक्ललेश्या वाला जीव सोचता है कि पेड़ से जो फल हवा के झोंके से नीचे गिर रहे हैं, बस उन्हीं को खाकर मेरा कार्य सिद्ध हो सकता है अतः वृक्ष या शाखा आदि को काटने से क्या लाभ? इस प्रकार भावों से छहों लेश्याओं का तारतम्य जानना चाहिए।

**भवनत्रिक**—भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी इन तीन जाति के देवों के जघन्य तेजोलेश्या होती है अर्थात् इन देवों में शुभ लेश्या के अन्तर्गत तेजो ( पीत ) लेश्या का अतिलघु अंश पाया जाता है। आगे वैमानिक देवों की श्रृंखला में सौधर्म एवं ईशान स्वर्ग वाले देवों के मध्यम तेजोलेश्या होती है। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देवों के तेजोलेश्या उत्कृष्टरूप में पद्मलेश्या

पद्मलेश्या, शतार-सहस्रारस्वर्गयोर्देवानामुत्कृष्टा पद्मलेश्या जघन्या शुक्ललेश्या, आनत-प्राणतारणाच्युतस्वर्गाणां नवग्रैवेयकानां च देवेषु मध्यमा शुक्ललेश्या, एतेषामुपरिनवानुदिशानां पञ्चानुत्तराणां चाहमिन्द्रेषु उत्कृष्टा परमशुक्ला वा लेश्या भवतीति ज्ञातव्यम् ?

अत्र पर्यन्तं शंकाकारेण प्रोक्तम्

अधुना आचार्यदेवः परिहारं ददाति —

न तावदेता गाथास्तव पक्षं साधयन्ति, उभयपक्षसाधारणात्। न तवोक्तयुक्तिरपि घटते, न तावदपर्याप्तकाले भवद्भावलेश्यामनुकरोति द्रव्यलेश्या, अन्यथा उत्तमभोगभूमिमनुष्याणामपर्याप्तकालेऽशुभत्रिकलेश्याणां गौरवर्णाभावापत्तेः। न पर्याप्तकाले भावलेश्यामपि नियमेनानुहरति पर्याप्तद्रव्यलेश्या, षड्विधभावलेश्यासु परिवर्तमानतिर्यग्मनुष्यपर्याप्तानां द्रव्यलेश्याया अनियमप्रसंगात्। धवलवर्णवलाकाया भावतः शुक्ललेश्याप्रसंगात्।

आहारशरीराणां धवलवर्णानां विग्रहगतिस्थित-सर्वजीवानां धवलवर्णानां च भावतः शुक्ललेश्यापत्तेश्चैव।

किं च द्रव्यलेश्या नाम वर्णनामकर्मोदयाद् भवति, न भावलेश्यातः। न च द्वयोरेकत्वं नाम, वर्णनामकर्म-मोहनीयकर्मणोः अघातिघातिनोः पुद्गलविपाकि-जीवविपाकिनोरेकत्वविरोधात्।

जघन्यरूप में होती है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र इन छह स्वर्ग के देवों में मध्यम पद्मलेश्या पाई जाती है। शतार और सहस्रार इन दो स्वर्ग वाले देवों के उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ल लेश्या होती है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और नौ ग्रैवेयक इन तेरह विमान वालों के मध्यम शुक्ल लेश्या होती है। इसके ऊपर नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर इन चौदह विमान वालों के उत्कृष्ट या परमशुक्ललेश्या होती है ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ तक शंकाकार ने अपनी बात कही है।

अब आचार्यदेव उसका समाधान देते हुए कहते हैं—

उपर्युक्त उल्लिखित ये गाथाएं तो तुम्हारे पक्ष को नहीं साधती हैं क्योंकि ये गाथाएं उभयपक्ष में साधारण अर्थात् समान हैं और न तुम्हारी युक्ति ही घटित होती है। द्रव्य लेश्या अपर्याप्तकाल में होने वाली भावलेश्या का तो अनुकरण करती नहीं है, अन्यथा अपर्याप्तकाल में अशुभ तीनों लेश्या वाले उत्तम भोगभूमियां मनुष्यों के गौर वर्ण का अभाव प्राप्त हो जायेगा। इसी प्रकार पर्याप्तकाल में भी पर्याप्त जीवसंबंधी द्रव्यलेश्या भावलेश्या का नियम से अनुकरण नहीं करती है क्योंकि वैसा मानने पर छह प्रकार की भावलेश्याओं में निरन्तर परिवर्तन करने वाले पर्याप्त तिर्यच और मनुष्यों के द्रव्यलेश्या के अनियमपने का प्रसंग प्राप्त हो जायेगा तथा यदि द्रव्यलेश्या के अनुरूप ही भावलेश्या मानी जाये तो धवल वर्ण वाले बगुले के भी भाव से शुक्ललेश्या का प्रसंग प्राप्त होगा।

धवलवर्ण वाले आहारक शरीरों के और धवलवर्ण वाले विग्रहगति में विद्यमान सभी जीवों के भाव की अपेक्षा से शुक्ल लेश्या की आपत्ति प्राप्त होगी।

दूसरी बात यह भी है कि द्रव्यलेश्या वर्णनामा नामकर्म के उदय से होती है, भावलेश्या से नहीं। इसलिए दोनों लेश्याओं को एक नहीं कह सकते क्योंकि अघातिया और पुद्गलविपाकी वर्णनामा नामकर्म तथा घातिया और जीवविपाकी ( चारित्रमोहनीय ) कर्म इन दोनों की एकता में विरोध है।

यदि कहा जाए कि कर्मों के विस्त्रसोपचय का वर्ण तो भाव से होता है और औदारिक,

बिस्त्रसोपचयवर्णो भावलेश्याया भवति, औदारिक-वैक्रियिक-आहारशरीराणां वर्णा वर्णनामकर्मोदयाद् भवन्ति, अतो नैष दोषः इति चेत् ?

न, 'चंडो ण मुयदि वेरं' कृष्णलेश्यावान् चण्डकर्मा भवति वैरं न मुञ्चति इत्यादिना बाह्यकार्योत्पादने स्थितिबंधे प्रदेशबंधे च भावलेश्याव्यापारदर्शनात्। अतो द्रव्यलेश्याया न कारणं भावलेश्येति सिद्धम्।

तत उक्तविवेचनेनायं फलितार्थो भवति यत् वर्णनामकर्मोदयात् भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्काणां द्रव्यतः षड् लेश्या भवन्ति, उपरिमदेवानां तेजःपद्मशुक्ललेश्या भवन्ति। यथा पञ्चवर्ण-रसकाकस्य कृष्णव्यपदेशो दृश्यते तथैव एकस्मिन् शरीरे द्रव्येण षड्लेश्यासंभवेऽपि एकवर्णव्यवहारविरोधाभावात्। भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*११</sup>।

तेषामेवापर्याप्तानां सामान्यदेवानां भण्यमाने सन्ति त्रीणि गुणस्थानानि सम्यग्मिथ्यात्ववर्ज्यानि, एको जीवसमासः,

वैक्रियिक, आहारक शरीरों के वर्णनामकर्म के उदय से होते हैं इसलिए हमारे कथन में यह दोष नहीं आता है। ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया जाता है—

ऐसा कथन ठीक नहीं है क्योंकि “कृष्णलेश्या वाला जीव चंडकर्मा होता है, वह वैर नहीं छोड़ता है” इत्यादि रूप से बाह्य कार्यों के उत्पन्न करने में तथा स्थितिबंध और प्रदेशबंध में ही भावलेश्या का व्यापार देखा जाता है इसलिए यह बात सिद्ध होती है कि भावलेश्या द्रव्यलेश्या के होने में कारण नहीं है।

इस प्रकार उक्त विवेचन से यह फलितार्थ निकलता है कि वर्णनामकर्म के उदय से भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों के द्रव्य की अपेक्षा छहों लेश्याएं होती हैं तथा भवनत्रिक से ऊपर के देवों के तेज, पद्म और शुक्ललेश्याएं होती हैं। जैसे पाँचों वर्ण और पाँचों रस वाले कौआ के अथवा पाँचों वर्ण वाले रसों से युक्त कौआ के कृष्ण व्यपदेश देखा जाता है उसी प्रकार प्रत्येक शरीर में द्रव्य से छहों लेश्याओं के होने पर भी एक वर्णवाली लेश्या के व्यवहार करने में कोई विरोध नहीं आता है।

द्रव्य लेश्या के आगे उनमें भाव से तेज, पद्म और शुक्ललेश्याएं पाई जाती हैं, वे भव्यसिद्धिक होते हैं, अभव्यसिद्धिक भी होते हैं, उनके छहों सम्यक्त्व हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक होते हैं तथा साकार-अनाकार इन दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं देवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके सम्यग्मिथ्यात्व को छोड़कर प्रारंभ के तीन गणस्थान होते हैं, एक जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त ), छहों अपर्याप्तियाँ, सात

नं. १४१

## देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१ सं. प.	६	१०	४	१ दे.	१ पेण्.	१ त्रसं.	९ म.४ व.४ वै.१	२ पुं. स्त्री.	४	६ अज्ञा.३ ज्ञान.३	१ असं.	३ के.द. विना	३ द्र.६ भा.३ शुभ.	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन विना पञ्चज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वेन विना पञ्च सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१४२।

सामान्यदेवमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन तेजः पद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१४३।

प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग (वैक्रियकमिश्र और कार्मणकाययोग), दो वेद (स्त्री-पुरुष), चारों कषाय, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या होती है तथा भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

मिथ्यादृष्टि देवों के सामान्य आलाप कहने पर उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, वैक्रियककाययोग वैक्रियकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग), दो वेद (स्त्री-पुरुष), चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से तेज, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक,

### नं. १४२

### देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अ.	१ सं. अ.	६ पुं. ऊं.	१० पुं. ऊं.	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	२ पुं. हिं.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना	३.२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	५ मि. सासा. औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १४३

### मिथ्यादृष्टि देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	२ पुं. हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	३.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*१४४।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिनः आलापाः प्ररूपयितव्याः। तत्रापि विभंगज्ञानेन विना द्वे अज्ञाने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन षड्लेश्याः विशेषतो ज्ञातव्याः\*१४५।

सामान्यदेवानां सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रःसंज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः,

मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग दोनों पाए जाते हैं।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि पर्याप्त देवों के आलापों में सभी पर्याप्तकालसंबन्धी प्ररूपणा जानना चाहिए। अर्थात् एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक संज्ञीपर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या एवं भाव से तीनों शुभ लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

इन्हीं मिथ्यादृष्टि देवों के अपर्याप्तकाल संबन्धी आलापों का कथन करना चाहिए। उसमें भी विभंगज्ञान के बिना दो अज्ञान होते हैं, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या तथा भाव से छहों लेश्या होती हैं यह विशेषता जाननी चाहिए।

अब उन्हीं सामान्य देवों के सासादनगुणस्थान संबन्धी आलाप के कहने पर उनके एक सासादन गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, तीन अज्ञान,

नं. १४४

मिथ्यादृष्टि देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६ प. ६ अ.	१०	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	१ यो. म.४ व.४ वै.१	२ वे. षट्	४ क.	३ ज्ञा. अज्ञा.	१ संय. असं.	२ द. चक्षु. अच.	२ ले. द्र.६ भा.३ शुभ.	२ भ. भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. सं.	१ आ. आहार	२ उ. साकार अनाकार

नं. १४५

मिथ्यादृष्टि देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	२ यो. वै.मि. कर्म.	२ वे. षट्	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. असं.	२ द. चक्षु. अच.	२ ले. द्र.२ का. शु. भा.६	२ भ. भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. सं.	२ आ. आहार अनाहार	२ उ. साकार अनाकार

आहारिणः अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१४६।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*१४७।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*१४८।

असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग, अनाकारोपयोग होता है।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर उनके अपर्याप्त संबन्धी सभी प्ररूपणाओं को छोड़ देना चाहिए। कोष्ठक में इनका विश्लेषण देखें।

उन्हीं सासादनगुणस्थानवर्ती देवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के कथन में पर्याप्तकाल संबन्धी प्ररूपणाओं को छोड़ देना चाहिए।

सामान्य देवों में सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती देवों के आलाप इस प्रकार हैं—

### नं. १४६ सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा. सा.	२ सं. प. स. अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पिं.	१ पू.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	२ पू. हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १४७ सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं. प.	६	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ वै.१	२ पू. हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र. ६ भा.६ शुभ.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १४८ सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं. अ.	६ अप.	७	४	१ दे.	१ पिं.	१ पू.	२ वै.मि. कर्म.	२ पू. हिं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र. २ का. शुभ. भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

सामान्यदेव-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यानाकारोपयुक्ता वा\*१४९।

सामान्यदेव-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्या भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यानाकारोपयुक्ता वा\*१५०।

एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, दो वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से तेज, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी अथवा अनाकारोपयोगी होते हैं।

असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती देवों के सामान्य आलाप निम्न प्रकार हैं—

एक गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, तीनदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से तेज, पद्म, शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं चतुर्थगुणस्थानवर्ती देवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में अपर्याप्त संबंधी आलाप

नं. १४९

सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ वै.१	२ पू. हिं.	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. ३ शुभ.	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १५०

असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पिं.	१ पू.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	२ पू. हिं.	४	३ मति श्रुत अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा. ३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिनः आलापाः अपनेतव्याः\*१५१।

एषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*१५२।

अधुना भवनत्रिकाणां आलापाः कथ्यन्ते —

भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्काणां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्या जघन्या तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना पञ्च सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः,

छोड़ देना चाहिए और केवल पर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं चतुर्थगुणस्थानवर्ती देवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के कथन में पर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं को छोड़कर मात्र अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाएं ही लेना चाहिए।

अब भवनत्रिक देवों के आलाप कहे जाते हैं —

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के आलाप कहने पर उनके आदि के चार गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्ति, छहों अपर्याप्ति, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, छह ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या, भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या और जघन्य से तेजोलेश्या भी होती है। आगे भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार की व्यवस्था उनमें पाई जाती है, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना उनमें पाँचों सम्यक्त्व संभव हैं, वे सभी संज्ञी होते हैं, आहारक-अनाहारक दोनों प्रकार की अवस्थाएं यथासंभव पाई जाती हैं, उनमें साकार-अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

इन्हीं भवनत्रिक देवों के पर्याप्त अवस्था संबंधी आलापों में सामान्य की अपेक्षा जो

### नं. १५१ असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. कं	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ पुं.	१ म.४ व.४ वै.१	२ पुं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. ६ भा. ३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १५२ असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ विं. कं	१ सं. अ.	६ अप.	७	४	१ दे.	१ पिं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. २ का. शु. भा. ३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१५३।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने यो विशेषः स एव भण्यते-षड् ज्ञानानि, भावेन जघन्या तेजोलेश्या, क्षायिकमन्तरेण पञ्च सम्यक्त्वानि सन्ति, शेषाः पूर्ववत्\*१५४।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वे गुणस्थाने, द्वे अज्ञाने, द्वे दर्शने, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, द्वे सम्यक्त्वे-मिथ्यात्वसासादने, शेषाः पूर्ववत् ज्ञातव्याः\*१५५।

विशेषता है, यहाँ उसी को कहते हैं—

उनके छह ज्ञान ( तीन अज्ञान एवं आदि के तीन ज्ञान ) होते हैं, भाव से जघन्यरूप में तेजो लेश्या होती है, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना पाँच सम्यक्त्व होते हैं तथा शेष आलाप पूर्व के समान जानना चाहिए।

इन भवनत्रिक देवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलापों में उनके दो गुणस्थान ( मिथ्यात्व सासादन ) होते हैं, आदि के दो अज्ञान होते हैं, आदि के दो दर्शन होते हैं, भाव से कृष्ण, नील,

नं. १५३

भवनत्रिक देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	२	६	१०	४	१	१	१	११	२	४	६	१	३	द्र. ६	२	५	१	२	२
मि.	सं.	प.	७		दे.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		ज्ञान.३	असं.	के.द	भा.४	भ.	क्षायि.	सं.	आहार	अनाहार
सा.	प.	६						व.४	पुं.		अज्ञा.३		विना.	अशु.३	अ.	विना.		साकार	अनाकार
स.	सं.	अ.						वै.२	पुं.					तेजो.१					
अ.	अ.							का.१	पुं.										

नं. १५४

भवनत्रिक देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	१	६	१०	४	१	१	१	९	२	४	६	१	३	द्र. ६	२	५	१	१	२
मि.	सं.	प.			दे.	पुं.	पुं.	म.४	पुं.		ज्ञान.३	असं.	के.द	भा.१	भ.	क्षायि.	सं.	आहार	साकार
सा.	प.							व.४	पुं.		अज्ञा.३		विना.	ते.	अ.	विना.		अनाहार	अनाकार
स.								वै.१	पुं.										
अ.									पुं.										

नं. १५५

भवनत्रिक देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२	१	६	७	४	१	१	१	२	२	४	२	१	२	द्र. २	२	२	१	२	२
मि.	सं.	अप.			दे.	पुं.	पुं.	वै.मि.	पुं.		कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	अनाहार
सा.	अ.							कार्म.	पुं.		कुश्रु.		अच.	शु.	अ.	सा.		साकार	अनाकार
									पुं.					भा.३					
									पुं.					अशु					

भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्काणां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्या जघन्या तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१५६।

एतेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*१५७।

कापोत ये तीन लेश्या होती हैं, मिथ्यात्व और सासादन ये सम्यक्त्व के दो भेद उनमें पाए जाते हैं। शेष सभी आलाप पूर्ववत् होते हैं इसलिए यहाँ उनका विस्तार नहीं किया गया है।

भवनवासी-वानव्यन्तर और ज्योतिषी मिथ्यादृष्टि देवों के आलाप कहने पर उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्ति एवं छहों अपर्याप्ति, दश प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञा, एक देवगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीनों अशुभ लेश्याएं तथा जघन्य से तेजो लेश्या होती है। वे भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के होते हैं, सम्यक्त्व की अपेक्षा उनके एक मिथ्यात्व पाया जाता है, वे संज्ञी होते हैं, आहारक और अनाहारक दोनों भेद उनमें होते हैं तथा साकार-अनाकार दोनों उपयोग उनमें पाये जाते हैं।

इन भवनत्रिक मिथ्यादृष्टि देवों के पर्याप्तआलापों में केवल पर्याप्तकालसंबन्धी प्ररूपणाएं ही जानना चाहिए। अर्थात् उनमें अपर्याप्तकालसंबन्धी सभी आलाप निकाल देना चाहिए।

### नं. १५६ भवनत्रिक मिथ्यादृष्टि देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं. प. स. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.१	२ वे.	४ क.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. ४ भा. ३ अशु. १ तेज.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १५७ भवनत्रिक मिथ्यादृष्टि देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	९ म.४ व.४ वै.१	२ वे.	४ क.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ द्र. १ भा. १ तेज.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबंधिन आलापा ज्ञातव्याः\*१५८।

भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवानां सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्या जघन्या तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१५९।

उन्हीं भवनत्रिक मिथ्यादृष्टि देवों के अपर्याप्त आलापों में मात्र अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं का कथन करना चाहिए अर्थात् उनमें पर्याप्तकालसंबंधी प्ररूपणा नहीं आती हैं।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों के सासादनगुणस्थानसंबंधी आलापों के वर्णन में उनके एक सासादन गुणस्थान होता है, दो जीवसमास होते हैं, छहों पर्याप्ति और छहों अपर्याप्ति होती हैं, दश प्राण और सात प्राण होते हैं, चारों संज्ञा होती हैं, एक देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या होती है तथा जघन्य से तेजो लेश्या भी पाई जाती है। वे भव्यसिद्धिक होते हैं, उनके एक सासादनसम्यक्त्व होता है, संज्ञीपना होता है, वे आहारक और अनाहारक के भेद से दो प्रकार के होते हैं तथा साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती भवनत्रिक देवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में

### नं. १५८ भवनत्रिक मिथ्यादृष्टि देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. अ.	६ अप.	७	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	२ वै.मि. कर्म.	२ वे. इं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का.शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १५९ भवनत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. सां. प. सं. अ.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ इं.	१ का.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.१	२ वे. इं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा.४ अशु.३ तेज.१	१ भ.	१ सां. सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*१६०।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा ज्ञातव्याः\*१६१।

भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्काणां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्या भावेन जघन्या तेजोलेण्या, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१६२।

पर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

उन्हीं सासादन भवनत्रिकों के अपर्याप्तकालीन आलापों में केवल अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए क्योंकि उनके पर्याप्त प्ररूपणाओं का अभाव रहता है।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी इन भवनत्रिक देवों के सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान संबंधी आलापों के कहने पर उनके एक तृतीय गुणस्थान, एक जीवसमास, छह पर्याप्ति, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, नवयोग, दो वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान से मिश्रित

### नं. १६० भवनत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सासा. प.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ प्रसं.	१ म.४ व.४ वै.१	२ प्रं. खिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. १ तेज.	१ भ.	१ सासां. सासां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १६१ भवनत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सासा. अ.	१ सं. अ.	६ अप.	७	४	१ दे.	१ पिं.	१ प्रसं.	२ वै.मि. कर्म.	२ प्रं. खिं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. ३ भा. ३ अशु.	१ भ.	१ सासां. सासां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १६२ भवनत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य. प.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ प्रसं.	१ म.४ व.४ वै.१	२ प्रं. खिं.	४	३ ज्ञान. अज्ञा. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. १ तेज.	१ भ.	१ सम्य. सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

भवनत्रिकदेवानामसंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्या भावेन जघन्या तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञितः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१६३।

अत्रपर्यंत स्त्रीपुरुषवेदयोः ओघालापः समाप्तः।

अत्रैव भवनत्रिकाणां पुरुषवेदे देवानामालापे भण्यमाने एवमेव व्यवस्था, केवलं द्विवेदस्थाने पुरुषवेद एक एव वक्तव्यः।

इत्थमेव देवांगनामालापे भण्यमाने पुरुषवेदस्थाने स्त्रीवेदो वक्तव्यः—

अधुना कल्पवासिदेवानामालापाः कथ्यन्ते—

आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या, भाव से जघन्य से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, सम्यक्त्व की अपेक्षा एक सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञित्व, आहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग होता है।

असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती भवनत्रिकों के आलापों में उनके एक चतुर्थ गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नवयोग, दो वेद, चारों कषाय, आदि के तीनों ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या और भाव से जघन्य तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहारक, साकारोपयोग तथा अनाकारोपयोग होता है।

यहाँ तक स्त्री और पुरुष दोनों वेदों वाले भवनत्रिकों के ओघालाप समाप्त हुए।

इसी प्रकार भवनत्रिकों के पुरुषवेद संबंधी ओघालाप कहने पर ऐसी ही व्यवस्था बताकर उसमें दोनों वेदों के स्थान पर केवल एक पुरुष वेद का ही कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार भवनत्रिक की देवांगनाओं के आलापों में पुरुषवेद के स्थान पर स्त्रीवेद का कथन करना चाहिए।

भावार्थ—भवनत्रिक देवों के उपर्युक्त आलापों में सामान्यरूप से कथन होने के कारण स्त्री-पुरुष दोनों वेदों का भेद नहीं किया गया है। परन्तु उन्हीं आलापों में दो वेदों के स्थान में केवल पुरुषवेद या केवल स्त्रीवेद के स्थापित कर देने पर वे आलाप पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी भवनत्रिकों के हो जाते हैं। भवनत्रिक के सामान्य आलापों से विशेष आलापों में इससे अधिक

## नं. १६३ भवनत्रिक असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	२	४	३	१	३	द्र. ६	१	२	१	१	२
किं	सं.	प.			दे.	पिं	पूँ	म.४ व.४ वै.१	पुं		मति. श्रुत. अव.	असं.	के.द. विना.	भा.१ तेज.	भ.	औप. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

एतेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा गृहीतव्याः, अत्र द्रव्यभावाभ्यां मध्यमा तेजोलेश्या ज्ञातव्याः\*१९५।

इन्हीं दोनों स्वर्गों के देवों में अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके आदि के तीन

## सौधर्म ऐशान देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पे.	१ त्र.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.१	२ पं. स्त्री.	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	३ द्र. ३ का. शु.ते. भा.१ तेज.	२ भ. अ.	६	१ सं.	२ आहार अनहार	२ साकार अनाकार

## सौधर्म ऐशान देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१ सं. प.	६	१०	४	१ दे.	१ पुं.	१ स्त्र.	९ म.४ व.४ वै.१	२ पुं. स्त्री.	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ भा.१ तेज.	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनकार

एतेषामेवापर्याप्तानां कथ्यमाने सन्ति त्रीणि गुणस्थानानि एकोऽपर्याप्तो जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, पंच ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन मध्यमा तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वेन विना पंच सम्यक्त्वानि। उपशमसम्यक्त्वेन सह उपशमश्रेण्यां मृतसंयतान् प्रतीत्य सौधर्मैशानादि-उपरिमदेवानामपर्याप्तकाले उपशमसम्यक्त्वं लभ्यते।

संज्ञिनः आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१६६।

सौधर्मैशानदेवमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, इत्यादयः आलापाः सामान्यवत् वक्तव्याः\*१६७।

गुणस्थान, एक संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, दो योग, दो वेद, चारों कषाय, पाँच ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से मध्यम तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व होते हैं।

यहाँ औपशमिक सम्यक्त्व होने का कारण यह है कि उपशम सम्यक्त्व के साथ उपशम श्रेणी में मरे हुए संयतों की अपेक्षा सौधर्म-ईशान आदि ऊपर के देवों के अपर्याप्तकाल में औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है।

सम्यक्त्व के पश्चात् आगे के आलापों की अपेक्षा वे संज्ञी होते हैं, आहारक-अनाहारक दोनों भेद उनमें पाये जाते हैं, साकार और अनाकार ये दोनों उपयोग होते हैं।

अब मिथ्यादृष्टि सौधर्म-ईशान देवों के आलाप कहने पर उनके एक प्रथम गुणस्थान होता है तथा आगे के सभी सामान्य आलापों के समान जानना चाहिए।

इन्हीं दोनों प्रकार के देवों में पर्याप्तकालीन आलापों का वर्णन करने पर पर्याप्तसंबंधी

### नं. १६६

### सौधर्म ऐशान देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अ.	१ सं. अ.	६ अप.	७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	२ पुं. हिं.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. २ का. शु. भा.१ तेज.	२ भ. अ.	५ औप. क्षा. क्षायो मिथ्या सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १६७

### मिथ्यादृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ वै.२ कर्म.१	२ पुं. हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ३ का. शु.ते भा.१ तेज.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्य प्ररुपणा ज्ञातव्याः\*१६८।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररुपणाः निरूपयितव्याः\*१६९।

सौधर्मैशानदेवानां सामान्येन सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने पूर्ववत् आलापाः कथयितव्याः\*१७०।

प्ररुपणाओं को ही जानना चाहिए। इनका स्पष्टीकरण कोष्ठक से ज्ञात करें।

उन देवों के अपर्याप्तकालीन आलापों के वर्णन में अपर्याप्त संबंधी प्ररुपणाओं को ही जानना चाहिए। क्योंकि उनमें पर्याप्तकालीन प्ररुपणाएं नहीं होती हैं।

सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती सौधर्म और ईशान देवों के सामान्यरूप से आलाप कहने पर पूर्ववत् सभी आलापों का कथन करना चाहिए।

कोष्ठक में इसका खुलासा देखें —

उन्हीं सौधर्म और ईशान देवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में पर्याप्तकालीन प्ररुपणाओं

### नं. १६८ मिथ्यादृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ वै.१	२ पुं. ह्रिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. १ भा. १ तेज	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १६९ मिथ्यादृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	२ पुं. ह्रिं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. २ शु. १ भा. १ तेजो.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १७० सासादनसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सासा.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	२ पुं. ह्रिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ३ का. ३ शु. ३ भा. १ तेजो.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



एतेषामेव पर्याप्तानां कथ्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*१७१।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा गृहीतव्याः\*१७२।

सौधर्मैशानसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानमित्यादिपूर्ववत् द्रष्टव्याः\*१७३।

सौधर्मैशानदेवासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश

का ही कथन करना चाहिए।

उन्हीं सासादनगुणस्थानवर्ती सौधर्म-ईशान देवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में अपर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं का ही वर्णन करना चाहिए।

अब आगे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती सौधर्म-ईशान देवों के आलापों में केवल एक तृतीय गुणस्थान होने का अन्तर है, शेष सभी प्ररूपणाओं का कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

सौधर्म-ईशान देवों के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसंबन्धी आलापों का कथन करने पर उनके एक चतुर्थ गुणस्थान होता है, दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों

### नं. १७१ सासादनसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा	२ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ पुं.	१ म.४ व.४ वै.१	२ पुं. हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. १ तेज. भा.१ तेज.	१ भ.	१ सां. सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १७२ सासादनसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा	१ सं. अ.	६ पुं.	७	४	१ दे.	१ पिं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	२ पुं. हिं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. शु. भा.१ तेज.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १७३ सम्यग्मिथ्यादृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. मिथ्यं	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पिं.	१ पुं.	१ म.४ व.४ वै.१	२ पुं. हिं.	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. १ ते. भा.१ तेज.	१ भ.	१ सां. मिथ्यं	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादशयोगाः, द्वौ वेदौ, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ल-मध्यमतेजोलेण्याः भावेन मध्यमा तेजोलेण्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१७४</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः<sup>\*१७५</sup>।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा ज्ञातव्याः। अत्र विशेषः — त्रीण्यपि सम्यक्त्वानि लभ्यन्ते।

प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, दो वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत शुक्ल एवं मध्यम तेजो लेण्या तथा भाव से मध्यम तेजो लेण्या होती है। वे भव्यसिद्धिक होते हैं, उनके तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ) होते हैं, वे संज्ञी होते हैं, आहारक-अनाहारक दोनों प्रकार उनमें पाये जाते हैं तथा वे साकार-अनाकार दोनों उपयोगों से समन्वित होते हैं।

उन्हीं चतुर्थगुणस्थानवर्ती सौधर्म-ईशान देवों के पर्याप्तसंबन्धी आलापों में केवल पर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

उन्हीं चतुर्थगुणस्थानवर्ती सौधर्म-ईशान देवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों के कथन में अपर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं को ही जानना चाहिए।

यहाँ पर विशेषता यह है कि तीनों ही ( औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ) सम्यक्त्व उनमें होते हैं —

यहाँ कोई कहता है —

### नं. १७४ असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ कुं.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पं.	१ पं.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	२ पं. हं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. ३ का. शु.ते. भा.१ तेज.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १७५ असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ कुं.	२ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पं.	१ पं.	११ म.४ व.४ वै.१	२ पं. हं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. १ तेज. भा.१ तेज.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

अत्र कश्चिदुच्यते —

देवानामसंयतसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले उपशमसम्यक्त्वं कथं लभ्यते इति चेत् ?

आचार्यदेव उच्यते —

वेदकसम्यक्त्वमुपशम्य उपशमश्रेणिमारूढ्य पुनोऽवतीर्थ प्रमत्ताप्रमत्तसंयत-असंयत-संयतासंयत-उपशमसम्यग्दृष्टि-स्थानैर्मध्यमतेजोलेश्यां परिणम्य कालं कृत्वा सौधर्मैशानदेवेषूत्पन्नानां अपर्याप्तकाले उपशमसम्यक्त्वं लभ्यते। अथ त एव यदि उत्कृष्टतेजोलेश्यां वा जघन्यपद्मलेश्यां वा परिणम्य कालं कुर्वन्ति तर्हि उपशमसम्यक्त्वेन सह सनत्कुमार-माहेन्द्रयोरुत्पद्यन्ते। अथ त एव उपशमसम्यग्दृष्टयो मध्यमपद्मलेश्यां परिणम्य कालं कुर्वन्ति तर्हि ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तवकापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्रेषु उत्पद्यन्ते। अथ उत्कृष्टपद्मलेश्यां वा जघन्यशुक्ललेश्यां वा परिणम्य यदि ते म्रियन्ते तर्हि उपशमसम्यक्त्वेन सह शतार-सहस्रारदेवेषु उत्पद्यन्ते। अथ उपशमश्रेणिं चटित्वा पुनोऽवतीर्णाश्चैव मध्यमशुक्ललेश्यायाः परिणताः सन्तो यदि कालं कुर्वन्ति तर्हि उपशमसम्यक्त्वेन सह आनत-प्राणत-आरणाच्युत-नवग्रैवेयकविमानवासिदेवेषु उत्पद्यन्ते। पुनस्ते चैवोत्कृष्टलेश्यां परिणम्य यदि कालं कुर्वन्ति तर्हि उपशमसम्यक्त्वेन सह नवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानदेवेषु उत्पद्यन्ते। तेन सौधर्मैशानादि-उपरिम-सर्वदेवासंयतसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले उपशमसम्यक्त्वं लभ्यते इति।

असंयत सम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्तकाल में उपशम सम्यक्त्व कैसे हो सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यदेव कहते हैं —

वेदक सम्यक्त्व को उपशमा करके और उपशमश्रेणी पर चढ़कर फिर वहाँ से उतर कर प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत उपशमसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में मध्यमतेजोलेश्या को परिणत होकर और मरण करके सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवों में उत्पन्न होने वाले जीवों के अपर्याप्तकाल में औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है तथा उपर्युक्त गुणस्थानवर्ती जीव ही उत्कृष्ट तेजोलेश्या को अथवा जघन्य पद्मलेश्यारूप से परिणत होकर यदि मरण करते हैं तो औपशमिक सम्यक्त्व के साथ सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में उत्पन्न होते हैं। पुनः वे ही उपशम सम्यग्दृष्टि दोनों कल्पवासी देव मध्यम पद्मलेश्यारूप परिणत होकर यदि मरण करते हैं तो ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र और महाशुक्र कल्पों में उत्पन्न होते हैं तथा वे ही उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट पद्मलेश्या को अथवा जघन्य शुक्ललेश्या को परिणत होकर यदि मरण करते हैं तो औपशमिक सम्यक्त्व के साथ शतार, सहस्रार कल्पवासी देवों में उत्पन्न होते हैं तथा उपशमश्रेणी पर चढ़ करके और पुनः उतर करके मध्यम शुक्ललेश्या से परिणत होते हुए यदि मरण करते हैं तो उपशम सम्यक्त्व के साथ आनत, प्राणत, आरण, अच्युत तथा नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों में उत्पन्न होते हैं तथा पूर्वोक्त वही उपशमसम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट शुक्ललेश्यारूप परिणत होकर यदि मरण करते हैं तो उपशमसम्यक्त्व के साथ नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए सौधर्म स्वर्ग से लेकर ऊपर के सभी असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के अपर्याप्तकाल में औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है।

इस सम्यक्त्व मार्गणा के आगे उन असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म-ईशान देवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों में वे संज्ञी होते हैं, आहारक और अनाहारक दोनों अवस्था उनमें पाई जाती हैं

संज्ञिनः आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१७६।

एवं स्त्रीपुरुषवेदयोः ओघालापः समाप्तः।

एवमेव पुरुषवेददेवानामालापो वक्तव्यः। विशेषेण यत्र द्वौ वेदौ कथितौ तत्र पुरुषवेद एक एव वक्तव्यः।

एवं सौधर्मैशानदेवीनामपि वक्तव्यं। नवरि यत्र पुरुषवेदः प्रोक्तः, तत्र स्त्रीवेदश्चैव वक्तव्यः। असंयतसम्यग्दृष्टेः स्त्रीवेद उत्पत्तिर्नास्ति इति तस्य पर्याप्तालाप एकश्चैव वक्तव्यः। पर्याप्तालापे कथ्यमानेऽपि आसां क्षायिकसम्यक्त्वं नास्तीति कथयितव्यं, देवेषु दर्शनमोहनीयस्य क्षपणाभावात्। एतावन्मात्र एव विशेषः।

सानत्कुमार-माहेन्द्रदेवानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, पुरुषवेदः, चत्वारः

तथा उनके साकार-अनाकार दोनों उपयोग होते हैं।

इस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेद के ओघालाप समाप्त हुए।

इसी प्रकार पुरुषवेदी देवों के आलापों का भी कथन करना चाहिए। उसमें विशेषता यह है कि जहाँ स्त्री और पुरुष ये दो वेद कहे गये हैं वहाँ अब केवल एक पुरुषवेद ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियों के आलापों का भी कथन करना चाहिए। उसमें विशेषता यह है कि पुरुषवेदी देवों के आलापों में जहाँ पुरुषवेद कहा गया है वहाँ केवल स्त्रीवेद ही कहना चाहिए। यहाँ एक बात विशेष है कि असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों की स्त्रीवेद में उत्पत्ति नहीं होती है इसीलिए स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि का एक पर्याप्त आलाप ही कहना चाहिए। पर्याप्त आलाप कहते समय भी उनके क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है ऐसा कहना चाहिए। क्योंकि देवों में दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण का अभाव है। इतनी मात्र इनमें विशेषता पाई जाती है।

सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों के देवों के सामान्य आलाप कहने पर—

आदि के चार गुणस्थान, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास हैं, उनके छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ), पुरुषवेद, चारों कषाय, छह ज्ञान ( आदि के तीनों ज्ञान, तीनों अज्ञान ),

नं. १७६ असंयतसम्यग्दृष्टि सौधर्म ऐशान देवों के अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	२	१	४	३	१	३	द्र. २	१	३	१	२	२
सं.	सं.	पुं.			दे.	पुं.	पुं.	वै.मि.	पु.		मति.	असं.	के.द.	का. शु.	भ.	औप.	सं.	आहार	अनाकार
क.	अ.	क.						कर्म.			श्रुत.		विना.	भा.१		क्षा.		साकार	अनाकार
											अव.			तेज.		क्षायो.			

कषायाः, षट् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्येऽपपर्याप्तकाले, पर्याप्तकाले चोत्कृष्टतेजो-जघन्यपद्मलेश्ये, भावेन उत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्ये, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१७७।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने द्रव्यभावाभ्यामुत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्याः, ज्ञातव्याः, शेषाः पूर्ववत्\*१७८।

असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से अपर्याप्तकाल में कापोत और शुक्ल लेश्याएं तथा पर्याप्तकाल में उत्कृष्ट पीत और जघन्य पद्मलेश्या, भाव से उत्कृष्ट तेजोलेश्या और जघन्य पद्मलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सानत्कुमार और माहेन्द्र देवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों के कहने पर उनके द्रव्य-भाव दोनों प्रकार से उत्कृष्ट तेजोलेश्या और जघन्य पद्मलेश्या जानना चाहिए, शेष सभी आलाप पूर्वोक्त ही होते हैं।

उन्हीं सानत्कुमार-माहेन्द्र देवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों में पर्याप्त संबंधी आलाप उनमें से निकालकर कथन करना चाहिए।

अब आगे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक चारों गुणस्थानों के आलाप सौधर्म देवों के आलापों के समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि ऊपर सभी कल्पों में स्त्रीवेद नहीं है अतः एक पुरुषवेद ही कहना चाहिए। उसमें भी ओघालाप कहते समय द्रव्य से कापोत, शुक्ल, उत्कृष्ट तेज और जघन्य पद्म लेश्याएं कहना चाहिए। भाव से उत्कृष्ट तेज

### नं. १७७ सानत्कुमार माहेन्द्र देवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ वै.२ का.१	१ पु.	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. ४ का. शु.ते. प. भा.२ ते.उ. प.ज.	२ भ. अ.	६	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १७८ सानत्कुमार माहेन्द्र देवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ वै.१	१ पु.	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. २ ते.उ. प.ज. भा.२ ते.उ. प.ज.	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

एतेषामेवापर्याप्तानां पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*१७९।

संप्रति मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टिरिति तावच्चतुर्णां गुणस्थानानां सौधर्मवदालापावक्तव्याः। उपरि सर्वत्र स्त्रीवेदो नास्ति, पुरुषवेदश्चैव वक्तव्यः। ओघालापे भण्यमाने द्रव्येण कापोतशुक्लउत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्या वक्तव्याः। भावेन उत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्या वक्तव्याः। पर्याप्तकाले द्रव्यभावाभ्यामुत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्याः। तेषामेवापर्याप्तकाले द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन उत्कृष्टतेजोजघन्यपद्मलेश्या इति चैव विशेषः।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्राणां कल्पवासिदेवानां सनत्कुमारवद्भंगो ज्ञातव्यः। नवरि सामान्येन भण्यमाने द्रव्येण कापोतशुक्लमध्यमपद्मलेश्याः, भावैर्मध्यमाः पद्मलेश्याः। पर्याप्तकाले द्रव्यभावाभ्यां मध्यमा पद्मलेश्या। अपर्याप्तकाले द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन मध्यमा पद्मलेश्या। एतावन्मात्र एव विशेषः।

शतारसहस्रारकल्पदेवानां ब्रह्मलोकवद्भंगः। नवरि सामान्येन भण्यमाने द्रव्येण कापोतशुक्ल-उत्कृष्टपद्म-जघन्यशुक्ललेश्याः भावेन उत्कृष्टपद्म-जघन्यशुक्ललेश्याः। पर्याप्तकाले द्रव्यभावाभ्यां उत्कृष्टपद्म-जघन्यशुक्ललेश्याः। आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-सुदर्शन-अमोघ-सुप्रबुद्ध-यशोधर-सुबुद्ध-सुविशाल-सुमनस-सौमनस-

और जघन्य पद्मलेश्याएं होती हैं। उन्हीं के अपर्याप्तकाल में द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्याएं तथा भाव से उत्कृष्ट तेज और जघन्य पद्मलेश्याएं होती हैं, इतनी विशेषता है।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र कल्पवासी देवों के आलाप सानत्कुमार देवों के आलापों के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि सामान्य से आलाप कहने पर-द्रव्य से कापोत, शुक्ल और मध्यम पद्मलेश्या होती है तथा भाव से केवल मध्यम पद्मलेश्या होती है। उन्हीं देवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य और भाव से मध्यम पद्मलेश्या होती है। उन्हीं के अपर्याप्तकाल में द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्याएं एवं भाव से उत्कृष्ट तेज और जघन्य पद्मलेश्या होती है, इतनी मात्र विशेषता है।

शतार और सहस्रार कल्पवासी देवों के आलाप ब्रह्मलोक स्वर्ग के आलापों के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि उनके सामान्य से आलाप कहने पर उनमें द्रव्य से कापोत, शुक्ल, उत्कृष्ट पद्म और जघन्य शुक्ल लेश्याएं होती हैं तथा भाव से उत्कृष्ट पद्म और जघन्य शुक्ललेश्याएं होती हैं। उन्हीं देवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य और भाव से उत्कृष्ट पद्म और जघन्य शुक्ललेश्याएं होती हैं।

आनत-प्राणत, आरण-अच्युत तथा सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुबुद्ध, सुविशाल, सुमनस्, सौमनस और प्रीतिकर इन चार और नौ इस प्रकार तेरह कल्पों के आलाप शतार-सहस्रार देवों के आलापों के समान समझना चाहिए।

### नं. १७९ सानत्कुमार माहेन्द्र देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अ.	१ सं. अ.	६ कृ.	७	४	१ दे.	१ पं.	१ पं.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	२ का. शु. भा.२ ते.उ. प.ज.	२ भ. अ.	५ औप. क्षा. क्षायो. मि. सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

प्रीतिंकरमित्येतेषां चतुर्णवकल्पानां शतारसहस्रार भंगः। नवरि सामान्येन भण्यमाने द्रव्येण कापोतशुक्लमध्यमशुक्ललेश्याः, भावेन मध्यमा शुक्ललेश्या। पर्याप्तकाले द्रव्यभावाभ्यां मध्यमा शुक्ललेश्या। अपर्याप्तकाले द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्याः, भावेन मध्यमा शुक्ललेश्या।

अर्चि-अर्चिमालिनी-वज्र-वैरोचन-सौम्य-सौम्यरूप-अंकस्फटिक-आदित्य-विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजित-सर्वार्थसिद्धिरिति एतेषां नवानुदिश-पञ्चानुत्तराणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ल-उत्कृष्टशुक्ललेश्याः, भावेनोत्कृष्टा शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>१८०</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि

विशेषता यह है कि सामान्य से आलाप कहने पर—द्रव्य से कापोत, शुक्ल और मध्यम शुक्ल लेश्याएं होती हैं तथा भाव से मध्यम शुक्ललेश्या होती है। उन्हीं देवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य और भाव से मध्यम शुक्ललेश्या होती है। उन्हीं के अपर्याप्तकाल में द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्याएं तथा भाव से मध्यम शुक्ललेश्या होती है।

अर्चि-अर्चिमालिनी, वज्र, वैरोचन, सौम्य, सौम्यरूप, अंक, स्फटिक, आदित्य तथा विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि इन नवअनुदिश एवं पाँच अनुत्तर विमानों के आलाप कहने पर इनमें एक अविरत-समयगृष्टि गुणस्थान, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग, पुरुषवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या, भाव से उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीनों सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक-अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने पर—उनमें एक गुणस्थान ( चतुर्थ ), एक जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दश प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग, पुरुषवेद, चारों कषाय, तीन ज्ञान ( आदि के ),

### नं. १८० नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	१	१	१	११	१	४	३	१	३	द्र. ३	१	३	१	२	२
कुं.	सं.	प.	७		दे.	पुं.	पुं.	म.४	पु.		मति.	असं.	के.द.	का. शु.	भ.	औप.	सं.	आहार	अनाहार
	प.	६						व.४			श्रुत.		विना.	शु.उ.		क्षा.		साकार	अनाकार
	सं.	अ.						वै.२			अव.			भा.		क्षायो.			
	अ.							का.१						श.उ.					

दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां उत्कृष्टा शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे।

केन कारणेन उपशमसम्यक्त्वं नास्ति नवानुदिशपंचानुत्तरेषु ?

उच्यते, तत्र स्थिता देवा न तावदुत्कृष्टदुपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते, तत्र मिथ्यादृष्टीनामभावात् ।

भवतु नाम मिथ्यादृष्टीनामभावः, उपशमसम्यक्त्वमपि तत्र स्थिता देवाः प्रतिपद्यन्ते, कस्तत्र विरोधः इति चेत् ?

न, 'अणंतरं पच्छदो य मिच्छत्तं' इति अनेन प्राकृत सूत्रेण सह विरोधात्। न तत्र स्थितवेदकसम्यग्दृष्टय उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते, मनुष्यगति-व्यतिरिक्तान्यगतिषु वेदकसम्यग्दृष्टीनां जीवानां दर्शनमोहोपशमनहेतु परिणामाभावात् ।

न च वेदकसम्यग्दृष्टित्वं प्रति मनुष्येभ्यो विशेषाभावात् मनुष्याणां च दर्शनमोहोपशमनयोगपरिणामैस्तत्र नियमेन भवितव्यम्। मनुष्यसंयम-उपशम श्रेणिसमारोहण योग्यत्वैर्भेददर्शनात्। उपशमश्रेण्यां कालं कृत्वोपशमसम्यक्त्वेन सह देवेषूपत्तजीवा न उपशमसम्यक्त्वेन सह षट् पर्याप्तीः समानयन्ति, तत्रतनोपशम सम्यक्त्वकालात् षट्पर्याप्तानां

असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से उत्कृष्ट शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं।

प्रश्न—उनके उपशम सम्यक्त्व किस कारण से नहीं होता है?

उत्तर—नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में विद्यमान देव तो औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त होते नहीं हैं क्योंकि वहाँ पर मिथ्यादृष्टि जीवों का अभाव पाया जाता है।

प्रश्न—भले ही वहाँ मिथ्यादृष्टि जीवों का अभाव होवे किन्तु यदि वहाँ रहने वाले देव औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करें तो इसमें क्या विरोध है?

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि औपशमिक सम्यक्त्व के अनन्तर ही औपशमिक सम्यक्त्व का पुनः ग्रहण करना स्वीकार करने पर प्राकृत सूत्र के साथ विरोध आता है। क्योंकि वहाँ स्थित वेदकसम्यग्दृष्टि देव उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त नहीं करते हैं, मनुष्यगति को छोड़कर अन्य गतियों में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के दर्शनमोह के उपशामकरूप परिणामों का अभाव पाया जाता है।

वेदक सम्यग्दृष्टि के प्रति मनुष्यों से विमानवासी देवों के कोई विशेषता नहीं है, जो दर्शनमोहनीय के उपशमनयोग्य परिणाम मनुष्यों के पाये जाते हैं वे नियम से अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देवों में होना चाहिए ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि संयम धारण करने की तथा उपशम श्रेणी के समारोहण आदि की योग्यता मनुष्यों में ही होने के कारण देवों और मनुष्यों में भेद देखा जाता है तथा उपशमश्रेणी में मरण करके औपशमिक सम्यक्त्व के साथ देवों में उत्पन्न होने वाले जीव औपशमिक सम्यक्त्व के साथ छह पर्याप्तियों को समाप्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि अपर्याप्त अवस्था में होने वाले औपशमिक सम्यक्त्व के काल से छहों पर्याप्तियों के समाप्त होने का काल अधिक पाया जाता है, इसलिए अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी देवों के पर्याप्तकाल में औपशमिक सम्यक्त्व नहीं होता है ऐसा सिद्ध हुआ।

इसके पश्चात् आगे के आलापों की अपेक्षा वे संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और



समानकालस्य बहुत्वोपलंभात्। तस्मात् पर्याप्तकाले नैतेषु देवेषु उपशमसम्यक्त्वमस्तीति सिद्धम्।

संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८१।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन उत्कृष्टा शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणो-  
ऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८२।

इतो विस्तारः—चतुर्गतिषु सम्यग्दर्शनमुत्पद्यते तथापि बद्धायुष्कमन्तरेण सम्यग्दृष्टयः केवलं देवगतिष्वेवोत्पद्यन्ते

अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं अनुदिश और अनुत्तरविमानवासी देवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके एक गुणस्थान (चतुर्थ), एक जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग (वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग), पुरुषवेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या, भाव से उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीनों सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक) पाये जाते हैं तथा वे संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

इसी का विस्तार करते हैं—

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति चारों गतियों में होती है फिर भी जो सम्यग्दृष्टि जीव बद्धायुष्क नहीं होते हैं वे देवगति में ही उत्पन्न होते हैं अथवा देवगति से मरकर मनुष्यगति में ही उत्पन्न होते हैं।

नं. १८१ नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पुं.	१ सं. प.	६ प.	१०	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ वै.१	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. १ शु.उ. भा.१ शु.उ.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १८२ नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पुं.	१ सं. अ.	६ पुं.	७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कार्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र. २ का. शु. भा.१ शु.उ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

अथवा देवगतेष्व्युत्वा मनुष्यगतिष्वेव उत्पद्यन्ते। तथा च भावमिथ्यात्वं तु चतुर्गतिष्वेव किंतु द्रव्यमिथ्यात्वं केवलं मनुष्येष्वेव, इदमपि हुंडावसर्पिणीकालदोषेण पञ्चभरतपञ्चैरावतेष्वेव न च षष्ठ्युत्तरैकशतकर्मभूमिषु विदेहेषु भोगभूमिषु कुभोगभूमिषु म्लेच्छखण्डेषु वा।

देवेषु नवग्रैवेयकेभ्य उपरि नवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानेषु केवलं सम्यग्दृष्ट्य एवोत्पद्यन्ते भावलङ्घिनो महामुनयो न च श्रावकाः। श्राविका आर्यिकाश्च यद्यपि षोडशस्वर्गपर्यन्तमेव जायन्ते न चोपरि तथापिताः सम्यक्त्वमाहात्म्येन स्त्रीलिंगं परिहाप्य देवेषूपत्यद्य ततश्च्युत्वा पुरुषपर्यायं संप्राप्य मुनिर्भूत्वा मोक्षमवाप्नुवन्ति।

एतत्सर्वं विज्ञाय भेदाभेदरत्नत्रयप्राप्तये भावना कर्तव्या। यावत्सकलचारित्रं न लभेत तावद्विकलचारित्रमवलम्ब्य सम्यग्दर्शनं स्थिरीकर्तव्यम्।

एवं गतिमार्गणायां पञ्चपञ्चाशदुत्तरैकशतसंद्ध्यो गताः।

गत्यालापानधीत्याहं, चतुर्गतिविनिर्गतं। शुद्धात्मानं सुध्यायामि यथा स्यात्पंचमी गतिः॥१॥

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते विंशतिप्ररूपणाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां गतिमार्गणानाम  
प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार भावमिथ्यात्व तो चारों गतियों में ही होता है किन्तु द्रव्यमिथ्यात्व केवल मनुष्यों में ही पाया जाता है, वह भी हुण्डावसर्पिणी कालदोष से पाँच भरत, पाँच ऐरावत क्षेत्रों में ही होता है, विदेहक्षेत्र की १६० कर्मभूमियों में, भोगभूमियों में, कुभोगभूमियों में अथवा म्लेच्छखंडों में वह द्रव्यमिथ्यात्व नहीं पाया जाता है।

देवों में नव ग्रैवेयक से ऊपर नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरविमानों में केवल सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं जो कि भावलिंगी महामुनि ही होते हैं न कि श्रावक अर्थात् श्रावक उनमें नहीं उत्पन्न होते हैं। श्राविका एवं आर्यिकाएं यद्यपि सोलह स्वर्गों तक ही जाती हैं उसके ऊपर नहीं जाती हैं फिर भी वे सम्यक्त्व के माहात्म्य से स्त्रीलिंग को छेदकर देवगति में उत्पन्न होकर, वहाँ से च्युत हो पुरुषपर्याय को प्राप्त कर मुनिपद धारण कर मोक्षधाम को प्राप्त कर लेते हैं।

यह सब नियम जानकर भेदाभेद रत्नत्रय प्राप्ति की भावना करना चाहिए। जब तक सकलचारित्र को नहीं प्राप्त कर सकते तब तक विकलचारित्र का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन को स्थिर—दृढ़ करना चाहिए।

इस प्रकार गतिमार्गणा में एक सौ पचपन ( १५५ ) संद्ध्यियाँ हुई हैं।

श्लोकार्थ—गति आलापों को ज्ञात करके मैं चतुर्गति से निकलने की एवं शुद्धात्मा के अमृतस्वाद को पीने की इच्छा करता हूँ जिससे पंचम—सिद्धगति की प्राप्ति होवे॥१॥

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथमखण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत  
बीस प्ररूपणाओं के अधिकार में गणिनी ज्ञानमती द्वारा रचित  
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में गतिमार्गणा नाम का  
प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।



## अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

पञ्चेन्द्रियाणि रत्नानि, विषयेभ्यो विरक्तितः।

धर्मक्रियासु लीनानि, फलन्तीष्टार्थसंपदः॥१॥

अथ इन्द्रियमार्गणायां त्रिंशत्संदृष्टयो वक्ष्यन्ते —

इन्द्रियानुवादेनानुवादो मूलौघः। विशेषेण सिद्धानामेकेन्द्रियादिजातिनामकर्मोदयाभावात् ये आलापा न वक्तव्याः सन्ति ताः कथ्यन्ते —

अतीतगुणस्थानानि न सन्ति, अतीत जीवसमासाः, अतीत पर्याप्तयः, अतीतप्राणाः, सिद्धिगतिरप्यस्ति, अनिन्द्रिया अपि सन्ति, अकाया अपि सन्ति, नैव संयता नैवासंयता नैव संयतासंयता अपि न सन्ति, नैव भव्यसिद्धिका नैवा भव्यसिद्धिकाः सन्ति। एते आलापा न कथयितव्याः।

अधुना एकेन्द्रियादिजीवानामालापा उच्यन्ते —

सामान्यैकेन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चत्वारो जीवसमासाः, चतस्रः पर्याप्तयः, चत्वारोऽप्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, पञ्च स्थावरकायाः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः, पृथिवीवनस्पतिजीवानां शरीराण्याश्रित्य एतेषां शरीरस्य षड्लेश्या भवन्ति। भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः,

### अब इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है

श्लोकार्थ — पाँचों इन्द्रियरूपी रत्न जब विषयों से विरक्त होकर धर्मक्रियाओं में लवलीन होती हैं तब इष्ट अर्थरूपी सम्पदा को फलीभूत करती हैं।

अब इन्द्रियमार्गणा में तीस संदृष्टियाँ कही जाएंगी —

इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से आलाप मूल ओघालाप के समान जानना चाहिए। विशेषरूप से सिद्ध जीवों के एकेन्द्रिय आदि जातिनामकर्म के उदय का अभाव होने से उनमें जो आलाप नहीं कहे गये हैं उनको यहाँ बतलाते हैं —

उनके कोई गुणस्थान नहीं होता है इस कारण उनकी अवस्था गुणस्थानातीत कहलाती है। इसी प्रकार वे अतीत जीवसमास, अतीत पर्याप्ति, अतीतप्राण होते हैं तथा उनकी सिद्धगति भी है, वे अनिन्द्रिय भी हैं, अकाय भी हैं, वे न संयत हैं, न असंयत हैं और न संयतासंयत हैं, न भव्यसिद्धिक हैं और न अभव्यसिद्धिक हैं। ये आलाप सिद्धों के नहीं होते हैं।

अब एकेन्द्रिय आदि जीवों के आलाप कहे जाते हैं —

सामान्य से एकेन्द्रिय जीवों के आलाप कहने पर — एक गुणस्थान ( प्रथम ), चार जीवसमास ( बादर पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त ), चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, एकेन्द्रियजाति, पंचस्थावरकाय, तीन योग ( औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान ( कुमति, कुश्रुत ), असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं होती हैं क्योंकि पृथ्वी

आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, चतस्रः पर्याप्तयः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्व्यतिः, एकेन्द्रियजातिः, पञ्च स्थावरकायाः, औदारिककाययोगः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्या, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१८४।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं, द्वौ जीवसमासौ, चतस्रोऽपर्याप्तयः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्व्यतिः, एकेन्द्रियजातिः, पञ्चस्थावरकायाः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण

और वनस्पतिकाधिक जीवों के शरीर की अपेक्षा शरीर की छहों लेश्याएं पाई जाती हैं। भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं होती हैं। आगे वे भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक दोनों प्रकार के होते हैं, उनमें सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा मिथ्यात्व पाया जाता है, वे असंज्ञी होते हैं, आहारक-अनाहारक होते हैं और साकारोपयोगी तथा अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सामान्य एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—उनके एक गुणस्थान, दो जीवसमास, चार पर्याप्तियाँ, चार प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्व्यति, एकेन्द्रिय जाति, पांचों स्थावर काय, औदारिककाययोग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुर्दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सामान्य एकेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, बादर, अपर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त, चार अपर्याप्तियाँ, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्व्यति,

### नं. १८३ सामान्य एकेन्द्रियों के सामान्य आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ बा.प. बा.अ. सू.प. सू.अ.	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ इं.	५ त्रस. विना.	३ औ.२ का.१	१ इं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	द्र. ६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १८४ सामान्य एकेन्द्रियों के पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.प. सू.प.	४ प.	४	४	१ ति.	१ इं.	५ त्रस. विना.	१ औ.	१ इं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	द्र. ६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१८५</sup>।

अधुना विशेषेण — वादरैकेन्द्रियजीवानां सामान्ये नालापे भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, बादरैकेन्द्रियजातिः, पञ्च स्थावरकायाः, त्रयो योगाः — औदारिक-औदारिकमिश्र-कर्मणयोगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१८६</sup>।

एकेन्द्रियजाति, पांचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्र और कर्मण ये दो योग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षु दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या, भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब विशेषरूप से बादर एकेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर उनके एक गुणस्थान, दो जीवसमास, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, बादर एकेन्द्रियजाति, पांचो स्थावर काय, तीन योग ( औदारिक, औदारिक मिश्र, कर्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों होते हैं।

नं. १८५

सामान्य एकेन्द्रियों जीवों के अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.अ. सू.अ.	४ अ.	३	४	१ ति.	१ इं.	५ त्रस. विना.	२ औ. मि. कर्म.	१ इं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. १८६

बादर एकेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.प. बा.अ.	४ प. ४ अ.	४	४	१ ति.	१ बा. ए. इं.	५ त्रस. विना.	३ औ. का. १	१ इं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबंधिन आलापा वक्तव्याः\*१८७।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबंधिन आलापा वक्तव्याः\*१८८।

एवं बादरैकेन्द्रियपर्याप्तानां पर्याप्तनामकर्मोदयानां त्रय आलापा वक्तव्याः। अपर्याप्तनामकर्मोदयानां बादरैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां भण्यमाने बादरैकेन्द्रियापर्याप्तालापभंगवत् कथयितव्याः।

अधुना सूक्ष्माणां आलापाः कथ्यन्ते—

सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, सूक्ष्मैकेन्द्रियजातिः, पञ्च स्थावरकायाः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः

अब बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आलापों में पर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

आगे इन्हीं बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर अपर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाओं का ही कथन जानना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के तीन ( सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ) आलाप कहना चाहिए। अपर्याप्त नामकर्म के उदयवाले बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के वर्णन में बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आलापों के भंग के समान कथन करना चाहिए।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के आलाप कहे जाते हैं—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, दो जीवसमास, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, सूक्ष्म एकेन्द्रियजाति,

नं. १८७

बादर एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ बा.प.	४	४	४	१ ति.	१ बा.प.जति. बा.	५ त्रस. विना.	१ औदा	१ पुं	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	६ द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. १८८

बादर एकेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ बा.अ.	४ अप.	३	४	१ ति.	१ बा.प.जति. बा.प.	५ त्रस. विना.	२ औ. मि. कर्म.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	२ द्र. २ का. ३ शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*१८९</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः<sup>\*१९०</sup>।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः<sup>\*१९१</sup>।

पंच स्थावरकाय, तीन योग ( औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, कर्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, आदि के दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के वर्णन में अपर्याप्तसंबन्धी आलापों को ही छोड़ देना चाहिए।

उन्हीं एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों के अपर्याप्त संबंधी आलापों में पर्याप्तकालीन आलाप छोड़कर केवल अपर्याप्त प्ररूपणाओं को ही लेना चाहिए।

### नं. १८९

### सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सू.प. सू.अ.	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ सू.ए.जाति.	५ त्रस.विना	३ औ.२ का.१	१ नपुं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	द्र. २ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १९०

### सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सू.प.	४	४	४	१ ति.	१ सू.ए.जाति.	५ त्रस.विना	१ औ.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	द्र. १ का. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. १९१

### सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सू.अ.	४ अप.	३	४	१ ति.	१ सू.ए.जाति.	५ त्रस.विना	२ औ. मि. कर्म.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	द्र. २ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

एवं पर्याप्तनामकर्मोदयसहितानां सूक्ष्मैकेन्द्रियनिवृत्यपर्याप्तानां त्रय आलापा वक्तव्याः। सूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां अपि अपर्याप्तनामकर्मोदयसहितानां एकोऽपर्याप्तालापो वक्तव्यः।

एवमेकेन्द्रियाणामालापाः समाप्ताः।

द्वीन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, पञ्च पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, द्वीन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिक-औदारिकमिश्र-कर्मण-असत्यमृषावचनयोगा इति चत्वारो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुदर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्या, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका, अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१९२।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*१९३।

इसी प्रकार से पर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित सूक्ष्म एकेन्द्रियनिवृत्यपर्याप्त जीवों के तीन आलाप ( सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ) जानना चाहिए। अपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के भी केवल एक अपर्याप्त संबंधी आलाप का कथन करना चाहिए।

इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों के आलाप समाप्त हुए।

अब दो इंद्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दो जीवसमास, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, छह प्राण, चार प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यञ्च गति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चार योग ( औदारिक, औदारिक मिश्र, कर्मण और असत्यमृषावचनयोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं दो इंद्रिय पर्याप्तक जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों का ही कथन करना चाहिए।

नं. १९२

द्वीन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ द्वी.प. द्वी.अ.	५ प. अ.	६ ४	४	१ ति.	१ द्वि. चि. कृष्.	५ पुं.	४ औ.२ का.१ व.१ अन.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. १९३

द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ द्वी.प.	५	६	४	१ ति.	१ द्वि. चि. कृष्.	१ पुं.	२ व.१ अनु. औ.१	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः कथयितव्याः\*१९४।

एवं द्वीन्द्रियपर्याप्तनामकर्मोदयसहितानां द्वीन्द्रियाणां पर्याप्तानां त्रय आलापा वक्तव्याः। द्वीन्द्रियलब्धपर्याप्तनामकर्मोदयसहितानां एक आलापो वक्तव्यः।

त्रीन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, त्रीन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुदर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१९५।

उन्हीं दो इन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के वर्णन में अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं को ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार दो इन्द्रिय पर्याप्तनामकर्म के उदय से सहित द्वीन्द्रियपर्याप्तक जीवों के तीन आलाप ( सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ) कहना चाहिए। द्वीन्द्रियलब्धपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित जीवों के एक आलाप ही जानना चाहिए।

तीन इन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, दो जीवसमास, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, पाँच प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति, त्रीन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चार योग, नपुंसक वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ और भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

## नं. १९४

### द्वीन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	क.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ द्वी.अ.	५ अ.	४	४	१ ति.	१ इं. चि. फलं	१ पुं. फलं	२ औ. मि. कर्म.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अचक्षु.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## नं. १९५

### त्रीन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ त्री.प. त्री.अ.	५ प. ५ अ.	७ ५	४	१ ति.	१ इं. चि. फलं	१ पुं. फलं	४ व. १ अनु. औ. २ का. १	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ अच.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*१९६।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा कथयितव्याः\*१९७।

एवं त्रीन्द्रियनिवृत्त्यपर्याप्तानां पर्याप्तनामकर्मोदयानां त्रय आलापाः वक्तव्याः। लब्ध्यपर्याप्तानामपि अपर्याप्तनामकर्मोदयानामेक आलापो वक्तव्यः।

चतुरिन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, पंच पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, अष्टौ प्राणाः षट् प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, चतुरिन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड्लेश्याः भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः,

उन्हीं त्रीन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आलापों में पर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाएं ही कहनी चाहिए।

उन्हीं त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के आलापों में अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्तनामकर्म के उदय वाले तीन इन्द्रिय निवृत्त्यपर्याप्तक जीवों के तीन आलाप ( सामान्य, पर्याप्तक और अपर्याप्तक ) कहना चाहिए। अपर्याप्त नामकर्म के उदय सहित लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के एक आलाप जानना चाहिए।

अब चार इन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, दो जीवसमास, पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, आठ प्राण, छह प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, चतुरिन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चार योग ( अनुभय वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिक मिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, आदि के दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु-अचक्षु ), द्रव्य से छहों

## नं. १९६

### त्रीन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ त्री.प.	५	७	४	१ ति.	१ पृष्ठि. क्तं.	१ मू. अनु. औ.१	२ व.१ नपुं.	१	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

## नं. १९७

### त्रीन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ त्री.अ.	५ अ.	५	४	१ ति.	१ पृष्ठि. क्तं.	१ मू. औ. मि. कार्म.	२ औ. नपुं.	१	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ अच.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*१९८।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*१९९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्त संबंधिन आलापा वक्तव्याः\*२००।

एवं चतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तनामकर्मोदयानां त्रय आलापा वक्तव्याः। चतुरिन्द्रियाणामपर्याप्तनामकर्मोदयानामेक आलापो वक्तव्यः।

लेश्याएं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं चार इन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के वर्णन में पर्याप्तसंबन्धी आलापों को ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं चार इन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के वर्णन में अपर्याप्त संबंधी आलापों को ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार से पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले चार इन्द्रिय जीवों के सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त ये तीन आलाप कहना चाहिए। अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले लब्ध्यपर्याप्त चतुरिन्द्रिय

### नं. १९८

### चतुरिन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ च.प. च.अ.	५ प. अ.	८ प. अ.	४ प. अ.	१ ति.	१ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	४ व.१ अनु. औ.२ का.१	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. १९९

### चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ च.प.	५	८	४	१ ति.	१ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	२ व.१ अनु. औ.१	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. २००

### चतुरिन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ च.अ.	५ अ.	६	४	१ ति.	१ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	२ औ. मि. कर्म.	१ नपुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

पञ्चेन्द्रियाणां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, चत्वारो जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाश्चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ एकः प्राणः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञा अपि, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽपि अस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽपि अस्ति, अष्टौ ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः असंज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२०१।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः कथयितव्याः\*२०२।

जीवों के एक अपर्याप्त संबंधी आलाप जानना चाहिए।

अब पञ्चेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—चौदह गुणस्थान, संज्ञी पर्याप्त, संज्ञी अपर्याप्त, असंज्ञी पर्याप्त, असंज्ञी अपर्याप्त ये चार जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ-छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ-पाँच अपर्याप्तियाँ, दशप्राण (संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय के), सात प्राण (संज्ञी अपर्याप्त पंचेन्द्रिय के), नौ प्राण (असंज्ञी पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय के), सात प्राण (असंज्ञी अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय के), चार प्राण (सयोगकेवली की अपेक्षा), दो प्राण (केवली समुदघात की अपर्याप्त अवस्था में), एक प्राण (अयोगकेवली गुणस्थान में केवल एक आयु प्राण होता है), चारों संज्ञाएं, तथा क्षीणसंज्ञा स्थान भी है। चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग तथा अयोगस्थान भी है। तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है। आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है। भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान होता है। आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी

नं. २०१

पंचेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१०,७ ९,७ ४,२ १	४ सं. क्षीणसं.	४ प.	१ प.	१ सं.	१५ अयोग.	३ अप.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.६ अलेश्य.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. २०२

पंचेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	२ सं.प. अ.प.	६ ५	१० ९ ४स. १अ.	४ सं. क्षीणसं.	४ प.	१ प.	१ सं.	११म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१ अयो.	३ अप.	४ अकषा.	८	७	४	द्र. ६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः प्ररूपयितव्याः\*२०३।

पञ्चेन्द्रियमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चत्वारो जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्चपर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२०४।

होते हैं तथा इन दोनों उपयोगों से युगपत्—समन्वित भी होते हैं।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर केवल पर्याप्तप्ररूपणाएं ही कहना चाहिए।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के आलापों में अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं का ही प्ररूपण करना चाहिए।

पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, चार जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नव प्राण और सात प्राण, चारों संज्ञा, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, तेरह योग (आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, चक्षु-अचक्षु ये दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. २०३

पंचेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५	२	६	७	४	४	१	१	४	३	४	६	४	४	द्र. २	२	५	२	२	२
मि.	स.अ.	अ.	७	४	४	१	१	४	३	४	विभं.	असं.		का.	भ.	मि.	सं.	आहार	अनाहार
सा.	असं.	५		४	४	१	१	४	३	४	मनः	सामा.		शु.	अ.	सा.	असं.	साकार	अनाकार
अ.	अ.	अ.		४	४	१	१	४	३	४	विना.	छेदो.		भा.६	आ.	औप.	अनु.	साकार	अनाकार
प्र.				४	४	१	१	४	३	४		यथा.				क्षा.			
स.				४	४	१	१	४	३	४						क्षायो.			

नं. २०४

पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	४	६प.	१०	४	४	१	१	१३	३	४	३	१	२	द्र.६	२	१	२	२	२
मि.	सं.प.	६अ.	७	४	४	१	१	१३	३	४	३	अस.	चक्षु.	भा.६	भ.	मि.	सं.	आहार	अनाहार
	सं.अ.	५प.	९			१	१	१३	३	४	३	अस.	अच.		अ.	मि.	असं.	साकार	अनाकार
	असं.प.	५अ.	७			१	१	१३	३	४	३	अस.	अच.		अ.	मि.	असं.	साकार	अनाकार
	असं.अ.					१	१	१३	३	४	३	अस.	अच.		अ.	मि.	असं.	साकार	अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानमित्यादयः पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*२०५।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*२०६।

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावदयोगिकेवलीति मूलौघभंगः कथयितव्यः।

एवं संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तनामकर्मोदयानां मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदयोगिकेवलीति ज्ञात्वा सकलालापा वक्तव्याः।

असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, नव प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्वृत्तिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो योगाः, त्रयोवेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने,

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलापों में एक गुणस्थान को आदि करके सभी पर्याप्तकालसंबन्धी प्ररूपणाएं ग्रहण करनी चाहिए।

उन्हीं पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलापों में अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगकेवलीपर्यन्त जीवों के आलाप मूल ओघालाप के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगकेवली पर्यन्त जीवों के समस्त आलाप जानकर उनका यथायोग्य कथन करना चाहिए।

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप कहने पर — एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दो जीवसमास ( असंज्ञी पर्याप्त-असंज्ञी अपर्याप्त ), पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, नौ प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्वृत्ति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चार योग ( अनुभय वचनयोग,

नं. २०५

पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. असं. प.	६ ५	१० ९	४	४	१ १	१ १	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ १	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ ६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २०६

पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ. असं. अ.	६ अ. ५ अ.	७ ७	४	४	१ १	१ १	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ १	२ चक्षु. अच.	२ २	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*२०७</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, पञ्च पर्याप्तयः, नव प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*२०८</sup>।

औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर — एक गुणस्थान, एक जीवसमास (असंज्ञी पर्याप्त), पाँच पर्याप्तियाँ, नव प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, दो योग (अनुभय वचनयोग, औदारिक काययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. २०७

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ असं.प. असं.अ.	५प. ५अ.	९ ७	४	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	४ व.१ अनु. औ.२ का.१	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २०८

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ असं.प.	५	९	४	१ ति.	१ पुं.	१ पुं.	२ व.१ अनु. औ.१	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ पुं.	२ चक्षु. अच.	६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं इत्यादि-अपर्याप्त-संबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*२०९।

संप्रति पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानां अपर्याप्तनामकर्मोदयानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिरित्यगतीति द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनो-ऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२१०।

उन्हीं असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के वर्णन में एक गुणस्थान इत्यादि सभी अपर्याप्त संबंधी आलापों का कथन करना चाहिए।

अब अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ और पाँच अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति और तिर्यचगति ये दो गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, दो योग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अब अपर्याप्त नामकर्म के उदय से सहित संज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, दो

नं. २०९

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ असं. अ.	५ ऋ	७	४	१ ति.	१ णि	१ ऋ	२ औ.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २१०

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ. असं.अ. अ.	६ अ. ५	७	४	२ म. ति.	१ णि	१ ऋ	२ औ.मि. कर्म.	१ णि	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



संज्ञि पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानामपर्याप्तनामकर्मोदयानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२११।

असंज्ञिपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तानामपर्याप्तनामकर्मोदयानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२१२।

गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दो योग ( औदारिकमिश्र और कार्मण ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलापों में— एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक जीवसमास ( असंज्ञी अपर्याप्त ), पाँच अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, दो योग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

## नं. २११

### संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ म. ति.	१ णं.	१ णं.	२ औ.मि. कार्म.	१ णं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ णं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## नं. २१२

### असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ असं. अ.	५ अ.	७	४	१ ति.	१ णं.	१ णं.	२ औ.मि. कार्म.	१ णं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ णं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

अनिन्द्रियाणां सिद्धगतिवद्भंगः।

एवं इन्द्रियमार्गणाधिकारे त्रिंशत्कोष्ठकानि कथितानि।

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते विंशतिप्ररूपणाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां-इन्द्रियमार्गणानाम् द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अनिन्द्रिय जीवों के आलाप सिद्धों के आलापों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार इन्द्रिय मार्गणा अधिकार में तीस कोष्ठक कहे गये हैं।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के  
अंतर्गत बीस प्ररूपणाओं के अधिकार में गणिनी ज्ञानमती रचित  
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में इन्द्रियमार्गणा नामका  
द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।



# अथ कायमार्गणाधिकारः

## मंगलाचरणम्!

अस्थिरेण स्थिरोऽप्यात्मा, मलिनेनैव निर्मलः।

निर्गुणेनापिकायेन, सगुणः किं न प्राप्यते॥१॥

अथ कायमार्गणायां एकोनत्रिंशत् संदृष्टयः कथयिष्यन्ते —

कायानुवादेन ओघालापे भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, द्वौ वा त्रयो वा, चत्वारो वा षड् वा, षड् वा नव वा, अष्टौ वा द्वादश वा, दश वा पञ्चदश वा, द्वादश वा अष्टादश वा, चतुर्दश वा एकविंशतिर्वा, षोडश वा चतुर्विंशतिर्वा, अष्टादश वा सप्तविंशतिर्वा, विंशतिर्वा त्रिंशद् वा, द्वाविंशतिर्वा त्रयस्त्रिंशद् वा, चतुर्विंशतिर्वा षट्त्रिंशद् वा, षड्विंशतिर्वा एकोनचत्वारिंशद् वा, अष्टाविंशतिर्वा द्विचत्वारिंशद्वा, त्रिंशद्वा पञ्चचत्वारिंशद् वा, द्वात्रिंशद् वा अष्टचत्वारिंशद् वा चतुर्त्रिंशद् वा एकपञ्चाशद् वा षट् त्रिंशद् वा चतुःपञ्चाशद् वा अष्टत्रिंशद् वा सप्तपञ्चाशद् वा जीवसमासाः। द्वौ

## अब कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है।

### मंगलाचरण

श्लोकार्थ — अस्थिर काय — शरीर के द्वारा स्थिर आत्मा, मलिन शरीर से निर्मल आत्मा एवं निर्गुण शरीर से सगुण आत्मा क्या प्राप्त नहीं हो सकती है? अर्थात् अनन्तगुणवान् आत्मा की प्राप्ति इसी शरीर से होती है अतः मनुष्य जीवन में उसकी प्राप्ति का सतत प्रयास करना चाहिए॥१॥

अब कायमार्गणा में उनतीस संदृष्टियाँ ( आलाप कोष्ठक ) कहेंगे —

कायमार्गणा के अनुवाद से ओघालाप कहने पर — चौदहों गुणस्थान, दो अथवा तीन, चार अथवा छह, छह अथवा नौ, आठ अथवा बारह, दश अथवा पन्द्रह, बारह अथवा अठारह, चौदह अथवा इक्कीस, सोलह अथवा चौबीस, अठारह अथवा सत्ताईस, बीस अथवा तीस, बाईस अथवा तैंतीस, चौबीस अथवा छत्तीस, छब्बीस अथवा उनतालीस, अट्ठाईस अथवा बयालीस, तीस अथवा पैतालीस, बत्तीस अथवा अड़तीस, चौंतीस अथवा इक्यावन, छत्तीस अथवा चौव्वन, अड़तीस अथवा सत्तावन जीवसमास होते हैं।

दो जीवसमास होते हैं ऐसा कहने पर सभी जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं अतः दो जीवसमास कहे गये हैं।

तीन जीवसमास होते हैं ऐसा कहने पर निर्वृत्तिपर्याप्तक, निर्वृत्त्यपर्याप्तक, लब्ध्यपर्याप्तक इस प्रकार तीन जीवसमासों का अस्तित्व पाया जाता है।

चार जीवसमास होते हैं ऐसा कहने पर त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं — पर्याप्तक और अपर्याप्तक। स्थावरकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं — पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये कुल चार जीवसमास कहे गये हैं। छह जीवसमास होते हैं ऐसा कहने पर त्रस और स्थावर के दो निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, दो निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और दो लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार छह जीवसमास हैं। अथवा स्थावरकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं — पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं — सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय। सकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं — पर्याप्तक और अपर्याप्तक। विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं

जीवसमासौ इति भणिते पर्याप्ता अपर्याप्ता इति सर्वे जीवा द्विविधा भवन्ति, अतः द्वौ जीवसमासौ उच्येते। त्रयो जीवसमासा इति प्रोक्ते निवृत्तिपर्याप्ता निवृत्तपर्याप्ता लब्ध्यपर्याप्ता इति त्रयो जीवसमासा भवन्ति। चत्वारो वेति उक्ते त्रसकायिका द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ता, स्थावरकायिका द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ता इति चत्वारो जीवसमासाः।

षड् वेति उक्ते द्वौ निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासौ द्वौ निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासौ द्वौ लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासौ एवं षड् जीवसमासाः। अथवा स्थावरकायिकौ द्विविधौ पर्याप्ता अपर्याप्तौ त्रसकायिकौ द्विविधौ सकलेन्द्रिय-विकलेन्द्रियौ, सकलेन्द्रियौ द्विविधौ, पर्याप्तापर्याप्तौ-विकलेन्द्रियौ द्विविधौ, पर्याप्तापर्याप्तौ, इति षड्जीवसमासाः।

त्रयो निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः त्रयो निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासाः त्रयो लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवं नव जीवसमासा भवन्ति।

स्थावरकायिकौ द्विविधौ बादरसूक्ष्मौ, बादरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, सूक्ष्मौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रसकायिकौ द्विविधौ सकलेन्द्रियविकलेन्द्रियौ इति, सकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ विकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ एवमष्टौ जीवसमासाः।

चत्वारो निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः चत्वारो निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासाः चत्वारो लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवं द्वादश जीवसमासा भवन्ति। स्थावरकायिकौ द्विविधौ बादरसूक्ष्मौ, बादरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, सूक्ष्मकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रसकायिकौ द्विविधौ पञ्चेन्द्रिया-पञ्चेन्द्रियौ, पञ्चेन्द्रियौ द्विविधौ संज्ञिनऽसंज्ञिनश्च, संज्ञिनौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, असंज्ञिनौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, अपञ्चेन्द्रियौ-विकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ एवं दश जीवसमासाः भवन्ति।

हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक इस प्रकार छह जीवसमासों का अस्तित्व समझना चाहिए।

निवृत्तिपर्याप्तक के तीन ( एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय ) जीवसमास, निवृत्त्यपर्याप्तक के तीन जीवसमास एवं लब्ध्यपर्याप्तक के तीन इस प्रकार नौ जीवसमास होते हैं। स्थावरकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—बादर और सूक्ष्म। बादर जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। सूक्ष्म जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय। सकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इस प्रकार आठ जीवसमास होते हैं।

चार निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, चार निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और चार लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास, इस प्रकार बारह जीवसमास होते हैं। स्थावरकायिक के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद हैं, बादर के पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद हैं, सूक्ष्म के भी पर्याप्त और अपर्याप्त से दो भेद हैं। त्रसकायिक जीव के दो भेद होते हैं—पञ्चेन्द्रिय और अपञ्चेन्द्रिय। पञ्चेन्द्रिय के दो भेद हैं—संज्ञी और असंज्ञी, संज्ञी दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। अपञ्चेन्द्रिय अर्थात् विकलेन्द्रिय के दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इस प्रकार दश जीवसमास होते हैं।

पाँच निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, पाँच निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास, पाँच लब्ध्यपर्याप्तक के, इस प्रकार पन्द्रह जीवसमास होते हैं।

पञ्च निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः पञ्च निवृत्यपर्याप्तजीवसमासाः पञ्च लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवं पञ्चदश जीवसमासा भवन्ति। पृथिवीकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, अप्कायिकौ पर्याप्तापर्याप्तौ तैजस्कायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वायुकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वनस्पतिकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रसकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ एवं द्वादश जीवसमासा भवन्ति।

षट् निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः षट् निवृत्यपर्याप्तजीवसमासाः षट् लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवमष्टादश जीवसमासा भवन्ति।

एकेन्द्रियौ द्विविधौ बादरसूक्ष्मौ, बादरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, सूक्ष्मौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, द्वीन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रीन्द्रियो द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, चतुरिन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, पञ्चेन्द्रियौ द्विविधौ संज्ञ्यसंज्ञिनौ, संज्ञिनौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, असंज्ञिनौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ इत्येवं चतुर्दश जीवसमासा भवन्ति। सप्त निवृत्तिपर्याप्ताः सप्त निवृत्यपर्याप्ताः सप्त लब्ध्यपर्याप्ता एतान् सर्वान् गृहीत्वा एकविंशतिः जीवसमासा भवन्ति।

पृथिवीकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, अप्कायिकौ पर्याप्तापर्याप्तौ, तैजस्कायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वायुकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वनस्पतिकायिकौ द्विविधौ प्रत्येकशरीरसाधारणशरीरौ, प्रत्येक शरीरौ द्विविधौ

पृथिवीकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तैजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार बारह जीवसमास होते हैं।

छहों निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, छहों निवृत्यपर्याप्तक जीवसमास और छहों लब्ध्यपर्याप्तक के मिलकर अठारह जीवसमास होते हैं।

एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—बादर और सूक्ष्म। बादर एकेन्द्रिय के दो भेद होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। सूक्ष्म के भी दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। द्वीन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तीन इन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चार इन्द्रिय जीव के दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। पञ्चेन्द्रिय जीव के दो भेद हैं—संज्ञिक और असंज्ञिक। संज्ञिक जीव के दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। असंज्ञिक जीव के दो भेद हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार चौदह जीवसमास होते हैं।

बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन सात प्रकार के जीवों की अपेक्षा सात निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, सात निवृत्यपर्याप्तक जीवसमास और सात लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास ये सब मिलकर इक्कीस जीवसमास होते हैं।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। अप्कायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तैजस्कायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वायुकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर। प्रत्येक शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। साधारण शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

पर्याप्तापर्याप्तौ, साधारणशरीरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रसकायिकौ द्विविधौ सकलेन्द्रियविकलेन्द्रियौ चेति, सकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, विकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ चेत्येवं षोडश जीवसमासा भवन्ति। निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासा अष्ट, निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासा अप्यष्ट, अष्टानामपर्याप्तजीवसमासानां मध्येऽष्ट लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा भवन्त्येवं चतुर्विंशतिः जीवसमासाः।

पृथिवीकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, अप्कायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, तेजस्कायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वायुकायिकौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, वनस्पतिकायिकौ द्विविधौ प्रत्येकशरीरसाधारणशरीरौ, प्रत्येकशरीरौ द्विविधौ बादरनिगोदप्रतिष्ठित-बादरनिगोदप्रतिष्ठितौ चेति, बादरनिगोदप्रतिष्ठितौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, बादरनिगोद-प्रतिष्ठितव्यतिरिक्तप्रत्येकशरीरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, साधारणशरीरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, त्रसकायिकौ द्विविधौ विकलेन्द्रिय-सकलेन्द्रियौ चेति, सकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, विकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ एवमष्टादशजीवसमासा भवन्ति। नव निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासा, नव निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासा नव लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एतान् सर्वानपि गृहीत्वा सप्तविंशतिजीवसमासा भवन्ति।

त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय। सकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार सोलह जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा आठ निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, आठ निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और आठ अपर्याप्तक जीवसमासों में आठ लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। जलकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। अग्निकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वायुकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर। प्रत्येक शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, बादर निगोद प्रतिष्ठित और बादर निगोद अप्रतिष्ठित। बादर निगोद प्रतिष्ठित जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। बादर निगोद प्रतिष्ठित से भिन्न अर्थात् बादरनिगोद अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। साधारण शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय। सकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार ये अठारह जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, साधारणवनस्पतिकायिक, सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय इन नौ प्रकार के जीवों की अपेक्षा नौ निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, नौ निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और नौ लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास ये सब मिलाकर सत्तावीस जीवसमास होते हैं।

पूर्व में कहे गये अठारह जीवसमासों में से साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास निकालकर साधारण वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते

पूर्वोक्ताष्टादशजीवसमासाभ्यन्तरान् साधारणवनस्पतिपर्याप्तापर्याप्तजीवसमासानपनीय साधारणवनस्पतिकायिकौ द्विविधौ नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदौ चेति। नित्यनिगोदौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ चतुर्गतिनिगोदौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ चेत्येतान् चतुर्जीवसमासान् प्रक्षिप्य विंशतिर्जीवसमासा भवन्ति। दश निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासा, दश निवृत्यपर्याप्तजीवसमासा, दश लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एते त्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति।

पृथिवीकायिका अष्कायिका तेजस्कायिका वायुकायिका वनस्पतिकायिका एते सर्वे द्विविधा बादराः सूक्ष्मा इति, सर्वे बादराः सर्वे च सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ता इति चतुर्विधा भवन्ति, त्रसकायिका द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्चेति एवमेते द्वाविंशतिः जीवसमासाः। निवृत्तिपर्याप्ताजीवसमासा एकादश, निवृत्यपर्याप्तजीवसमासा एकादश, लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एकादश एवं त्रयस्त्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति।

द्वाविंशतिजीवसमासानामभ्यन्तरान् त्रसपर्याप्तापर्याप्तानपनीय त्रसकायिकौ द्विविधौ भवतः समनस्कामनस्कौ चेति, समनस्कौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, अमनस्कौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, एतेषां चतुर्णां प्रक्षिप्ते चतुर्विंशतिर्जीवसमासा भवन्ति।

हैं, नित्यनिगोद और चतुर्गतिनिगोद। नित्यनिगोद दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। चतुर्गतिनिगोद दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। ये चार जीवसमास मिलाने पर बीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सप्रतिष्ठित—प्रत्येक वनस्पतिकायिक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय इन दश प्रकार के जीवों की अपेक्षा दश निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, दश निवृत्यपर्याप्तक जीवसमास और दश लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास ये सब मिलाकर तीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक ये पाँचों काय के जीव दो-दो प्रकार के होते हैं, बादर और सूक्ष्म। ये सभी बादर और सभी सूक्ष्म जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक एक-एक काय के जीव चार-चार प्रकार के हो जाते हैं। त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस प्रकार ये सब मिलाकर बावीस जीवसमास हो जाते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेद होते हैं और त्रसकायिक इन ग्यारह प्रकार के जीवों की अपेक्षा ग्यारह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, ग्यारह निवृत्यपर्याप्तक जीवसमास और ग्यारह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार सब मिलाकर तेतीस जीवसमास होते हैं।

पूर्वोक्त बावीस जीवसमासों में से त्रसकायिक जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास निकालकर त्रसकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, समनस्क (संज्ञी) और अमनस्क (असंज्ञी)। समनस्क जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक, अपर्याप्तक। अमनस्क जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। ये चार जीवसमास मिलाने पर चौबीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के बादर और सूक्ष्म के भेद से दशभेद और समनस्क त्रसकायिक तथा अमनस्क त्रसकायिक इन बारह प्रकार के जीवों की अपेक्षा बारह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, बारह निवृत्यपर्याप्तक

द्वादश निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासा, द्वादश निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासा द्वादश लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवमेते षट्त्रिंशद्जीवसमासा भवन्ति।

पूर्वोक्तचतुर्विंशतीनां मध्येऽमनस्कानां पर्याप्तापर्याप्तद्विजीवसमासनपनीयामनस्कौ द्विविधौ सकलेन्द्रियविकलेन्द्रियौ चेति, सकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, विकलेन्द्रियौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ चेति एतान् चतुरः प्रक्षिप्ते षड्विंशतिर्जीवसमासा भवन्ति। त्रयोदश निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः त्रयोदश निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासा स्त्रयोदश लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवमेतान् सर्वान् गृहीत्वा एकोनचत्वारिंशद् जीवसमासा भवन्ति। षड्विंशतीनां मध्ये वनस्पतिकायिकानां चतुर्जीवसमासनपनीय वनस्पतिकायिकौ द्विविधौ प्रत्येकशरीरसाधारणशरीरौ, प्रत्येकशरीरौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ, साधारणशरीरौ द्विविधौ बादरसूक्ष्मौ, तौ द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ चेति एतान् षड् जीवसमासान् प्रक्षिप्तेऽष्टविंशतिजीवसमासा भवन्ति। चतुर्दश निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः चतुर्दश निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासाः चतुर्दश लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा एवमेते द्विचत्वारिंशद् जीवसमासाः।

अष्टाविंशतीनां मध्ये प्रत्येकशरीरपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ अपनीय प्रत्येक शरीरौ द्विविधौ

जीवसमास और बारह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास ये सब मिलाकर छत्तीस जीवसमास होते हैं।

पूर्वोक्त चौबीस जीवसमासों में से अमनस्क जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीव-समास निकालकर अमनस्क जीव दो प्रकार के होते हैं, सकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय। सकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। विकलेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन चार जीवसमासों को मिला देने पर छब्बीस जीवसमास होते हैं।

पाँचों स्थावरकायिक जीवों के बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेद तथा विकलेन्द्रिय, अमनस्क पंचेन्द्रिय और समनस्क पंचेन्द्रिय इन तेरह प्रकार के जीवों की अपेक्षा तेरह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, तेरह निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और तेरह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार ये सब मिलाकर उनतालीस जीवसमास होते हैं।

छब्बीस जीवसमासों में से वनस्पतिकायिक जीवों के चार जीवसमास निकालकर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, प्रत्येक शरीर और साधारण शरीर। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं पर्याप्तक और अपर्याप्तक। साधारण शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं बादर और सूक्ष्म। ये दोनों प्रकार के जीव भी दो-दो प्रकार के होते हैं पर्याप्तक और अपर्याप्तक। ये छह जीवसमास मिला देने पर अट्ठावीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेद, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, विकलेन्द्रिय, समनस्कपंचेन्द्रिय और अमनस्कपंचेन्द्रिय इन चौदहों प्रकार के जीवों की अपेक्षा चौदह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, चौदह निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और चौदह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार ये सब मिलाकर ब्यालीस जीवसमास होते हैं।

पूर्वोक्त अट्ठावीस जीवसमासों में से प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास निकालकर प्रत्येक शरीर जीव दो प्रकार के होते हैं, बादर निगोदयोनि और बादर निगोदअयोनि। वे भी सब दो-दो प्रकार के होते हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इस



बादरनिगोदयोनिनस्तेषामयोनिनश्चेति, तावपि सर्वे द्विविधौ पर्याप्तापर्याप्तौ इत्येतान् चतुरो भंगान् प्रक्षिप्ते त्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति। निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः पञ्चदश, निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासाः पञ्चदश, लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासाः पञ्चदश एवमेते सर्वेऽपि पञ्चचत्वारिंशद् जीवसमासा भवन्ति।

पृथिव्यप्-तेजोवायुसाधारणशरीरवनस्पतिकायिकाः प्रत्येकं प्रत्येकं बादरसूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्विधा भवन्ति, प्रत्येकशरीरा द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिय-असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय-संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः प्रत्येकं प्रत्येकं पर्याप्ता अपर्याप्ता द्विविधा भवन्ति एते सर्वे मिलिताः द्वात्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति। षोडश निवृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः षोडश-निवृत्त्यपर्याप्तजीवसमासाः षोडश लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासाश्च मेलितेऽष्टचत्वारिंशद् जीवसमासा भवन्ति।

द्वात्रिंशद् जीवसमासेषु प्रत्येकशरीरद्विजीवसमासानपनीय प्रत्येकशरीरौ द्विविधौ बादरनिगोदयोनिनस्तेषामयोनिनश्चेति, तौ च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधौ एतान् चतुरःप्रक्षिप्ते चतुस्त्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति। सप्तदश निवृत्तिपर्याप्ताः

प्रकार ये चार भंग मिला देने पर तीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण शरीर इनके बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेद तथा सप्रतिष्ठित-प्रत्येकवनस्पति और अप्रतिष्ठित-प्रत्येक वनस्पति, विकलेन्द्रिय, अमनस्कपंचेन्द्रिय और समनस्क पंचेन्द्रिय इस प्रकार इन पन्द्रह प्रकार के जीवों की अपेक्षा पन्द्रह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, पन्द्रह निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और पन्द्रह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार ये सब मिलाकर पैतालीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारणशरीर वनस्पतिकायिक ये पाँच प्रकार के जीव पृथक्-पृथक् बादर, सूक्ष्म और उनमें भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक इस प्रकार चार-चार प्रकार के होते हैं। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये छहों प्रत्येक-प्रत्येक पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। इस प्रकार ये सब मिलाने पर बत्तीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारणशरीर-वनस्पतिकायिक जीवों के बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेदरूप तथा प्रत्येक शरीर-वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा सोलह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, सोलह निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और सोलह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास इस प्रकार ये सब मिला देने पर अड़तालीस जीवसमास होते हैं।

पूर्वोक्त बत्तीस जीवसमासों में से प्रत्येक शरीर संबंधी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास निकालकर प्रत्येक शरीरवनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं, बादरनिगोदयोनिक (प्रतिष्ठित) और बादरनिगोद अप्रतिष्ठित। वे दोनों पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। ये चार जीवसमास मिला देने पर चौंतीस जीवसमास होते हैं। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारणवनस्पतिकायिक के बादर और सूक्ष्म के भेद से दश भेद रूप तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक-वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिकपंचेन्द्रिय और संज्ञिक पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा सत्रह निवृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, सत्रह निवृत्त्यपर्याप्तक जीवसमास और सत्रह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास

सप्तदश निर्वृत्यपर्याप्ताः सप्तदश लब्ध्यपर्याप्ता एते सर्वे एकपञ्चाशद् जीवसमासा भवन्ति।

पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदा बादराः सूक्ष्माश्च पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विविधा भवन्ति, प्रत्येकवनस्पति-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञि-संज्ञिपञ्चेन्द्रिय-पर्याप्तापर्याप्त भेदेन एतेऽपि प्रत्येकं द्विविधा भवन्ति एते सर्वेऽपि षट्त्रिंशद् जीवसमासा भवन्ति। अष्टादश निर्वृत्तिपर्याप्तजीवसमासाः तावन्तश्चैव निर्वृत्यपर्याप्तजीवसमासा अपि अष्टादश, लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा अपि अष्टादश सर्वे एते एकत्रीकृते चतुःपञ्चाशद् जीवसमासाः।

पुनः प्रत्येकशरीरस्य द्वौ जीवसमासौ षट् त्रिंशद्जीवसमासेष्वपनीय प्रत्येकशरीर बादरनिगोद प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित-पर्याप्तापर्याप्तसंज्ञितचतुर्षु जीवसमासेषु प्रक्षिप्तेषु अष्टत्रिंशद्जीवसमासा भवन्ति। अत्र एकोनविंशतिः निर्वृत्तिपर्याप्तजीवसमासास्तावन्तश्चैव निर्वृत्यपर्याप्तजीवसमासा भवन्ति, लब्ध्यपर्याप्तजीवसमासा अपि तावन्तश्चैव सर्वे एते सप्तपञ्चाशद् जीवसमासा भवन्ति। एते जीवसमास भेदाः सर्वेधेषु वक्तव्याः।

ये सब मिलाकर इकावन जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद-साधारणवनस्पतिकायिक और चतुर्गतिनिगोद साधारणवनस्पतिकायिक ये छहों प्रकार के जीव बादर और सूक्ष्म के भेद से बारह प्रकार के होते हैं और वे प्रत्येक पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव ये सभी पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। इस प्रकार उक्त चौबीस और निम्न बारह ये सभी जीवसमास मिलाकर छत्तीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद साधारणवनस्पति-कायिक और चतुर्गतिनिगोद साधारणवनस्पतिकायिक के बादर और सूक्ष्म भेद, प्रत्येक-वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा अठारह निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवसमास, उतने ही अठारह निर्वृत्यपर्याप्तक जीवसमास और अठारह लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास ये सब इकट्ठे करने पर चौपन जीवसमास होते हैं।

पूर्वोक्त छत्तीस जीवसमासों में से प्रत्येक शरीर संबंधी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो जीवसमास निकालकर प्रत्येक शरीर संबंधी बादर निगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित इन दोनों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक इन चार जीवसमासों के मिलाने पर अड़तीस जीवसमास होते हैं।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद साधारणशरीर वनस्पतिकायिक और चतुर्गतिनिगोद साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीवों के बादर और सूक्ष्म भेद रूप तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक, अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी-पंचेन्द्रिय और संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवों संबंधी उन्नीस निर्वृत्तिपर्याप्तक जीवसमास होते हैं, उन्नीस ही निर्वृत्यपर्याप्तक जीवसमास होते हैं और उन्नीस ही लब्ध्यपर्याप्तक जीवसमास होते हैं। ये सब मिलाकर सत्तावन जीवसमास होते हैं। ये उपर्युक्त जीवसमासों के भेद समस्त ओघालापों में कहना चाहिए।

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में नित्यनिगोदसाधारण और चतुर्गतिनिगोदसाधारण के भेद से छह प्रकार के हैं। प्रत्येक के बादर

भूकायिकाप्रायिकतेजस्कायिकवायुकायिकाः वनस्पतिकायिकेषु नित्यनिगोद-साधारणचतुर्गतिनिगोदसाधारणाविति षट्भेदाः। प्रत्येकं वादरसूक्ष्माविति द्वादश। प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकस्य प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताविति द्वौ। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया इति त्रयः। पञ्चेन्द्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिपंचेन्द्रियाविति द्वौ एवं सर्वे मिलित्वा एकोनविंशतिजीवसमासा भवन्ति। एते सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तकाः निवृत्यपर्याप्तका लब्ध्यपर्याप्तकाश्च भवन्तीति विस्तरतो जीवसमासा सप्तपंचाशद्भेदा भवन्ति।

एकेन्द्रियसप्तयुगलद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इत्येवेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु एकपञ्चाशत्। तिर्यगगतौ कर्मभूमिजलस्थलखचरास्त्रयोऽपि प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञिनौ भूत्वा षट्, ते च गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमेऽपि च पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति त्रिंशत्। भोगभूमिसंज्ञिगर्भजस्थलखचरौ पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ भूत्वा चत्वारः, एवं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य चतुस्त्रिंशत्। कर्मभूमौ मनुष्याणां आर्यखण्डे गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रयः, म्लेच्छखण्डे गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ द्वौ, भोगकुभोगभूम्योर्गर्भजे पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः। एवं चतुर्गतिषु पञ्चेन्द्रियजीवसमासस्थानानि सप्तचत्वारिंशत्। एतानि च एकविकलेन्द्रियाणामेकपञ्चाशता मिलित्वा अष्टानवतिर्भवन्तीति सूत्रतात्पर्यम्। अत्र विवक्षया स्थावराणां द्वाचत्वारिंशत् ४२ विकलेन्द्रियाणां नव ९, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां चतुस्त्रिंशत् ३४, देवानां द्वौ २, नारकाणां द्वौ २, मनुष्याणां नव ९। सर्वाणि मिलित्वा अष्टानवतिः ९८। अमूनि संसारिणामेव

और सूक्ष्म के भेद से बारह भेद होते हैं। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव के प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ये दो भेद होते हैं। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, एवं चतुरिन्द्रिय ये तीन भेद विकलेन्द्रिय के हैं। पञ्चेन्द्रिय के संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद हैं, इस प्रकार ये सभी मिलकर उनतीस जीवसमास होते हैं। ये सभी प्रत्येक पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। इस प्रकार विस्तार से सत्तावन जीवसमास होते हैं।

एकेन्द्रिय के सात युगल और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये सतरह पर्याप्त निवृत्य-पर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं अतः एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों के इक्यावन जीवसमासों के स्थान होते हैं। तिर्यगगति में पंचेन्द्रिय कर्मभूमियां तिर्यञ्च जलचर, थलचर और नभचर होते हैं तथा तीनों भी असंज्ञी और संज्ञी होने से छह भेद हुए। उनमें जो गर्भज होते हैं, वे पर्याप्त निवृत्यपर्याप्त होते हैं। जो सम्मूर्छन होते हैं वे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं इस तरह  $६ \times २ = १२$  और  $६ \times ३ = १८$  सब तीस होते हैं। भोगभूमिज तिर्यच संज्ञी तथा गर्भज ही होते हैं तथा थलचर और नभचर ही होते हैं और पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त ही होते हैं अतः चार भेद होने से तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के चौंतीस भेद हुए। कर्मभूमि में मनुष्यों के आर्यखण्ड में गर्भजों में पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और सम्मूर्च्छनों में केवल लब्ध्यपर्याप्तक ही होने से तीन ही भेद होते हैं। म्लेच्छखण्ड में गर्भज ही होते हैं और उनमें पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्तक दो भेद होते हैं। भोगभूमि और कुभोगभूमि में गर्भजों में पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त होने से चार भेद होते हैं। सब मिलकर मनुष्यगति में नौ भेद होते हैं। देवों और नारकों में उपपाद जन्म ही होता है तथा उसमें पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक ही होने से चार भेद होते हैं। इस तरह चारों गति संबंधी पंचेन्द्रियों में जीवसमासस्थान  $३४ + ९ + ४ = ४७$  होते हैं। इनमें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के ५१ स्थान मिला देने पर सब स्थान ९८ होते हैं, यह गाथा सूत्र का तात्पर्य है। पृथक्-पृथक् विवक्षा करने पर स्थावरों के ब्यालीस (४२), विकलेन्द्रियों के नौ (९), तिर्यच पंचेन्द्रियों के चौंतीस (३४), देवों के दो (२), नारकियों के दो (२) और मनुष्यों के नौ (९), सब मिलकर अष्टानवे (९८)

न मुक्तानां विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तत्वेन तेषां त्रसस्थावरभेदाभावात् संसारिणस्त्रसस्थावरा इति सूत्रसद्भावात्।  
अथोक्तेभ्यो विशेषजीवसमासकथकमपराचार्योक्तं गाथासूत्रत्रयमाह —

सुद्वखरकुजलतेवा णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा।

पदिट्ठिदरपञ्चपत्तियवियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा॥१॥

इगिविगले इगिसीदी असणिसणिगयजलथलखगाणां।

गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो॥२॥

अज्जसमुच्छिगिगब्भे मलेच्छभोगतियकुणरछपणत्तीससये।

सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु छहियचारिसयं॥३॥

मृदादिरूपपृथ्वीकायिकः पाषाणादिरूपखरपृथ्वीकायिकः अप्कायिकः तेजस्कायिकः वायुकायिकः नित्यनिगोदः इतरनिगोदः परनामचतुर्गतिनिगोदश्चेति सप्तापि स्थूलसूक्ष्मभेदाच्चतुर्दश। तृणं वल्ली गुल्मः वृक्षः मूलं चेति पञ्चापि प्रत्येकवनस्पतयो निगोदशरीरैः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदादश। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियश्चेति विकलेन्द्रियास्त्रयः। एतेषु सप्तविंशत्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियभेदेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादेकाशीतिः। पञ्चेन्द्रियेषु कर्मभूम्यसंज्ञिसंज्ञि-भेदजलचरस्थलचरखचरेषु षट्स्वपि गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तभेदाद् द्वादश। तत्सम्पूर्णिषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्तभेदादष्टादश। उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमीनां संज्ञिस्थलचरखचराविति षट्सु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तभेदाद्

होते है। ये जीवसमासस्थान संसारी जीवों के ही होते हैं, मुक्त जीवों के नहीं होते। क्योंकि मुक्त जीव विशुद्ध चैतन्यनिष्ठ ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से युक्त होते हैं उनके त्रस-स्थावर भेद नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्र में संसारी जीवों के ही त्रस-स्थावर भेद कहे हैं॥७९-८०॥

आगे उक्त जीवसमास के भेदों से विशेष कथन करने वाले अन्य आचार्यों के द्वारा कहे हुए तीन गाथासूत्रों को कहते हैं—

मिट्टी आदि रूप शुद्ध पृथ्वीकायिक, पाषाण आदि रूप खर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद, ये सातों भी स्थूल और सूक्ष्म के भेद से चौदह होते हैं। तृण, वल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल ये पाँचों ही प्रत्येक वनस्पति निगोद शरीरों से प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित होने के भेद से दस हैं। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलेन्द्रिय हैं। इन एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय संबंधी २७ भेदों में पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक के भेद से इक्यासी (८१) भेद होते हैं। पंचेन्द्रियों में कर्मभूमिज तिर्यच संज्ञी और असंज्ञी के भेद से युक्त जलचर, थलचर और नभचर ये छहों गर्भज, पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त के भेद से बारह होते हैं और ये सम्मूर्च्छन पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से अठारह होते हैं। उत्कृष्टभोगभूमि, मध्यमभोगभूमि और जघन्यभोगभूमि के तिर्यच संज्ञी ही होते हैं तथा थलचर और नभचर होते हैं। इन छह के पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त के भेद से बारह होते हैं। मनुष्यों में आर्यखण्ड में जन्मे सम्मूर्च्छन जन्मवालों में लब्ध्यपर्याप्तकरूप एक स्थान होता है। आर्यखण्ड में उत्पन्न गर्भज मनुष्यों में तथा म्लेच्छ खण्ड में उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमि तथा कुभोगभूमि में जन्मे मनुष्य गर्भज ही होते हैं। इस तरह ये छह प्रकार के मनुष्य हुए तथा दस प्रकार के भवनवासी, आठ प्रकार के व्यन्तर, पाँच प्रकार के ज्योतिष्क

द्वादश। मनुष्येषु आर्यखण्डजे संमूर्छिमे लब्ध्यपर्याप्त एकः। तद्गर्भजे म्लेच्छखण्डजे उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमिजेषु, कुभोगभूमिजे एवं षट्सु, तथा दशविधभावनाष्टविधव्यन्तरपञ्चविधज्योतिष्कपटलापेक्षत्रिषष्टिविधवैमानिकभेदात् षडशीतिसुरेषु प्रस्तारापेक्षयैकान्नपञ्चाशद्विधनारकेषु च पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तभेदात् द्वयशीत्यग्रद्विशतं मिलित्वा सर्वे षडधिकचतुःशती जीवसमासा भवन्ति<sup>१</sup>।

एतादृशान् सर्वानपि जीवसमासभेदान् ज्ञात्वा मनोवचनकायैस्तेषां रक्षा कर्तव्या भवति।

अत्र विंशतिप्ररूपणाग्रन्थे सप्तपञ्चाशद् जीवसमासा एव वर्णिताः सन्तीति ज्ञातव्यम्।

अन्यत्र ग्रन्थे पृथिव्यादीनां पंचस्थावराणां चतुःचतुर्भेदाः कथिताः सन्ति। तद्यथा —

“एते पृथिव्यादयः एकेन्द्रियजीवविशेषाः स्थावरनामकर्मोदयात् स्थावराः कथ्यन्ते। ते तु प्रत्येकं चतुर्विधाः — पृथिवी, पृथिवीकायः, पृथिवीकायिकः पृथिवीजीवः। आपः, अप्कायः, अप्कायिकः, अपजीवः। तेजः, तेजःकायः, तेजःकायिकः, तेजोजीवः। वायुः, वायुकायः, वायुकायिकः, वायुजीवः। वनस्पतिः, वनस्पतिकायः, वनस्पतिकायिकः, वनस्पतिजीवः इति।

तत्र अप्वादिस्थिता धूलि पृथिवी। इष्टकादिः पृथिवीकायः, पृथिवीकायिकजीवपरिहृतत्वात् इष्टकादिः पृथिवीकायः कथ्यते मृतमनुष्यादिकायवत्। तत्र स्थावरकायनामकर्मोदयो नास्ति, तेन तद्विराधनायामपि दोषो न भवति। पृथिवीकायो विद्यते यस्य स पृथिवीकायिकः। इन् विषये इको वाच्यः। तद्विराधनायां दोष उत्पद्यते। विग्रहगतौ प्रवृत्तो यो जीवोऽद्यापि पृथिवीमध्ये नोत्पन्नः समयेन समयद्वयेन समयत्रयेण वा यावदनाहारकः पृथिवीं कायत्वेन यो गृहीष्यति

पटलों की अपेक्षा त्रेसठ प्रकार के वैमानिक, इस तरह ये सब (१०+८+५+६३=८६) छियासी प्रकार के देव हुए। प्रस्तारों की अपेक्षा उनचास प्रकार के नारकी ये सब मिलकर (६+८६+४९=१४१) एक सौ इकतालीस हुए। ये सब पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त के भेद से दो सौ बारह होते हैं। इनमें पूर्व के सब भेद एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय के इक्यासी, पंचेन्द्रिय तिर्यच के ब्यालीस, सम्मूर्छन मनुष्य का एक, गर्भज मनुष्य, देव, नारकियों के दो सौ बयासी मिलकर चार सौ छह जीवसमास होते हैं।

इस प्रकार जीवसमास के सभी भेदों को जानकर मन-वचन-काय से उनकी रक्षा करना चाहिए।

बीस प्ररूपणा वाले इस ग्रंथ में सत्तावन जीवसमासों का ही वर्णन है ऐसा जानना चाहिए।

अन्यत्र दूसरे ग्रंथ में पृथिवी आदि पंचस्थावर जीवों के चार-चार भेद कहे हैं। जो इस प्रकार हैं —

स्थावर नामकर्म के उदय वाले पृथिवी आदि एकेन्द्रिय जीव विशेष स्थावर नाम से कहे जाते हैं। वे (पांचों) प्रत्येक चार-चार प्रकार के होते हैं — पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव। जल, जलकाय, जलकायिक, जलजीव। अग्नि, अग्निकाय, अग्निकायिक, अग्निजीव। वायु, वायुकाय, वायुकायिक, वायुजीव। वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक, वनस्पतिजीव।

मार्ग में पड़ी हुई धूलि आदि पृथिवी है। पृथ्वीकायिक जीव के द्वारा परित्यक्त ईंट आदि पृथिवीकाय है। पृथिवी और पृथिवीकाय के स्थावर नामकर्म का उदय न होने से वह निर्जीव है अतः उसकी विराधना नहीं होती। जिसके पृथिवीकाय विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है। जिसके पृथिवी नामकर्म का उदय है लेकिन जिसने पृथिवीकाय को प्राप्त नहीं किया है ऐसे विग्रहगति में रहने वाले जीव को पृथिवीजीव कहते हैं।

प्राप्तपृथिवीनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थः स पृथिवीजीवः कथ्यते। षट्त्रिंशत्पृथिवीभेदाः। तथाहि —

मृत्तिका बालुका चैव शर्करा चोपलः शिला। लवणायस्तथा ताम्रं त्रुपु शीशकमेव च॥१॥

रुप्यं सुवर्णं वज्रं च हरितालं च हिंगुलं। मनः शिला तथा तुत्थमञ्जनं च प्रवालकं॥२॥

झीरोलकाभ्रकं चैव मणिभेदाश्च बादराः। गोमेदोरुजकोंडकश्च स्फटिको लोहितप्रभः॥३॥

वैडूर्यं चन्द्रकांतश्च जलकांतो रविप्रभः। गैरिकश्चंदनश्चैव वर्वरो बक एव च॥४॥

मोचो मस्तरगल्पश्च सर्व एते प्रदर्शिताः। संरक्ष्याः पृथिवीजीवाः मुनिभिः ज्ञानपूर्वकम्॥५॥

शर्करोपलशिलावज्रप्रवालवर्जिताः शुद्धपृथिवीविकाराः। शेषाः खरपृथिवीविकाराः। एतेष्वेव च पृथिव्यष्टकमन्तर्भवति। तत्किं ?

मेवादिशैलाः, द्वीपाः, विमानानि, भवनानि, वेदिकाः, प्रतिमाः, तोरणस्तूपचैत्यवृक्ष जंबूवृक्षशाल्मलिधातक्यः, रत्नाकरादयश्च।

एवं विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादिगालितं जलमापः उच्यते। अप्कायिकजीवपरिहृतमुष्णं च जलं अप्कायः प्रोच्यते। अप्कायो विद्यते यस्य स अप्कायिकः। अपः कायत्वेन यो गृहीष्यति विग्रहगतिप्राप्तो जीवः स अप् जीवः कथ्यते।

इतस्ततो विक्षिप्तं जलादिसिक्तं वा प्रचुरभस्मप्राप्तं वा मनाक्तेजोमात्रं तेजः कथ्यते। भस्मादिकं तेजसा परित्यक्तं शरीरं तेजस्कायो निरूप्यते। तद्विराधने दोषो नास्ति, स्थावरकायनामकर्मोदयरहितत्वात्। तेजः कायत्वेन गृहीतं येन सः तेजस्कायिकः। विग्रहगतौ प्राप्तो जीवस्तेजोमध्येऽवतरिष्यन् तेजोजीवः प्रतिपाद्यते।

वायुकायिकजीवसन्मूर्च्छिनोचितो वायुर्वायुमात्रं वायुरुच्यते। वायुकायिकजीवपरिहृतः सदा विलोडितः वायुर्वायुकायः

पृथिवी के मिट्टी, रेत, कंकड़, पत्थर, शिला, नमक, लोहा, तांबा, रांगा, सीसा, चांदी, सोना, हीरा, हरताल, हिंगुल, मनःशिला, गेरु, तूतिया, अंजन, प्रवाल, अभ्रक, गोमेद, राजवर्तमणि, पुलकमणि, स्फटिकमणि, पद्मरागमणि, वैडूर्यमणि, चन्द्रकांत, जलकान्त, सूर्यकान्त, गैरिकमणि, चन्दनमणि, मरकतमणि, पुष्परागमणि, नीलमणि, विद्रुममणि आदि छत्तीस भेद हैं।

बिलोडा गया, इधर उधर फैलाया गया और छाना गया पानी जल कहा जाता है। जलकायिक जीवों से छोड़ा गया पानी और गरम किया हुआ पानी जलकाय है। जिसमें जलजीव रहता है उसे जलकायिक कहते हैं। विग्रहगति में रहने वाला वह जीव जलजीव कहलाता है जो आगे जलपर्याय को ग्रहण करेगा।

इधर उधर फैली हुई या जिस पर जल सींच दिया गया है या जिसका बहुभाग भस्म बन चुका है ऐसी अग्नि को अग्नि कहते हैं। अग्निजीव के द्वारा छोड़ी गयी भस्म आदि अग्निकाय कहलाते हैं। इनकी विराधना नहीं होती। जिसमें अग्निजीव विद्यमान हैं उसे अग्निकायिक कहते हैं। विग्रहगति प्राप्त, वह जीव अग्निजीव कहलाता है जिसके अग्निनामकर्म का उदय है और आगे जो अग्नि शरीर को ग्रहण करेगा।

जिसमें वायुकायिक जीव आ सकता है ऐसी वायु को अर्थात् केवल वायु को वायु कहते हैं। वायुकायिक जीव के द्वारा छोड़ी गई, बीजना आदि से चलाई गई हवा वायुकायिक कहलाती है। वायुजीव जिसमें मौजूद है ऐसी वायु वायुकायिक कही जाती है। विग्रहगति प्राप्त, वायु को

कथ्यते। वायुः कायत्वेन गृहीतो येन स वायुकायिकः कथ्यते। वायुं कायत्वेन गृहीतुं प्रस्थितो जीवो वायुजीव उच्यते। सार्द्रः छिन्नो भिन्नो मर्दितो वा लतादिर्वनस्पतिरुच्यते। शुष्कादिर्वनस्पतिर्वनस्पतिकायः। जीवसहितो वृक्षादिर्वनस्पतिकायिकः। विग्रहगतौ सत्यां वनस्पतिर्जीवः वनस्पतिजीवो भण्यते।

प्रत्येकं चतुर्षु भेदेषु मध्ये पृथिव्यादिकं कायत्वेन गृहीतवन्तो जीवा विग्रहगतिं प्राप्ताश्च प्राणिनः स्थावराः ज्ञातव्याः, तेषामेव पृथिव्यादिस्थावरकायनामकर्मोदयसद्भावात् न तु पृथिव्यादयः पृथिवीकायादयश्च स्थावराः कथ्यन्ते, अजीवत्वात् कर्मोदयभावाभावाच्च<sup>१</sup>।”

पूर्व बादरनिगोदजीवैः प्रतिष्ठिताः ये जीवाः कथिताः ते के के सन्ति इति चेत् ?

कथ्यते — “पुढवी आदिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा।

अपदिट्टिदा णिगोदेहिं पदिट्टिदंगा हवे सेसा<sup>१</sup>।”

पृथिवीजलाग्निवायुकायिकाः चत्वारो जीवाः, केवलिदेहः, आहारशरीरं, देवनारकयोरंगौ। इमानि अष्टविधजीवानां शरीराणि निगोदजीवैः रहितानि सन्ति। शेषमनुष्याणां, तिरश्चां-साधारणवनस्पतिकायिकानां सप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरजीवानां द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-असंज्ञि-संज्ञितिरश्चां च देहाः निगोदजीवैः व्याप्ताः सन्तीति ज्ञातव्यं भवद्भिः।

अनादिकालादयं जीवः स्थावरत्रसभेदसहिताषु चतुरशीतिलक्षयोनिषु पर्यटन् सन् दुःखमेवावाप। यदि कदाचिदयमेव

शरीर रूप से ग्रहण करने वाला जीव वायुजीव है।

छेदी गई, भेदी गई या मर्दित की गई गीली लता आदि वनस्पति हैं। सूखी वनस्पति जिसमें वनस्पतिजीव नहीं है वनस्पतिकाय हैं। सजीव वृक्ष आदि वनस्पतिकायिक हैं। विग्रहगतवर्ती वह जीव वनस्पतिजीव कहलाता है जिसके वनस्पतिनामकर्म का उदय है तथा जो आगे वनस्पति को शरीर रूप से ग्रहण करेगा।

प्रत्येक काय के चार भेदों में से प्रथम दो भेद स्थावर नहीं कहलाते क्योंकि वे अजीव हैं तथा इनके स्थावर नामकर्म का उदय भी नहीं है।

बादर निगोद जीवों से प्रतिष्ठित जो जीव हैं वे कौन-कौन से हैं ऐसा प्रश्न होने पर बताते हैं—

पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक ये चारों प्रकार के स्थावरकायिक जीव, केवली भगवान का परमौदारिक शरीर, आहारकशरीर, देव और नारकी जीवों का शरीर इन आठ प्रकार के जीवों के शरीर निगोदिया जीवों से रहित होते हैं। शेष मनुष्य और तिर्यचों के, साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के, सप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरधारी जीवों के, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी तिर्यचों के शरीर निगोदिया जीवों से सहित होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

अनादिकाल से यह जीव स्थावर-त्रस आदि भेदों से सहित चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख को भोग रहा है। यदि कदाचित् वही प्राणी जिनधर्म एवं जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने लगता है तभी वह संसार से छूटने का प्रयत्न करता है।

प्राणी जिनधर्मं जिनभक्तिंचानोति तदैव संसारादमुक्तो भवितुं प्रयतते।

तदेव भावितं मयाचन्द्रप्रभजिनस्तुतौ —

**चतुःसाधिकाशीतिलक्षप्रमासु, भ्रमन्योनिषु व्याप्तदुःखासु कृच्छ्रात्।**

**अवाप्तः प्रभो! धर्मपोतः शुभस्ते, कृपायास्तितीर्षामि संसारवार्धिम्<sup>१</sup>॥६॥**

अयमात्मा स्वयमेव स्वसृष्टेर्निर्माता वर्तते यदायं पञ्चस्थावरकायेषु विकलेन्द्रियेषु असंज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु च गमनाद् भीतः सन् पञ्चेन्द्रियः संज्ञी देशकुलजातिशुद्धो भवति तदायमेव शुद्धात्मानं ध्यात्वा सिद्धो भवितुमर्हति।

तदेव प्रोक्तं मया स्तुतिप्रकरणे —

शिखरिणीछंद —

शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधा स्वकृतितः।

विधत्ते नानाभू-पवन-जल-वन्हि-द्रुमतनुम् ॥

त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्।

स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः<sup>२</sup>॥१८॥

अधुना कायमार्गणायां आलापा वक्ष्यन्ते —

इत्थं कायानुवादेन सामान्येन षट्कायिकजीवानामालापे भण्यमाने सन्ति चतुर्दशगुणस्थानानि, सप्तपञ्चादश जीवसमासाः, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः,

मेरे द्वारा रचित श्री चन्द्रप्रभजिनस्तुति में इसी भक्ति भावना को प्रदर्शित किया गया है —

**श्लोकार्थ** — अनन्त दुःखों से व्याप्त चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए मैंने हे नाथ!

अब आपके धर्मरूपी जहाज का अवलम्ब प्राप्त कर लिया है अतः आपकी कृपा से मुझे अब संसारसागर को पार करना है।

यह आत्मा स्वयं ही अपनी सृष्टि का निर्माता होता है, जब वह पंचस्थावरकायों में, विकलेन्द्रियों और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियों की पर्याय में जाने से डरता हुआ पञ्चेन्द्रिय संज्ञी देश, कुल, जाति से शुद्ध हो जाता है तभी वह अपनी शुद्धात्मा का ध्यान करके सिद्ध पद के योग्य होता है।

इसी अभिप्राय को मैंने स्तुति के एक छन्द में प्रगट किया है —

**श्लोकार्थ** — हे नाथ! आपके शासन में प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्मों का कर्ता स्वयं होने के कारण स्रष्टा (ब्रह्मा) माना गया है अतः वह स्वयं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि स्थावर शरीर को धारण करता है। पुनः विकलत्रय त्रस योनि पाकर कभी शुभ कर्मोदयवश पंचेन्द्रियपर्याय में मानवशरीर धारण करके यदि निजात्मा का ध्यान करता है तभी मोक्षगतिरूप कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

इस कायमार्गणा में अब जीवसमास के आगे के आलाप कहे जाते हैं —

पर्याप्ति प्ररूपणा की अपेक्षा संज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त काल में और अपर्याप्तकाल में छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः



नवः प्राणाः, सप्त प्राणाः, अष्ट प्राणाः, षट् प्राणाः, सप्त प्राणाः, पञ्च प्राणाः, षट् प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, द्वौ प्राणौ, एकः प्राणः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादिपञ्चजात्यः, पृथिवीकायादि षट्कायाः, पञ्चदश योगाः अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः,

दशों प्राण, सात प्राण, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः नौ प्राण, सात प्राण, चार इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः आठ प्राण, छह प्राण, तीन इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः सात प्राण, पाँच प्राण, दो इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्त काल में क्रमशः छह प्राण, चार प्राण, एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल में क्रमशः चार प्राण, तीन प्राण, सयोग केवली जिनों के चार प्राण तथा समुद्घात की अपर्याप्त अवस्था में दो प्राण और अयोगकेवली जिनों के एक आयुप्राण होता है। चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है। चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ, पृथ्वीकाय आदि छहों काय, पन्द्रहों योग तथा अयोगस्थान भी है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक-असंज्ञिक तथा इन दोनों अवस्थाओं से रहित स्थान भी है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

इस प्रकार कायानुवाद की अपेक्षा सामान्य से षट्कायिक जीवों के आलाप कहने पर—

उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं, सत्तावन जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ-छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति ( विकलत्रयजीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति ( एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ) होती हैं। दश प्राण, सात प्राण ( संज्ञी पंचेन्द्रियों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), नव प्राण, सात ( असंज्ञी पञ्चेन्द्रियों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), आठ प्राण, छह प्राण ( चतुरिन्द्रियों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), सात प्राण, पाँच प्राण ( तीन इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), छह प्राण, चार प्राण ( दो इन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), चार प्राण, तीन प्राण ( एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त-अपर्याप्तकाल की अपेक्षा ), चार प्राण ( सयोगकेवली गुणस्थान में ), दो प्राण ( समुद्घात की अपर्याप्त अवस्था में ), एक प्राण ( अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती के ) होता है। चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी होता है। चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय जाति आदि पाँचों जातियाँ, पृथ्वीकाय आदि छहों काय, पन्द्रह योग तथा अयोगस्थान भी होता है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी पाया जाता है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है। आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक-असंज्ञिक तथा दोनों अवस्थाओं से रहित स्थान भी होता है। आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२१३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, एको वा द्वौ वा त्रयो वा चत्वारो वा पञ्च वा षड् वा सप्त वा अष्टौ वा नव वा दश वा एकादश वा द्वादश वा त्रयोदश वा चतुर्दश वा पञ्चदश वा षोडश वा सप्तदश वा अष्टादश वा एकोनविंशतिर्वा जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः, दश प्राणाः नव प्राणाः अष्ट प्राणाः सप्त प्राणाः, षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः एकः प्राणः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञा अपि अस्ति, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट्कायाः, एकादश योगा अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्टौ ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नैव संज्ञिने नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२१४।

उन्हीं षट्कायिक जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने पर—

चौदहों गुणस्थान, पूर्व में कहे गये पर्याप्तक जीव संबंधी एक, अथवा दो, अथवा तीन, अथवा चार, अथवा पाँच, अथवा छह, अथवा सात, अथवा आठ, अथवा नौ, अथवा दश, अथवा ग्यारह, अथवा बारह, अथवा तेरह, अथवा चौदह, अथवा पन्द्रह, अथवा सोलह, अथवा सत्रह, अथवा अठारह, अथवा उन्नीस जीवसमास होते हैं। छहों पर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ और चार पर्याप्तियाँ होती हैं। दशों प्राण, नव प्राण, आठ प्राण, सात प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, एक प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है। चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय आदिक पाँचों जाति, पृथ्वीकाय आदिक षट्काय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोग ) और अयोगस्थान भी है। तीनों

नं. २१३

षट्कायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	५७	प.अ. ६,६ ५,५ ४,४	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३ ४,२ १	४ ४ क्षीणसं.	४	५	६	१५ अयो.	३ अपा.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. २१४

षट्कायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	१९	६ ५ ४	१० ९, ८ ७, ६ ४, ४ १	४ क्षीणसं.	४	५	६	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ अयो.१	३ अपा.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.६ अले.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. अ. प्र. स.	३८	६ अ.  ५ अ. ४ अ.	७  ७ ६ ५ ४ ३ २	४  क्षीणः	४	५	६	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कार्म.	३ अणां	४ अक्रवा.	६ विभं. मनः विना.	४ असं. सामा. छेदो. यथा.	४	द्र. २ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	५ सम्य. विना	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदकाया इति मूलौघभंगः। नवर मिथ्यादृष्टेस्त्रिविधस्यापि कायानुवादमूलौघकथितजीवसमासा वक्तव्याः। नास्त्यन्यत्र विशेषः।

पृथिवीकायिकानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चत्वारो जीवसमासाः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, पृथिवीकायः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुदर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः,

जातियाँ, पृथ्वीकायादि छहों काय, चार योग ( औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारक मिश्र और कार्मणकाययोग ), तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी होता है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है, छह ज्ञान ( विभंगावधि एवं मनःपर्ययज्ञान के बिना ), चार संयम ( असंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना और यथाख्यात ), चारों दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या तथा भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, पाँच सम्यक्त्व ( सम्यग्मिथ्यात्व के बिना ), संज्ञिक, असंज्ञिक तथा अनुभयस्थान भी है। आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी और इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

सामान्य षट्कायिक जीवों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अकायिक अर्थात् सिद्ध जीवों तक के आलाप मूल ओघालाप के समान ही जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त इन तीनों ही प्रकार के मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहते समय कायानुवाद के मूल ओघालाप में कहे गये सभी जीवसमास कहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यत्र अन्य कोई विशेषता नहीं है।

**विशेषार्थ**—यहाँ जो सत्तावन जीवसमास कहे हैं उनमें अपर्याप्त सामान्य के उन्नीस हैं जिनका यहाँ पर 'एक अथवा दो, अथवा चार इत्यादि संख्याओं के कथन में आई हुई पूर्ववर्ती संख्याओं का एक, दो, तीन इत्यादि संख्याओं से निर्देश किया है। अपर्याप्त के निर्वृत्त्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त ऐसे दो भेद कर लेने पर उनका निर्देश दो, चार, छह इत्यादि संख्याओं के द्वारा किया गया है। यहाँ पर इतना और समझ लेना चाहिए कि पूर्व पूर्ववर्ती संख्याएं जीवसमासों को सामान्यरूप से और उत्तर उत्तरवर्ती संख्याएं उनको विशेष रूप से बतलाती हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि किसी भी संख्या के द्वारा संपूर्ण अपर्याप्त जीव संग्रहीत कर लिये गये हैं। भिन्न भिन्न संख्याएं केवल उनके भेद-प्रभेदों को सूचित करने के लिए ही दी गई हैं। पर्याप्त जीवसमास के उन्नीस भेदों में भी यही क्रम जान लेना चाहिए। गोमटसार जीवकांड में जीवसमासों को बतलाते हुए तीन पंक्तियाँ कर दी हैं। पहली पंक्ति में एक, दो आदि उन्नीस तक जीवसमास लिये हैं और यह कथन सामान्य की अपेक्षा किया है। दूसरी पंक्ति में दो, चार आदि अड़तीस तक जीवसमास लिये हैं और यह कथन पर्याप्त एवं अपर्याप्त इन दो भेदों की अपेक्षा किया है तथा तीसरी पंक्ति में तीन, छह आदि सत्तावन तक जीवसमास लिये हैं और यह कथन पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदों की अपेक्षा किया है।

अब आगे पृथ्वीकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, चार जीवसमास, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, एक तिर्यग्गति,

अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२१६।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ — बादरसूक्ष्मपृथिवीकायिकौ पर्याप्तौ, चत्वारोऽपि जीवसमासाः — शुद्धबादरपृथिवीकायिक-शुद्धसूक्ष्मपृथिवीकायिक-खरबादरपृथिवीकायिक-खरसूक्ष्मपृथिवी-कायिकपर्याप्ताः, चतस्रः पर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, पृथिवीकायः, औदारिककाययोगः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः अचक्षुदर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्या भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२१७।

एकेन्द्रियजाति, पृथ्वीकाय, तीन योग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं तथा भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान, बादर और सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायिक दो जीवसमास अथवा चार जीवसमास भी होते हैं— शुद्धबादरपृथ्वीकायिक, शुद्धसूक्ष्मपृथ्वीकायिक, खरबादरपृथ्वीकायिक, खरसूक्ष्मपृथ्वीकायिक, चार पर्याप्तियाँ, चार प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, पृथ्वीकाय, औदारिककाययोग, नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पृथ्वीकायिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर— एक गुणस्थान, दो

नं. २१६

पृथिवीकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ बा.प. बा.अ. सू.प. सू.अ.	४ प. ४ अ.	४ प. ३ अ.	४ ति.	१ ति.	१ पृ.	१ औ.२ कर्म.	१ औ.२ कर्म.	४ पृ.	२ कुम. कुश्रु.	१ पृ.	१ पृ.	६ द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

नं. २१७

पृथिवीकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.प. सू.प. ४	४ प.	४ प्रा.	४ सं.	१ ग.	१ इं.	१ का.	१ यो.	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा.	१ संय.	१ द.	१ ले. ६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ इत्यादयः सर्वे आलापा अपर्याप्तसंबन्धिनो वक्तव्याः\*२१८।

एवं बादरपृथिवीकायिकस्य सामान्य-पर्याप्त-निवृत्यपर्याप्तास्त्रय आलापा वक्तव्याः। बादरपृथिवीलब्ध्यपर्याप्तस्य बादरैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तवद्भंगो वक्तव्यः। सूक्ष्मपृथिव्याः सूक्ष्मैकेन्द्रियवद्भंगः। विशेषेण सूक्ष्मैकेन्द्रियस्थाने सूक्ष्मपृथिवीकायिक इति वक्तव्यः\*२१९।

अष्कायिकानां पृथिवीकायिकवद् भंगः। विशेषेण सामान्यालापे भण्यमाने पृथिवीकायिकस्थाने अष्कायिको वक्तव्यः, द्रव्येण अपर्याप्तकाले कापोतशुक्ललेश्ये पर्याप्तकाले स्फटिकवर्णलेश्या वक्तव्या\*२२०।

जीवसमास इत्यादिक सभी अपर्याप्तकालीन आलापों को ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक जीव के सामान्य, पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त ये तीन आलाप जानना चाहिए। बादर लब्ध्यपर्याप्तक पृथ्वीकायिक जीव के बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के समान भंग जानना चाहिए। सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीव के सूक्ष्मैकेन्द्रिय के समान भंग जानना चाहिए। विशेषरूप से सूक्ष्म एकेन्द्रिय के स्थान पर “सूक्ष्मपृथिवीकायिक” ऐसा कथन करना चाहिए।

नं. २१८

पृथिवीकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.अ. सू.अ.	४ अ.	३	३	१ ति.	१ कुं.	१ पृ.	१ औ.मि. कर्म.	१ पृं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ पृं.	१ पृं.	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २१९

बादरपृथिवीकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ बा.प. बा.अ.	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ कुं.	१ पृ.	३ औ.२ का.१	१ पृं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ पृं.	१ पृं.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २२०

बादरपृथिवीकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ बा.प.	४	४	४	१ ति.	१ कुं.	१ पृ.	१ औदा.	१ पृं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ पृं.	१ पृं.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव सूक्ष्माष्कायिकानां पर्याप्तकाले द्रव्येण कापोतलेश्या तथा च बादराष्कायिकानां द्रव्येण पर्याप्तकाले स्फटिकवर्णशुक्ललेश्या कथयितव्या\*२२१।

कुत एतत् ?

घनोदधि-घनवलय-आकाशपतितपानीयानां धवलवर्णदर्शनात् ।

अत्र केचिदाचार्या वदन्ति — धवल-कृष्ण-नील-पीत-रक्त-आताम्र-वर्णपानीयदर्शनात् न धवलवर्णमेव पानीयमिति चेत् ?

तत्र घटते, आकारसद्भावे मृत्तिकायाः संयोगेन जलस्य बहुवर्णव्यवहारदर्शनात्। अपां स्वभाववर्णः पुनो धवलश्चैव।

एवमेव बादराष्कायस्यापि त्रय आलापा वक्तव्याः। नवरि पर्याप्तकाले द्रव्येण स्फटिकलेश्या एका एव। नास्त्यन्यत्र विशेषः। बादराष्कायिकनिवृत्तिपर्याप्तानां अपि त्रय आलापा एवं चैव वक्तव्याः। बादराष्कायिकलब्धपर्याप्तानां

अष्कायिक जीवों के आलाप पृथिवीकायिक जीवों के समान ही समझना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके सामान्य आलाप कहते समय 'पृथ्वीकायिक' के स्थान पर 'अष्कायिक' कहना चाहिए और लेश्या के प्रकरण में द्रव्य से अपर्याप्तकाल में कापोत और शुक्ललेश्या और पर्याप्तकाल में स्फटिक वर्ण वाली अर्थात् शुक्ललेश्या कहना चाहिए।

उन्हीं सूक्ष्म अष्कायिक जीवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य से कापोत लेश्या कहना चाहिए तथा बादर अष्कायिक जीवों के द्रव्य से पर्याप्तकाल में स्फटिकवर्णवाली शुक्ल लेश्या कहनी चाहिए।

प्रश्न — ऐसा क्यों ?

उत्तर — क्योंकि घनोदधिवात और घनवलयवात द्वारा आकाश से गिरे हुए पानी का धवलवर्ण देखा जाता है।

यहाँ पर कुछ आचार्य कहते हैं कि धवल, कृष्ण, नील, पीत, रक्त, आताम्रवर्ण का पानी देखा जाने से पानी धवलवर्ण ही होता है ऐसा कहना भी नहीं बनता है ?

परन्तु उनका यह कथन ठीक से घटित नहीं होता है क्योंकि आधार के होने पर मिट्टी के संयोग से जल अनेक वर्ण वाला हो जाता है ऐसा व्यवहार देखा जाता है किन्तु जल का स्वाभाविक वर्ण धवल ही है।

इसी प्रकार बादर अष्कायिक जीवों के भी सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ये तीन आलाप कहना चाहिए। उसमें विशेष बात यह है कि उनके पर्याप्तकाल में द्रव्य से एक स्फटिक वर्ण वाली

नं. २२१

बादरपृथिवीकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ बा.अ.	४ अ.	३	४	१ ति.	१ हि.	१ पृ.	२ औ.मि. कार्म.	१ ङ	४	२ कुम. कुशु.	१ ङ	१ ङ	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

बादराष्कायिकनिवृत्ति-अपर्याप्तभंगवद् ज्ञातव्याः।

सूक्ष्माष्कायिकानां सूक्ष्मपृथिवीकायवद्भंगः सूक्ष्माष्कायिकनिवृत्तिपर्याप्तापर्याप्तानां सूक्ष्माष्कायिकलब्ध्यपर्याप्तानां च सूक्ष्म पृथिवीपर्याप्तापर्याप्तवद् भंगो ज्ञातव्यः।

तेजस्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां बादरतेजस्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां च पर्याप्तनामकर्मोदयतेजस्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां बादरतेजोलब्ध्यपर्याप्तानां च, अष्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां बादराष्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां पर्याप्तनामकर्मोदयाष्कायिकानां तेषां चैव पर्याप्तापर्याप्तानां बादराष्कायिकलब्ध्यपर्याप्तानां च यथाक्रमेण भंगः। नवरि तेजस्कायिकानां द्रव्येण कापोतशुक्ल-तपनीयलेश्याः। तेषां चैव पर्याप्तानां द्रव्येण कापोत-तपनीयलेश्ये। एवं पर्याप्तनामकर्मोदयानां द्वयोरपि वक्तव्यम्। बादरतेजस्कायिकानां तेजोभंगः। एवं चैव तेषां पर्याप्तानां। नवरि द्रव्येण तपनीयलेश्या। एवं पर्याप्तनामकर्मोदयानामपि द्रव्यलेश्या वक्तव्याः।

सूक्ष्मतेजस्कायिकानां सूक्ष्माष्कायिकानां सूक्ष्मवद्भंगः। वायुकायिकानां तेजस्कायिकवद् भंगः। नवरि द्रव्येण कापोतशुक्लगोमूत्रमुद्गवर्णलेश्याः। तेषां पर्याप्तानां कापोत-गोमूत्र-मुद्गवर्णलेश्याः। एवं बादरवायूनां तेषां पर्याप्तानां

शुक्ल लेश्या ही होती है, इसके सिवाय अन्य पृथिवीकायिक के आलापों से अप्कायिक के आलापों में और कोई विशेषता नहीं है। इसी प्रकार बादर अप्कायिक निवृत्तिपर्याप्तक जीवों के उक्त तीन आलाप कहना चाहिए। बादर अप्कायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप अप्कायिक निवृत्त्यपर्याप्तक जीवों के आलापों के समान समझना चाहिए। सूक्ष्म अप्कायिक जीवों के आलाप सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीवों के आलापों के समान होते हैं। सूक्ष्म अप्कायिक निवृत्तिपर्याप्तक, सूक्ष्मअप्कायिक निवृत्त्यपर्याप्तक और सूक्ष्मअप्कायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवों के पर्याप्त और अपर्याप्त आलापों के समान जानना चाहिए।

तैजस्कायिक जीवों के और उन्हीं पर्याप्तक अपर्याप्तक जीवों के, बादर तैजस्कायिक जीवों के और उन्हीं बादरतैजस्कायिक पर्याप्तक अपर्याप्तक जीवों के, पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले तैजस्कायिक जीवों के और उन्हीं के पर्याप्त अपर्याप्तभेदों के तथा बादर तैजस्कायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप अप्कायिक जीवों के और उन्हीं के पर्याप्तक अपर्याप्तक भेदों के, बादर अप्कायिक जीवों के और उन्हीं के पर्याप्तक अपर्याप्तक भेदों के, पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले अप्कायिक जीवों के और उन्हीं के पर्याप्तक अपर्याप्तक भेदों के तथा बादर अप्कायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलापों के समान यथाक्रम से जानना चाहिए। उनमें विशेषता यह है कि तैजस्कायिक जीवों के द्रव्य से कापोत, शुक्ल और तपनीय लेश्या होती है तथा उन्हीं पर्याप्तक सूक्ष्मजीवों के द्रव्य से कापोत लेश्या और पर्याप्तक बादर जीवों के तपनीय लेश्या होती है। इसी प्रकार पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले सामान्य और पर्याप्त इन दोनों ही प्रकार के तैजस्कायिक जीवों के द्रव्यलेश्या कहना चाहिए। इसी प्रकार बादरतैजस्कायिक जीवों के पर्याप्त अवस्था में आलाप होते हैं। विशेषता यह है कि इनके द्रव्य से तपनीय अर्थात् पीतलेश्या होती है। इसी प्रकार से पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले तैजस्कायिक जीवों के भी द्रव्यलेश्या कहना चाहिए।

सूक्ष्म तैजस्कायिक जीवों के आलाप सूक्ष्म अप्कायिक जीवों के आलापों के समान जानना चाहिए। वायुकायिक जीवों के आलाप तैजस्कायिक जीवों के आलापों के समान जानना



च द्रव्यलेश्या भवन्ति। यद्यपि मुद्गा अनेकवर्णाः, तर्ह्यपि रुद्विशात् श्यामलवर्णो मुद्गवर्णः<sup>१</sup> इति गृह्यते। सूक्ष्मवायूनां सूक्ष्मतेजस्कायिकवद् भंगः।

उक्तं च वायुकायिकानां वर्णा अन्यत्रग्रन्थे — “तत्र घनोदधयो मुद्गसन्निभा, घनवाता गोमूत्रवर्णा, अव्यक्तवर्णास्तनुवाताः<sup>२</sup>।”

वनस्पतिकायिकानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वादश जीवसमासाः, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, वनस्पतिकायः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका

चाहिए। विशेष बात यह है कि द्रव्य से कापोत, शुक्ल, गोमूत्र एवं मूंग के वर्ण वाली लेश्याएं होती हैं। उन्हीं पर्याप्तक सूक्ष्म जीवों के कापोतलेश्या और बादर पर्याप्त जीवों के गोमूत्र और मूंग के वर्ण वाली लेश्याएं होती हैं। इसी प्रकार बादर वायुकायिक सामान्य जीवों के और उन्हीं बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवों के द्रव्य लेश्याएं होती हैं। यद्यपि मूंग अनेक वर्ण वाली होती है तो भी रूढि के वश से “श्यामल” ही मूंग का वर्ण ग्रहण किया गया है। सूक्ष्म वायुकायिक जीवों के आलाप सूक्ष्म तैजस्कायिक जीवों के आलापों के समान जानना चाहिए।

जैसा कि वायुकायिक जीवों का वर्ण अन्यत्र ग्रंथ में भी कहा है—

“उनमें से घनोदधि वायु का वर्ण मूंग का समान है, घनवात का वर्ण गोमूत्र वर्ण के समान है तथा तनुवात का वर्ण अव्यक्त वर्ण है।”

वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, बारह जीवसमास, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, वनस्पतिकाय, तीन योग, नपुंसक वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुर्दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

भावार्थ —यहाँ जो बारह जीवसमास बताये हैं उनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार जानना चाहिए। सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त, अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक अपर्याप्त इस प्रकार प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों के चार जीवसमास होते हैं। बादर नित्य निगोद साधारणवनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादरनित्यनिगोद साधारणवनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मनित्यनिगोदसाधारणवनस्पति कायिकपर्याप्त, सूक्ष्मनित्यनिगोदसाधारणवनस्पतिकायिकअपर्याप्त, बादर चतुर्गतिनिगोदसाधारण-वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादरचतुर्गतिनिगोद साधारणवनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मचतुर्गतिनिगोद-साधारणवनस्पतिकायिक पर्याप्त और सूक्ष्मचतुर्गतिनिगोदसाधारणवनस्पतिकायिक अपर्याप्त इस प्रकार साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के आठ जीवसमास होते हैं।

उन्हीं वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों के कथन में अपर्याप्तसंबंधी सभी आलाप छोड़ देना चाहिए। इनका वर्णन कोष्ठक से ज्ञात करें।

अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२२२।

तेषां पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिनः आलापा अपनेतव्याः\*२२३।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*२२४॥

प्रत्येकशरीरवनस्पतीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, त्रयो प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, प्रत्येकवनस्पतिकायः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः,

इसी प्रकार से उन वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में पर्याप्तसंबन्धी सभी आलाप छोड़ देना चाहिए।

अब प्रत्येक शरीरधारी वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—

एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दो जीवसमास ( पर्याप्त और अपर्याप्त ), चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, प्रत्येक वनस्पतिकाय, तीन योग ( औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से कृष्ण, नील,

### नं. २२२ वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१२ साधा. ८ प्रत्ये. ४	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	३ औ. २ का. १	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	६ ले. द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	२ आ. आहार अनाहार	२ उ. साकार अनाकार

### नं. २२३ वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	६ साधा. ४ प्रत्ये. २	४	४	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	१ औदा.	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	६ ले. द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	१ आ. आहार	२ उ. साकार अनाकार

### नं. २२४ वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	६ साधा. ४ प्रत्ये. २	४ अ.	३	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	२ औ. मि. कार्म.	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	२ ले. द्र. २ का. ३ शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	२ आ. आहार अनाहार	२ उ. साकार अनाकार

चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२२५।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*२२६।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*२२७।

कापोत ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के कथन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएं ही ग्रहण करनी चाहिए।

उन्हीं प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में मात्र अपर्याप्तसंबन्धी आलाप ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार निर्वृत्तिपर्याप्तक प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीवों के भी सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ये तीन आलाप कहना चाहिए। लब्ध्यपर्याप्तक प्रत्येकशरीर-वनस्पतिकायिक

नं. २२५

प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ प्र.प. प्र.अ.	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	३ औ.२ का.१	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	६ ले. द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	२ आ. आहार अनाहार	२ उ. साकार अनाकार

नं. २२६

प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ प्र.प.	४	४	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	१ औ. १ दौ.	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	६ ले. द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	१ आ. आहार	२ उ. साकार अनाकार

नं. २२७

प्रत्येकवनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ प्र.अ. अ.	४	३	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	२ औ.मि. कार्य.	१ वे.	४ क.	२ ज्ञा. कुम. कुश्रु.	१ संय. पुं.	१ द. पुं.	२ ले. द्र. २ का. ३ शु. भा. ३ अशु.	२ भ. भ. अ.	१ स. मि.	१ संज्ञि. असं.	२ आ. आहार अनाहार	२ उ. साकार अनाकार

एवं निवृत्तिपर्याप्तस्यापि त्रय आलापा वक्तव्याः। लब्ध्यपर्याप्तानामपि एक आलापः प्रत्येक वनस्पतिकायिकापर्याप्तानां यथा तथा वक्तव्यः। यथा प्रत्येकशरीराणामालापास्तथैव बादरनिगोदप्रतिष्ठितानामपि वक्तव्यम् ।

साधारणवनस्पतिकायिकानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, अष्टौ जीवसमासाः — नित्यनिगोदचतुर्गति-निगोदयोर्बादरसूक्ष्माः भेदा एतेषां चतुर्णां पर्याप्तापर्याप्तभेदात् अष्टौ भेदाः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः एकेन्द्रियजातिः, साधारणवनस्पतिकायः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२२८।

जीवों का एक अपर्याप्तक आलाप प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवों के आलाप के समान कहना चाहिए तथा जिस प्रकार अभी प्रत्येकशरीर-वनस्पतिकायिक जीवों के आलाप कहे हैं, उसी प्रकार से बादर निगोद प्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक जीवों के भी आलाप कहना चाहिए।

साधारणवनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, आठ जीवसमास ( नित्य निगोद और चतुर्गतिनिगोद इन दोनों के बादर और सूक्ष्म ये दो-दो भेद तथा इन चारों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से आठ जीवसमास हैं ), चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति, एकेन्द्रिय जाति, साधारणवनस्पतिकाय, तीन योग ( औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुर्दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों के वर्णन में अपर्याप्तसंबंधी सभी आलाप छोड़ कर कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलापों में पर्याप्तकालीन

नं. २२८

साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	८	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ ऋ	१ वन	३ औ. २ का. १	१ ऋ	४	२ कुम. कुश्रु.	१ ऋ	१ ऋ	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*२२९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*२३०।

बादरसाधारणवनस्पतीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चत्वारो जीवसमासाः — बादरनित्यनिगोद-बादरचतुर्गतिनिगोद-पर्याप्तपर्याप्तानां चतुर्णां चत्वारो जीवसमासाः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यग्गतिः, एकेन्द्रियजातिः, बादरसाधारणवनस्पतिकायः, त्रयो योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता

सभी आलाप छोड़कर कथन करना चाहिए।

बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान, चार जीवसमास — बादरनित्यनिगोद, बादरचतुर्गतिनिगोद तथा इन दोनों के पर्याप्त-अपर्याप्त, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, बादर साधारण वनस्पतिकाय, तीन योग ( औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ), नपुंसक वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, अचक्षुर्दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर उसमें से अपर्याप्त संबन्धी सभी आलाप छोड़ देना चाहिए।

उन्हीं बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर

नं. २२९

साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४	४	४	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	१ औदा.	१ वं	४	२ कुम. कुश्रु.	१ सं.	१ द.	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २३०

साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४	४ अ.	३	४	१ ति.	१ इं.	१ वन.	२ औ. मि. कर्म.	१ वं	४	२ कुम. कुश्रु.	१ सं.	१ द.	द्र. २ का. ३ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२३१।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिनः आलापा अपनेतव्याः\*२३२।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिनः आलापा अपनेतव्याः\*२३३।

एवं साधारणशरीरबादरवनस्पतीनां पर्याप्तनामकर्मोदयानां त्रय आलापा वक्तव्याः। लब्ध्यपर्याप्तानामपि एक अपर्याप्तालापो वक्तव्यः। सर्वसाधारणशरीरसूक्ष्मानां सूक्ष्मपृथिवीकायिकवद् भंगः। विशेषेण चत्वारो जीवसमासाः,

उनमें से पर्याप्तसंबन्धी सभी प्ररूपणाएं छोड़कर कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले साधारणशरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त ये तीन आलाप कहना चाहिए। लब्ध्यपर्याप्तक साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीवों का भी एक अपर्याप्त आलाप कहना चाहिए। सभी सूक्ष्म साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीवों के आलाप सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के आलापों के समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि जीवसमास आलाप कहते समय साधारणशरीर के साथ “चतुर्गति

### नं. २३१ बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४	४ प. ४ अ.	४ ३	४	१ ति.	१ हिं	१ वन.	३ औ. २ का. १	१ हिं	४	२ कुम. कुशु.	१ हिं	१ हिं	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. २३२ बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२	४	४	४	१ ति.	१ हिं	१ वन.	१ औदा.	१ हिं	४	२ कुम. कुशु.	१ हिं	१ हिं	द्र. ६ भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. २३३ बादर साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२	४ अ.	३	४	१ ति.	१ हिं	१ वन.	२ औ. मि. काम.	१ हिं	४	२ कुम. कुशु.	१ हिं	१ हिं	द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कायालापे सूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकायः इति वक्तव्यः।

चतुर्गतिनिगोदानां साधारणशरीरवनस्पतिकायिकवद्भंगः। तेषां बादराणां बादरसाधारणशरीरवनस्पतिकायिकवद्भंगः। तेषां चैव सूक्ष्माणां सभेदानां साधारणशरीरसूक्ष्मवनस्पतिकायिकवद्भंगः। नवरि चतुर्गतिनिगोदः इति वक्तव्यं साधारणशरीरेण सह। एवं नित्यनिगोदानामपि, नवरि अत्र नित्यनिगोद इति वक्तव्यं।

त्रसकायिकानां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, नव प्राणाः, सप्त प्राणाः, अष्ट प्राणाः, षड् प्राणाः, सप्त प्राणाः, पञ्च प्राणाः, षट् प्राणाः, चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ, एक प्राणः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः द्वीन्द्रियादयश्चत्वारो जातयः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः अकषायोऽप्यस्ति, अष्टौ ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>२३४</sup>।

निगोद" ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार नित्यनिगोद वाले जीवों के भी यहाँ पर "नित्य निगोद" ऐसा कहना चाहिए।

त्रसकायिक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—चौदहों गुणस्थान, दस जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नव प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, दो प्राण, एक प्राण, चारों संज्ञाएं तथा एक क्षीणसंज्ञा भी है। चारों गतियाँ, द्वीन्द्रिय जाति को आदि लेकर चार जातियाँ, त्रसकाय, पन्द्रहों योग तथा अयोगस्थान भी है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी, असंज्ञी तथा इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान भी है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

उन्हीं त्रसकायिक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उसमें से अपर्याप्त संबंधी सभी आलापों को छोड़ देना चाहिए अर्थात् केवल पर्याप्तप्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

उन्हीं त्रसकायिक जीवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापों के वर्णन में पर्याप्तसंबंधी सभी

नं. २३४

त्रसकायिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	१०	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१०, ७ ९, ७ ८, ६ ७, ५ ६, ४ ४, २, १	४ ४ क्षीणसं. क्षीणसं.	४ ४ क्षीणसं. क्षीणसं.	४ ४ क्षीणसं. क्षीणसं.	१ १ क्षीणसं. क्षीणसं.	१५ १५ क्षीणसं. क्षीणसं.	३ ३ क्षीणसं. क्षीणसं.	४ ४ क्षीणसं. क्षीणसं.	८ ८ क्षीणसं. क्षीणसं.	७ ७ क्षीणसं. क्षीणसं.	४ ४ क्षीणसं. क्षीणसं.	६ ६ क्षीणसं. क्षीणसं.	२ २ क्षीणसं. क्षीणसं.	६ ६ क्षीणसं. क्षीणसं.	२ २ क्षीणसं. क्षीणसं.	२ २ क्षीणसं. क्षीणसं.	२ २ क्षीणसं. क्षीणसं.

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*२३५।

एतेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा अपनेतव्याः\*२३६।

त्रसकायिकमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, नव प्राणाः, सप्त प्राणाः, अष्ट प्राणाः षट् प्राणाः, सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः, षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, द्वीन्द्रियादयश्चतस्रो जातयः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता

आलापों को छोड़कर कथन करना चाहिए।

त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर एक गुणस्थान, दश जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दश प्राण, सात प्राण, नव प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, द्वीन्द्रियादि चार जातियाँ, त्रसकाय, तेरह योग (आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना), तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन (चक्षु और अचक्षुदर्शन), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में अपर्याप्तसंबन्धी सभी आलाप छोड़ देना चाहिए।

नं. २३५

त्रसकायिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१४	५ द्वी.प. त्री.प. चतु.प. सं.प. असं.प.	६ ५	१० ९ ८ ७ ६ ४,१	४ क्षिप्रां.	४ द्वी. त्री. च. पं.	४ क्षिप्रां.	१ ११,म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१ अयोग.	३ उप्रा. अकषा.	४ उप्रा. अकषा.	८	१	१	१	द्र.६ भा.३ अले.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. २३६

त्रसकायिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५	५ मि. द्वी.अ. सा. त्री.अ. अ. च.अ. प्र. अ.अ. स. सं.अ.	६ अ.	७ ५ ५ ४ २	४ क्षिप्रां.	४ द्वी. त्री. च. पं.	४ क्षिप्रां.	१ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	३ उप्रा. अकषा.	४ उप्रा. अकषा.	६ विभं. मनः विना	४ असं. सामा. छेदो. यथा.	४	द्र. २ का. शू. भा.६	२ भ. अ.	५ मि. सा. औप. क्षा.	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.



अनाकारोपयुक्ता वा\*२३७।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*२३८।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*२३९।

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावदयोगिकेवली इति मूलौघभंगः।

अकायिकानां भण्यमाने सन्ति अतीतगुणस्थानानि, अतीतजीवसमासाः, अतीतपर्याप्तयः, अतीतप्राणाः, क्षीणसंज्ञा,

उन्हीं त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर पर्याप्तसंबन्धी सभी आलाप छोड़ कर वर्णन करना चाहिए।

उन त्रसकायिक सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों से लेकर अयोगकेवलीजिन चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवों तक के आलाप मूल ओघालाप के समान जानना चाहिए।

अकायिक जीवों के आलाप कहने पर—अतीत गुणस्थान ( गुणस्थान रहित अवस्था ), अतीत जीवसमास, अतीत पर्याप्ति, अतीत प्राण, क्षीणसंज्ञा, अतीत चतुर्गति, अतीन्द्रिय, अकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, संयम, असंयम और संयमासंयम इन तीनों विकल्पों

नं. २३७

त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१० द्वी.२ त्री.२ चतु.२ असं.२ सं.२	६प. ६अ. ८प. ६अ. ७, ५ ६, ४	१०, ७ ९, ७ ८, ६ ७, ५ ६, ४	४	४	४ द्वी. त्री. च. पं.	१ पुं.	१३ आ.द्वी. विना	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २३८

त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	५ द्वी.प. त्री.प. च.प. असं.प. सं.प.	६ ५ ९ ८ ७ ६	१० ९ ८ ७ ६	४	४	४ द्वी. त्री. च. पं.	१ पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २३९

त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	५ द्वी.अ. त्री.अ. च.अ. असं.अ. सं.अ.	६ अ. ५ अ. ४	७ ६ ५ ४	४	४	४ द्वी. त्री. च. पं.	१ पुं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	६ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

चतुर्गतिमतीतः, अनिन्द्रियः, अकायः, अयोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, नैव संयमो नैवासंयमो नैव संयमासंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्यभावाभ्यामलेश्याः, नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्ति\*२४०।

एवं त्रसकायिकनिवृत्तिपर्याप्तस्य मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदयोगिकेवली इति मूलौघभंगः।

त्रसकायिकलब्ध्यपर्याप्तानांऽस्त्येकं गुणस्थानं, पञ्च जीवसमासाः, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः, षट् प्राणाः पञ्च प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, द्वीन्द्रियादयश्चतस्रो जातयः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४१।

से रहित, केवलदर्शन, द्रव्य और भाव से अलेश्या अवस्था, भव्यत्व और अभव्यत्व से रहित, क्षायिक सम्यक्त्वं, संज्ञी-असंज्ञी दोनों विकल्पों से रहित, अनाहारक, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

इसी प्रकार त्रसकायिक निवृत्तिपर्याप्तक जीवों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के आलाप मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए।

त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, पाँच जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, सात प्राण, छह प्राण, पाँच प्राण, चार प्राण, चारों संज्ञाएँ, दो गति (तिर्यच और मनुष्यगति), दो इन्द्रिय आदिक चार जातियाँ, त्रसकाय, दो योग (औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग), नपुंसकवेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या एवं भाव से कृष्ण, नील, कापोत ये तीन

## नं. २४०

## अकायिक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
अतीतिगु.	अतीतिजी.	अतीतिप.	अतीतिप्रा.	अतीतिप्र.	अतीतिग.	अतीतिइं.	अतीतिका.	अतीतियो.	अतीतिवे.	अतीतिक.	अतीतिज्ञा.	अतीतिसंय.	अतीतिद.	अतीतिले.	अतीतिभ.	अतीतिस.	अतीतिसंज्ञि.	अतीतिआ.	अतीतिउ.
अतीतिगु.	अतीतिजी.	अतीतिप.	अतीतिप्रा.	अतीतिप्र.	अतीतिग.	अतीतिइं.	अतीतिका.	अतीतियो.	अतीतिवे.	अतीतिक.	अतीतिज्ञा.	अतीतिसंय.	अतीतिद.	अतीतिले.	अतीतिभ.	अतीतिस.	अतीतिसंज्ञि.	अतीतिआ.	अतीतिउ.
अतीतिगु.	अतीतिजी.	अतीतिप.	अतीतिप्रा.	अतीतिप्र.	अतीतिग.	अतीतिइं.	अतीतिका.	अतीतियो.	अतीतिवे.	अतीतिक.	अतीतिज्ञा.	अतीतिसंय.	अतीतिद.	अतीतिले.	अतीतिभ.	अतीतिस.	अतीतिसंज्ञि.	अतीतिआ.	अतीतिउ.

## नं. २४१

## त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	५ द्वी.अ. त्री.अ. च.अ. असं.अ. सं.अ.	६ अ ५ अ ४	७ ६ ५ ४	४	२ ति. म.	४ द्वी. त्री. च. पं.	१ अ. मि. कामं	२ औ. मि. कामं	१ नपुं.	४ कुम. कुशु.	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र. २ का. शु. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तात्पर्यमेतत्—मनुष्यदेहं संप्राप्त्य देहदेवालये विराजमानं स्वशुद्धपरमात्मनं शुद्धनिश्चयनयेन निश्चित्य व्यवहारनयेन तपश्चरणं कुर्वन् सन् कायं कृशीकुर्वन् एव स्वात्मा पुष्टीकर्तव्यो भवति।

एवं कायमार्गणायां एकोनत्रिंशत्कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणानियोगद्वारे आलापाधिकारे  
कायमार्गणानाम् तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य शरीर को प्राप्तकर देहरूपी देवालय में विराजमान निजशुद्ध परमात्मा को शुद्ध निश्चयनय से निश्चित करके व्यवहारनय से तपश्चरण करते हुए काय को कृश करते हुए ही अपनी आत्मा को पुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार कायमार्गणा में उनतीस कोष्ठकपूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा  
के अनुयोगद्वार में आलाप अधिकार में कायमार्गणा  
नामक तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।



## अथ योगमार्गणाधिकारः

मनोवाक्कायसंशुद्ध्या, स्वात्मानं भावयाम्यहं।

यतस्त्रियोगरोधेन, परमानन्दमाप्नुयाम् ॥१॥

योगानुवादेनानुवादो मूलौघवद् ज्ञातव्यः। नवरि विशेषस्त्रयोदश गुणस्थानानि सन्ति, किञ्च अयोगिगुणस्थानं अतीतगुणस्थानं च नास्ति, ततो ज्ञात्वा मूलौघालापा वक्तव्याः।

अत्र योगमार्गणायां त्रिपञ्चाशत्कोष्ठकानि उच्यन्ते—

मनोयोगिनां जीवानां भण्यमाने सन्ति त्रयोदश गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः। केऽप्याचार्या वचनकायप्राणौ दशप्राणेष्व्योऽपनयन्ति, तत्र घटते, तयोर्द्वयोः प्राणयोर्योऽप्युत्तमस्तः। तथैव वचनकायबलनिमित्त-पुद्गलस्क्वधस्यास्तित्वं दृष्ट्वा पूर्वोक्त द्वे पर्याप्ती भवतः इति कायवचनपर्याप्ती स्तः। चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यन्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>\*२४२</sup>।

**अब योगमार्गणाधिकार प्रारंभ होता है**

**श्लोकार्थ**—मन, वचन एवं काय की शुद्धिपूर्वक मैं अपनी आत्मा की भावना करता हूँ।  
**पुनः** इन तीनों योगों की प्रवृत्ति रोककर परमानन्द स्वरूप शुद्धात्मा को प्राप्त करना है॥१॥

योगमार्गणा के अनुवाद से आलापों का कथन मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि यहाँ पर तेरह गुणस्थान ही होते हैं। क्योंकि यहाँ अयोगिगुणस्थान और अतीतगुणस्थान नहीं होता है ऐसा जानकर मूल ओघालाप कहना चाहिए।

यहाँ योगमार्गणा में त्रेपन ( ५३ ) कोष्ठक कहे जाते हैं—

अब सर्वप्रथम मनोयोगी जीवों के आलाप कहने पर—तेरह गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय ), छहों पर्याप्तियाँ और दशों प्राण होते हैं। कितने ही आचार्य मनोयोगियों के दश प्राणों में से वचन और काय प्राण कम कर देते हैं किन्तु उनका ऐसा कथन करना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि मनोयोगी जीवों के वचनबल और कायबल के निमित्तभूत पुद्गलस्कंध का अस्तित्व देखा जाने से उनके वे दोनों पर्याप्तियाँ भी पाई जाती हैं इसीलिए उक्त दोनों पर्याप्तियाँ भी उनके बन

नं. २४२

## मनोयोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ अयो. विना.	१ सं. प.	६	१०	४ क्षीणसं.	४	१ पंच.	१ त्रसं.	४ मनो.	३ अपा.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

मनोयोगिमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४३।

मनोयोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४४।

जाती हैं। प्राणप्ररूपणा के आगे उनके चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है। चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चार मनोयोग (सत्य, असत्य, उभय और अनुभयमनोयोग), तीनों वेद और अपगतवेदस्थान भी है। चारों कषाय और अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहितस्थान भी है। आहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

मनोयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग,

### नं. २४३

### मनोयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पुं	१ पुं	४ मनो.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. २४४

### मनोयोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा. प.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पुं	१ पुं	४ मनो.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

मनोयोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रःसंज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शनं, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४५।

मनोयोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षट् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४६।

तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीनों सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक और

नं. २४५

मनोयोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	४	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
सं.	सं.					पुं.	पुं.	मनो.			ज्ञान.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	पुं.	सं.	आहार	साकार
प.	प.										अज्ञा.		अच.						अनाकार
											मिश्र.								

नं. २४६

मनोयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	४	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.	सं.					पुं.	पुं.	मनो.			मति.	असं.	के.द.	भा.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
प.	प.										श्रुत.		विना.		क्षायो.				अनाकार
											अव.								

मनोयोगिसंयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४७।

मनोयोगि-प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो मनोयोगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२४८।

क्षायोपशमिक), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

मनोयोगी संयतासंयतगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक पंचम गुणस्थान, एक जीवसमास (संज्ञी पर्याप्तक), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गतियाँ (तिर्य्यचगति और मनुष्यगति), पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या तथा भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

मनोयोगी प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक छठा गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, तीन संयम (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या एवं भाव से पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन

नं. २४७

मनोयोगी संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	४	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.	सं.				ति.	पुं.	पुं.	मनो.			मति.	देश.	के.द.	भा.३	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
प.	प.				म.	म.	म.				श्रुत.		विना.	शुभ.	क्षायो.				अनाकार
											अव.								

नं. २४८

मनोयोगी प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	४	३	४	४	३	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.	सं.				म.	पुं.	पुं.	मनो.			मति.	सामा.	के.द.	भा.३	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
प.	प.					म.	म.				श्रुत.	छेदो.	विना.	शुभ.	क्षायो.				अनाकार
											अव.	परि.							
											मनः								

मनोयोगि-अप्रमत्तसंयतप्रभृति यावत्सयोगिकेवलीति तावन्मूलौघभंगः। नवरि चत्वारो मनोयोगाः वक्तव्याः। सयोगिकेवलिनः सत्यमनोयोगः असत्यमृषामनोयोगः इति द्वौ मनोयोगौ वक्तव्यौ।

सत्यमनोयोगिनां मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्सयोगिकेवलीति तावन्मूलौघभङ्गः। नवरि सत्यमनोयोग एक एव वक्तव्यः।  
एवमसत्यमृषामनोयोगिनामपि, नवरि असत्यमृषामनोयोग एकश्चैव वक्तव्यः।

मृषामनोयोगिनां भण्यमाने सन्ति द्वादश गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, मृषामनोयोगः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति केवलज्ञानेन विना सप्त ज्ञानानि, सप्त संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*२७९</sup>।

एषां मृषामनोयोगिनां मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् क्षीणसंज्ञा कषाया इति तावत् मनोयोगिवद्भंगः। विशेषेण एक

लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं। मनोयोगी अप्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थानपर्यन्त जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान ही हैं। विशेष बात यह है कि योग आलाप कहते समय बारहवें गुणस्थान तक चारों ही मनोयोग कहना चाहिए किन्तु सयोगकेवली के सत्यमनोयोग और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय मनोयोग ये दो ही मनोयोग कहना जानना चाहिए।

सत्यमनोयोगी जीवों के आलाप मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक मूल ओघालापों के समान हैं। विशेष बात यह है कि योगआलाप के कथन में उनके एक सत्य मनोयोग आलाप ही कहना चाहिए। इसी प्रकार से असत्यमृषा अर्थात् अनुभय मनोयोगियों के भी आलाप होते हैं। विशेष बात यह है कि योग आलाप कहते समय एक असत्यमृषा मनोयोग आलाप ही कहना चाहिए।

मृषामनोयोगी जीवों के आलाप कहने पर—आदि के बारह गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है। चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, मृषामनोयोग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है। केवलज्ञान के बिना सात ज्ञान, सातों संयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. २४९

## मृषा मनोयोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२	१	६	१०	४	४	१	१	१	३	४	७	७	३	द्र.६	२	६	१	१	२
सयो. अयो. विना.	सं. प.					प्रिः त्रः		मृषा.	अयोग्.	अक्षः के.ज्ञा. विना.			के.द. विना.	भा.६	भ. अ.		सं.	आहार	साकार अनाकार



वचनयोगिनां भण्यमाने सन्ति त्रयोदश गुणस्थानानि, पञ्च जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः, दश प्राणा नव प्राणा अष्टौ प्राणाः सप्त प्राणाः षट् प्राणाः, मनःशरीरपर्याप्तिभ्यां उत्पन्नशक्तयः शरीर मनोबलप्राणाः उच्यन्ते। ता अपि शक्तयः उत्पन्नसमयतो यावद् जीवित चरमसमय इति तावन्न विनश्यन्ति। येन मनोवचनकाययोगाः प्राणेषु न गृहीतास्तेन वचनयोगनिरुद्धेऽपि दश प्राणा भवन्ति। चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, द्वीन्द्रियजात्यादयश्चतस्रो जातयः, त्रसकायः, चत्वारो वचनयोगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदेऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः नैवं संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२५०।

आगे वचनयोगी जीवों के आलाप कहने पर—तेरह गुणस्थान ( मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यंत ), पाँच जीवसमास ( द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव संबंधी पाँच पर्याप्त जीवसमास ), छहों पर्याप्ति, पाँच पर्याप्तियाँ, दश प्राण, नौ प्राण, आठ प्राण, सात प्राण, छह प्राण होते हैं। मनःपर्याप्ति और शरीरपर्याप्ति से उत्पन्न हुई शक्तियों को मनोबलप्राण और कायबलप्राण कहते हैं। वे शक्तियाँ भी उनके उत्पन्न होने के प्रथम समय से लेकर जीवन के अंतिम समय तक नष्ट नहीं होती हैं और जिस कारण से मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग प्राणों में नहीं ग्रहण किये गये हैं, इसलिए वचनयोगियों के वचनयोग से निरुद्ध अर्थात् युक्त अवस्था के होने पर भी दशों प्राण होते हैं। प्राण आलाप के आगे चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी हैं। चारों गतियाँ, दो इंद्रिय जाति आदि चार जातियाँ, त्रसकाय, चारों वचनयोग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी हैं, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी हैं, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान भी हैं। आहारक, साकारोपयोग, अनाकारोपयोगी तथा साकार-अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

## वचनयोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	का.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३	५ द्वी.प. त्री.प. चतु.प. असं.प. सं.प.	६  ५	१० ९ ८ ७ ६	४  स्त्रीपुंस.	४	४  स्त्री. त्री. व. पं.	१  त्रस.	४  वच	३  अपा.	४  अकषा.	८	७	४	द्र. ६ भा. ६	२  भ. अ.	६	२  सं. असं. अनु.	१  आहार	२  साकार अनाकार यु. उ.

सासादानसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्सयोगिकेवलीति तावन्मनोयोगिवद् भंगः। नवरि चत्वारो वचनयोगा वक्तव्याः। सयोगिकेवलिनः सत्यवचनयोगोऽसत्यमृषावचनयोगश्च भवति। सत्यवचनयोगस्य सत्यमनोयोगवद्भंगः। केवलं यत्र सत्यमनोयोगस्तत्र तमपनीय सत्यवचनयोगो वक्तव्यः। मृषावचनयोगस्यापि मृषामनोयोगवद्भंगः। नवरि मृषावचनयोगो वक्तव्यः। एवं सत्यमृषावचनयोगस्यापि वक्तव्यं। असत्यमृषावचनयोगस्य वचनयोगवद्भंगः। नवरि असत्यमृषावचनयोग एकश्चैव वक्तव्यः।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक के वचनयोगी जीवों के आलाप मनोयोगी जीवों के आलापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि वचनयोग आलाप कहते समय चार वचनयोग कहना चाहिए। सयोगकेवली जिन के सत्यवचनयोग और असत्यमृषावचनयोग ये दो ही वचनयोग होते हैं। सत्यवचनयोग के आलाप सत्यमनोयोग के आलापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि जहाँ सत्यमनोयोग कहा गया है वहाँ उसे निकालकर सत्यवचनयोग कहना चाहिए। मृषावचनयोग के आलाप भी मृषामनोयोग के आलापों के समान होते हैं। विशेषता यह है कि मृषा मनोयोग के स्थान पर मृषावचनयोग कहना चाहिए। इसी प्रकार से सत्यमृषावचनयोग के भी आलाप जानना चाहिए। अर्थात् उभयवचनयोग के आलाप सत्यमृषामनोयोग के आलापों के समान जानना चाहिए। असत्यमृषावचनयोग के आलाप वचनयोग सामान्य के आलापों के समान होते हैं। विशेषता यह है कि असत्यमृषावचनयोग आलाप कहते समय एक असत्यमृषावचनयोग ही कहना चाहिए।

## वचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	पट्टी.प. त्री.प. च.प. असं.प. सं.प.	६ ५  ७ ६	१० ९ ८ ७ ६	४    	४    	४ द्वी. त्री. च. पं.	१ प्रूँ वच	४ वच	३    	४    	३ अज्ञा.	१ असं	२ चक्षु. अच.	द्र. ६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

काययोगिनां भण्यमाने सन्ति त्रयोदश गुणस्थानानि, चतुर्दशजीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, नव प्राणाः सप्त प्राणाः, अष्टौ प्राणाः, षट् प्राणाः, सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः, षट् प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, त्रयः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट्कायाः, सप्त काययोगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२५२।

तेषामेव पर्याप्तानां अपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणाः अपनेतव्याः\*२५३।

काययोगी जीवों के आलाप कहने पर—आदि के तेरह गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चार प्राण, दो प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, सातों काययोग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

उन्हीं काययोगी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में अपर्याप्त संबंधी आलाप छोड़कर कथन करना चाहिए।

नं. २५२

काययोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०, ७ ९, ७ ८, ६ ७, ५ ६, ४ ४, ३ ४, २	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	५ ५ ५ ५ ५ ५ ५	६ ६ ६ ६ ६ ६ ६	७ ७ ७ ७ ७ ७ ७	३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	८ ८ ८ ८ ८ ८ ८	७ ७ ७ ७ ७ ७ ७	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६ ६ ६ ६ ६ ६ ६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. २५३

काययोगी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४, ४	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	५ ५ ५ ५ ५ ५ ५	६ ६ ६ ६ ६ ६ ६	६ वै.मि. विना. अथ. ३	३ अप्रा. अप्रा. अप्रा. अप्रा.	४ अकषा. अकषा. अकषा. अकषा.	८ ८ ८ ८ ८ ८ ८	७ ७ ७ ७ ७ ७ ७	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६ ६ ६ ६ ६ ६ ६	२ सं. असं. अनु.	२ आहार अनाहार अथ. आहा.	२ साकार अनाकार यु.उ.

काययोगिमिथ्यादृष्टीना भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चतुर्दश जीवसमासाः, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, नव प्राणाः सप्त प्राणाः, अष्ट प्राणाः षट् प्राणाः, सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः, षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः,

अब काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रियादि

## काययोगी जीवों के अपर्याप्त आलाप

[illegible]

चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट्कायाः, आहारकद्विकेन विना पञ्च योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२५५।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*२५६।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा कथयितव्याः\*२५७।

पाँच जातियाँ, पृथिवीकायादि षट्काय, आहारकद्विक के बिना पाँच योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीन अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी एवं अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर उनमें केवल पर्याप्तक प्ररूपणाएं ही लेना चाहिए और अपर्याप्तप्ररूपणाओं को निकाल देना चाहिए।

इसी प्रकार उन काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों के वर्णन में

### नं. २५५ काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०, ७ १, ७ ८, ६ ७, ५ ६, ४ ४, ३	४	४	५	६	५ औ.२ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ कुं. कुं. कुं.	२ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. २५६ काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७	४	४	५	६	२ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ कुं. कुं. कुं.	२ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. २५७ काययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अपर्या.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

काययोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्येन भण्यमाने योगेषु पञ्चयोगाः, शेषा आलापाः पूर्ववत् कथयितव्याः\*२५८।  
 एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने द्वौ योगौ — औदारिकवैक्रियिकनामानौ, शेषा आलापाः पूर्ववत् वक्तव्याः\*२५९।  
 तेषामेवापर्याप्तानां त्रयो योगाः वक्तव्याः शेषं पूर्ववत् वक्तव्यं\*२६०।

केवल अपर्याप्त प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य से आलाप कहने पर योगमार्गणा में केवल पाँच योग होते हैं, शेष आलाप पूर्ववत् कहना चाहिए।

उन्हीं काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनके दो योग — औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग होते हैं, शेष आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन्हीं काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनके तीन योग ( औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ) कहना चाहिए, शेष सभी आलाप पूर्ववत् होते हैं।

नं. २५८

काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६प.	१०	४	४	१	१	५	३	४	३	१	२	६	१	१	१	२	२
सा.	सं.प.	६अ.	७			पुं.	पुं.	औ.२			अज्ञा.	असं.	पुं.	द्र.६	भ.	पुं.	सं.	आहार	साकार
	सं.अ.							वै.२					कुं.	भा.६				अनाहार	अनाकार
								का.१					कुं.						

नं. २५९

काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	२	३	४	३	१	२	६	१	१	१	१	२
सा.	सं.प.					पुं.	पुं.	औ.१			कुम.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	सा.	सं.	आहार	साकार
								वै.१			कुश्रु.		अच.					अनाहार	अनाकार
											विभं.								

नं. २६०

काययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	३	१	६	३	३	४	२	१	२	२	१	१	१	२	२
सा.	सं.अ.	अ.			ति.	पुं.	पुं.	औ.मि			कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	सा.	सं.	आहार	साकार
					म.			वै.मि.			कुश्रु.		अच.	शु.				अनाहार	अनाकार
					दे.			कर्म.						भा.६					

काययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वौ योगौ, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६१।

काययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्च योगाः, त्रयोवेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६२।

काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक तृतीय गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, दो योग, तीनों वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ल लेश्या तथा भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक (चतुर्थ) गुणस्थान, दो जीवसमास (संज्ञी पर्याप्त एवं संज्ञी अपर्याप्त), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, पाँच योग (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग), तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन (प्रारंभिक), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व (औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक), संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. २६१

काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	२	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
सं.प.	सं.प.					पिं.	पिं.	औ.१ वै.१			ज्ञान. ३ अज्ञा. मिश्र.	असं.	चक्षु. अचक्षु.	भा.६	भ.	पिं.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. २६२

काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	४	१	१	५	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	२	२
वि. लि.	सं.प. सं.अ.	प ६ अ.	७			पिं.	पिं.	औ.२ वै.२ का.१			मति. श्रुत. अव.	असं.	के.द. विना.	भा.६	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार अनाहार	साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां अपर्याप्तसंबंधिन आलापा अपनेतव्याः\*२६३।

तेषामेवापर्याप्तानां पर्याप्तसंबंधिन आलापा अपनेतव्याः\*२६४।

काययोगि-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रःसंज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षट् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६५।

उन्हीं काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें से अपर्याप्तकालीन संभवित सभी प्ररूपणाओं को निकाल देना चाहिए।

उन्हीं काययोगी चतुर्थगुणस्थानवर्ती अपर्याप्त जीवों के आलाप कहते समय उनमें से सभी पर्याप्त प्ररूपणाओं का कथन छोड़ देना चाहिए।

काययोगी संयतासंयत गुणस्थान वाले जीवों के आलापों का वर्णन करने पर—

एक ( पंचम ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, तिर्यचगति और मनुष्यगति ये दो गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, औदारिककाययोग,

नं. २६३

काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ वि. क.	२ सं.प.	६	१०	४	४	१ पुं.	१ पुं.	२ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २६४

काययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.उ.	
१ वि. क.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.२ का. शु. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. २६५

काययोगी संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ वि. क.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पुं.	१ पुं.	१ औ.	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



काययोगिप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं, द्वौ जीवसमासौ, षट्पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिक-आहार-आहारमिश्रयोगाः इति त्रयो योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्य भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६६।

काययोगि-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः तिस्रः संज्ञाः आहारसंज्ञया विना, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६७।

तीनों वेद, चारों कषाय, तीन ज्ञान ( आदि के ), संयमासंयम, तीन दर्शन ( प्रारंभिक ), द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवों के आलाप कहने पर—एक ( छठा ) गुणस्थान, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक और संज्ञी अपर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, तीनयोग ( औदारिक, आहारक एवं आहारक मिश्रकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, चार ज्ञान ( आदि के ), तीन संयम ( सामाधिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ), तीन दर्शन ( आदि के ), द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से पीत, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती काययोगी जीवों के आलाप कहने पर—एक ( सप्तम ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, तीन संज्ञाएं ( आहारक संज्ञा के

नं. २६६

काययोगी प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ प्र.	१ प्र.	३ औ.१ आहा.२	३	४	४ केव. विना.	३ सामा. छेदो. परि.	३ के.द. विना.	६.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २६७

काययोगी अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र.	१ सं.प.	६ प.	१०	३ विना. आहा.	१ म.	१ प्र.	१ प्र.	१ औ.	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मन.	३ सामा. छेदो. परि.	३ के.द. विना.	६.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

औदारिककाययोगिनां भण्यमाने सन्ति त्रयोदश गुणस्थानानि, सप्त जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः, दश प्राणाः नव प्राणाः, अष्टौ प्राणाः सप्त प्राणाः, षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति द्वे गती, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्चजातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, औदारिककाययोगः,

औदारिककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—तेरह गुणस्थान, सात जीवसमास ( पर्याप्तक जीवों के सात पर्याप्त जीवसमास ), छहों पर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्ति, चार पर्याप्ति, दशों प्राण, नौ प्राण, आठ प्राण, सात प्राण, छह प्राण, चार प्राण और चार प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान

## काययोगी केवली जिन के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ स्यो.	१ प. २ प.अ.	६	४ २	० क्षीणसं.	१ म.	१ पंच.	१ त्रसं.	३ औ. २ कर्म. १	० अपग.	० अकषा.	१ के.	१ यथा.	१ के.द.	६.६ भा. १ शुक्ल.	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, नैव संज्ञिनो, नैवासंज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२६९।

औदारिककाययोगि-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं, गुणस्थानं, सप्त जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः, दश प्राणा नव प्राणाः अष्ट प्राणा, सप्त प्राणाः षट् प्राणाः, चत्वारः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२७०।

भी है, दो गति ( तिर्यच एवं मनुष्य ), एकेन्द्रियजाति आदि पाँच जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, औदारिककाययोग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा साकार-अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान, सात जीवसमास ( पर्याप्त संबंधी ), छहों पर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, नौ प्राण, आठ प्राण, सात प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गति, एकेन्द्रियजाति आदि पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, औदारिककाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक,

नं. २६९

औदारिक काययोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ मि. अ.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४,४	४ सं. क्षि. म.	२ ति. म.	५	६	१ औ.	३ अप्रा.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. २७०

औदारिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	२ ति. म.	५	६	१ औ.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

औदारिककाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२७१।

औदारिककाययोगि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैः मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२७२।

अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिककाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिककाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. २७१ औदारिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	१	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
सा.	सं.प.				ति.	पुं.	पुं.	औ.			अज्ञा.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	पुं.	सं.	आहार	साकार
					म.	पुं.	पुं.						अच.						अनाकार

नं. २७२ औदारिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	१	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
पुं.	सं.प.				ति.	पुं.	पुं.	औ.			ज्ञान.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	पुं.	सं.	आहार	साकार
					म.	पुं.	पुं.				अज्ञा.		अच.						अनाकार
											मिश्र								

औदारिककाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिककाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२७३।

एषामेवौदारिककाययोगिनां संयतासंयतादि-सयोगिकेवलपर्यन्तानां काययोगिवद्भंगो ज्ञातव्यः। नवरि सर्वत्र औदारिककाययोग एकश्चैव वक्तव्यः। सयोगिकेवलिनश्च पर्याप्ता आहारिण इति भणितव्याः।

औदारिकमिश्रकाययोगिनां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, सप्त जीवसमासाः,

कश्चिदाशंकते—सयोगी भगवान् केवली संज्ञ्यसंज्ञिभ्यां व्यतिरिक्त इति तेन सयोगिकेवलिना जीवसमासेन भवितव्यम् ?

आचार्यः समाधत्ते—नैतद् वक्तव्यं, सयोगिकेवलिनो द्रव्यमनसोऽस्तित्वं भावगतभूतपूर्वन्यायं चाश्रित्य संज्ञित्वाभ्युपगमात्। अथवा पृथिव्यप्तेजोवायु-प्रत्येक-साधारणशरीर-त्रस-पर्याप्तापर्याप्त-चतुर्दशजीवसमासानां

असंयतगुणस्थानवर्ती औदारिककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिककाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्या, भव्यत्व, तीन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं औदारिककाययोगी जीवों के संयतासंयत गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक के आलाप काययोगी जीवों के आलापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि सर्वत्र योग आलाप कहते समय एक औदारिककाययोग ही कहना चाहिए और सयोगकेवली के जीवसमास कहते समय पर्याप्तक जीवसमास तथा आहार आलाप कहते समय आहारक इस प्रकार कहना चाहिए।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—चार गुणस्थान ( मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि और सयोगकेवली ) तथा सात जीवसमास होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—

सयोगकेवली भगवान् संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों व्यपदेशों से रहित हैं, इसलिए सयोगीजिन को अतीत जीवसमास वाला होना चाहिए ?

इस शंका का आचार्य समाधान देते हैं—

### नं. २७३ औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	१	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.प.	सं.प.				ति. म.	पं.	पं.	औ.			मति. श्रुत. अव.	असं.	के.द. विना.	भा.६	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

सप्तापर्याप्तजीवसमासेषु सयोगिसत्त्वाभ्युपगमात्। एषोऽर्थः सर्वत्र वक्तव्यः।

षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः षट् प्राणाः पञ्च प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः द्वौ प्राणौ, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, द्वे गती, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः पृथिवीकायादयः षट् कायाः, औदारिकमिश्रकाययोगः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, विभंगज्ञान-मनःपर्ययज्ञानाभ्यां बिना षट् ज्ञानानि, यथाख्यातशुद्धिसंयमः, असंयमश्चेति, द्वौ संयमौ, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतलेश्याः।

किं कारणम् ?

मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टीनां औदारिकमिश्रकाययोगे वर्तमानानां शरीरस्य कापोतलेश्या एव भवति, षड्वर्णौदारिकपरमाणूनां धवलविस्त्रसोपचयसहित-षड्वर्णकर्मपरमाणुभिः सह मिलितानां कापोतवर्णोपपत्तेः।

कपाटगत-सयोगिकेवलिनोऽपि शरीरस्य कापोतलेश्या चैव भवति। अत्रापि कारणं पूर्ववद् वक्तव्यं। सयोगिकेवलिनः पूर्वोक्तशरीरं षड्वर्णं यद्यपि भवति तर्हिपि तत्र गृह्यते, कपाटगतकेवलिनोऽपर्याप्तयोगे वर्तमानस्य पूर्वोक्तशरीरेण सह

ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि सयोगकेवली के द्रव्यमन का अस्तित्व और भावमनोगत पूर्वगति अर्थात् भूतपूर्व न्याय के आश्रय से संज्ञीपना माना गया है। अथवा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिक, साधारणशरीरवनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्तसंबंधी चौदह जीवसमासों में से सात अपर्याप्त जीवसमासों में कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातगत सयोगकेवली का सत्त्व माना जाने से उन्हें अतीत जीवसमासवाला नहीं कहा जा सकता है। यही अर्थ सर्वत्र कहना चाहिए।

जीवसमास आलाप के आगे छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, सात प्राण, छह प्राण, पाँच प्राण, चार प्राण, तीन प्राण और सयोगकेवली के कपाटसमुद्घात के काल में दो प्राण होते हैं। चारों संज्ञाएं और क्षीणसंज्ञास्थान भी है। दो गतियाँ, एकेन्द्रियजाति आदि पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, औदारिकमिश्रकाययोग, तीनों वेद एवं अपगतवेदस्थान भी है। चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है। विभंगज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान के बिना छहों ज्ञान, यथाख्यातशुद्धिसंयम और असंयम ये दो संयम, चारों दर्शन और द्रव्य से कापोतलेश्या होती है।

शंका — द्रव्य से एक कापोतलेश्या ही होने का क्या कारण है ?

समाधान — औदारिकमिश्रकाययोग में वर्तमान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के शरीर की कापोतलेश्या ही होती है क्योंकि धवलविस्त्रसोपचय सहित छहों वर्णों के कर्म परमाणुओं के साथ मिले हुए छहों वर्ण वाले औदारिकशरीर के परमाणुओं के कापोतवर्ण की उत्पत्ति बन जाती है, इसलिए औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों के द्रव्य से एक कापोतलेश्या ही होती है।

कपाटसमुद्घातगत सयोगकेवली के शरीर की भी कापोतलेश्या ही होती है। यहाँ पर भी पूर्व के समान ही कारण कहना चाहिए। यद्यपि सयोगकेवली के पहले का शरीर छहों वर्ण वाला होता है, तथापि वह यहाँ नहीं ग्रहण किया गया है, क्योंकि अपर्याप्तयोग में वर्तमान कपाटसमुद्घातगत सयोगकेवली का पहले के शरीर के साथ संबंध नहीं रहता है। अथवा पहले के छह वर्ण वाले शरीर का आश्रय लेकर उपचार से द्रव्य की अपेक्षा सयोगकेवली के छहों

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. अ. स.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३,२	४ क्षिप्रः	२ ति. म.	५	६	४ औ.मि.	३ अपा:	४ अकषा:	६ विभं. मनः विना	२ असं. यथा.	४	द्र. १ का. भा.६	२ भ. अ.	४ मि. सा. क्षा. क्षायो.	२ सं. असं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार

औदारिकमिश्रकाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिकमिश्रकाययोगः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतलेश्या, भावेन षड् लेश्याः, यथा देवमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः तेजःपद्मशक्तलेश्यासु वर्तमाना नष्टलेश्या भूत्वा तिर्यगमनुष्येषु उत्पद्यमाना उत्पन्नप्रथमसमये एव कृष्णनीलकापोतलेश्याभिः

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक (चतुर्थ) गुणस्थान, एक जीवसमास (संज्ञी अपर्याप्तक), छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्रकाययोग, पुरुषवेद, चारों कषाय, तीन ज्ञान (आदि के), असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोतलेश्या और भाव से छहों लेश्याएं होती हैं।

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४ ति. म.	२	५	६	१ औ.मि.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ द्र. १ का. भा. ३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार	

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ ति. म.	१ पुं.	१ पुं.	१ औ.मि.	३	४	२ कुम.	१ असं. कुश्र.	२ चक्षु. अच.	द्र.१ का. भा.३ अशु.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



सह परिणमन्ति सम्यग्दृष्टयस्तथा न परिणमन्ति, अन्तर्मुहूर्तपर्यंतं पूर्वभवसंबंधिलेश्याभिः सह स्थित्वान्यलेश्यां गच्छन्ति।

अस्य किं कारणम् ?

सम्यग्दृष्टिजीवानां बुद्धिस्थितपरमेष्ठिनां मिथ्यादृष्टिजीवानामिव मरणकाले संक्लेशाभावात्।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकायां—

“सम्माइट्ठीणं बुद्धिट्ठियपरमेट्ठीणं मिच्छाइट्ठीणं मरणकाले संकिलेसाभावादो<sup>१</sup>।”

नारकसम्यग्दृष्टयः पुनः चिरंतनलेश्याभिः सह मनुष्येषु उत्पद्यन्ते।

किं कारणम् ?

जातिविशेषेण संक्लेशाधिक्यात्। अस्यायमभिप्रायः नारका जीवास्तत्र नरकगतौ स्वभावतः अतीव संक्लिष्टाः भवन्ति अतस्ते मरणकालेऽपि ताः अशुभलेश्या मोक्तुं न क्षमा भवन्तीति।

यहाँ भाव से छहों लेश्याएं होने का कारण यह है कि जिस प्रकार तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओं में वर्तमान मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव तिर्यच एवं मनुष्यों में उत्पन्न होते समय नष्टलेश्या होकरके अर्थात् अपनी-अपनी पूर्व शुभ लेश्याओं को छोड़कर ( तिर्यच और मनुष्यों में ) उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही कृष्ण, नील और कापोत लेश्यारूप से परिणत हो जाते हैं, उस प्रकार से सम्यग्दृष्टि देव अशुभ लेश्यारूप से नहीं परिणत होते हैं किन्तु तिर्यच और मनुष्यों में उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक पूर्वभव की लेश्याओं के साथ रहकर पीछे अन्य लेश्याओं को प्राप्त होते हैं अतएव यहाँ पर छहों लेश्याएं बन जाती हैं।

**शंका** —तिर्यच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि देव अन्तर्मुहूर्त तक अपनी पहली लेश्याओं को नहीं छोड़ते हैं, इसका क्या कारण है ?

**समाधान** —इसका कारण यह है कि बुद्धि में स्थित है परमेष्ठी जिनके अर्थात् परमेष्ठी के स्वरूप चिन्तन में जिनकी बुद्धि लगी हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टि देवों के मरण काल में मिथ्यादृष्टि देवों के समान संक्लेश नहीं पाया जाता है। इसलिए अपर्याप्तकाल में उनकी पहले की शुभलेश्याएं ज्यों की त्यों बनी रहती हैं।

श्रीवीरसेनाचार्य ने धवलाटीका में कहा भी है—

“मरण के समय मिथ्यादृष्टियों को जिस प्रकार संक्लेश होता है उसी प्रकार जिनकी बुद्धि में परमेष्ठी स्थित हैं उन सम्यग्दृष्टि देवों को मरण के समय संक्लेश नहीं होता है।”

सम्यग्दृष्टि नारकी अपनी पुरानी चिरन्तन लेश्याओं के साथ ही मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

**शंका** —सम्यग्दृष्टि नारकी जीव मरते समय अपनी पुरानी कृष्ण आदि अशुभ लेश्याओं को क्यों नहीं छोड़ते हैं ?

**समाधान** —इसका कारण यह है कि नारकी जीवों के जातिविशेष से ही अर्थात् स्वभावतः संक्लेश की अधिकता होती है, इस कारण मरणकाल में भी वे उन्हें नहीं छोड़ सकते हैं।

लेश्या आलाप के आगे भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व, संज्ञी,

भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारेभ्युक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>२७७</sup>।

औदारिकमिश्रकाययोगि-सयोगिकेवलिनां अस्ति एकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, आयुःकायबलप्राणौ द्वावेव स्तः, पंचेन्द्रियप्राणा न सन्ति, क्षीणावरणे तेषां क्षयोपशाभावात् क्षयोपशमलक्षणभावेन्द्रियाभावात्। न च द्रव्येन्द्रियेण इह प्रयोजनमस्ति, अपर्याप्तकाले पञ्चेन्द्रियप्राणानामस्तित्वप्रतिपादनसत्प्ररूपणासूत्रदर्शनात्। मनोवचन-उच्छ्वासप्राणा अपि तत्र न सन्ति, मनो-वचन-उच्छ्वासपर्याप्तिरसंज्ञितपुद्गलस्कंधनिर्वर्तित-स्वप्राणसंयुक्तशक्तीनां कपाटगतकेवलिनि अभावात्। अथवा समुद्घातगतकेवलिनां वचनबलश्वासोच्छ्वासप्राणयोः कारणभूतवचन-श्वासोच्छ्वासपर्याप्ती स्तः इति पुनः उपरिमषष्ठसमयादारभ्य वचनबलश्वासोच्छ्वासप्राणयोः सद्भावो भवति अतः केवलिनां चत्वारोऽपि प्राणा भवन्ति।

क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिकमिश्रकाययोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं,

आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवलीजिन के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान ( तेरहवाँ ), एक जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, आयु और कायबल ये दो प्राण होते हैं किन्तु पाँच इन्द्रिय प्राण नहीं होते हैं क्योंकि जिनके ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे क्षीणावरण सयोगिकेवली में आवरण कर्मों का क्षयोपशम नहीं पाया जाता है, इसलिए उनके क्षयोपशम लक्षण भावेन्द्रियाँ भी नहीं पाई जाती हैं तथा इन्द्रिय प्राणों में द्रव्येन्द्रियों से प्रयोजन नहीं है क्योंकि अपर्याप्तकाल में पाँचों इन्द्रिय प्राणों के अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाला सत्प्ररूपणा का सूत्र देखा जाता है। मनोबलप्राण, वचनबलप्राण और स्वासोच्छ्वासप्राण भी औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली के नहीं होते हैं क्योंकि मनःपर्याप्ति, वचनपर्याप्ति और आनापानपर्याप्ति संज्ञिक पौद्गलिक स्कन्धों से निर्मित स्वप्राण संज्ञाओं से अर्थात् मनः वचन और स्वासोच्छ्वास प्राणों से संयुक्त शक्तियों का कपाट समुद्घातगत केवली में अभाव पाया जाता है अथवा समुद्घातगत केवली के वचनबल और स्वासोच्छ्वास प्राणों की कारणभूत वचन और आनापान पर्याप्तियाँ पाई जाती हैं इसलिए लोकपूरण समुद्घात के अनन्तर होने वाले प्रतरसमुद्घात के पश्चात् उपरिम छठे समय से लेकर आगे वचनबल और स्वासोच्छ्वास प्राणों का सद्भाव हो जाता है इसलिए सयोगिकेवली के आहारकमिश्रकाययोग में चार प्राण भी होते हैं।

प्राण आलाप के आगे क्षीणसंज्ञास्थान, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिक-मिश्रकाययोग, अपगतवेदस्थान, अकषायस्थान, केवलज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम,

नं. २७७

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	२	१	१	१	१	४	३	१	३	द्र.१	१	२	१	१	२
वि.	सं.अ	अ.			ति.	पुं.	पुं.	औ.मि.	पुं.		मति.	असं.	के.द.	का.	भ.	क्षा.	सं.	आहार	साकार
अवि.					म.	पुं.	पुं.		पुं.		श्रुत.		विना.	भा.६		क्षायो.			अनाकार
											अव.								

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण कापोतलेश्या।

अत्र कश्चिदाशंकते-मूलशरीरस्य षट् लेश्याः सन्ति ता अत्र किन्नोच्यन्त इति चेत् ?

नोच्यन्ते, चतुर्दशरज्जु-आयामेन सप्तरज्जुविस्तारेण एकरज्जुमादिं कृत्वा वर्द्धितविस्तारेण व्याप्तजीवप्रदेशानां पूर्वशरीरेण संख्यातांगुलावगाहनेन संबंधाभावात्। भावे वा जीवप्रदेशपरिमाणं शरीरं भवेत्। न चैवं, बंधधृतस्य शरीरस्य तावन्मात्र-प्रसरण-शक्त्यभावात्। अथवा यदि मूलशरीरस्य कपाटसमुद्घातप्रमाणप्रसरणशक्तिर्मन्येत, तर्हि औदारिकमिश्रकाययोगस्यान्यथानुपत्तेः। न चिरन्तनशरीरेण कपाटगतकेवलिनः संबंधोऽस्ति। अस्यायमभिप्रायः — सयोगकेवलिनो मूलशरीरस्य षट्सु लेश्यासु संभवन्तीष्वपि कपाटसमुद्घातसमये न तासां ग्रहणं संभवति, किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगे एका कापोतलेश्यैव कथ्यते।

भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>२७८</sup>।

वैक्रियिककाययोगिनां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, एको जीवसमासः षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगतिर्देवगतिरिति द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, वैक्रियिककाययोगः, त्रयो वेदाः चत्वारः

केवलदर्शन और द्रव्य से कापोतलेश्या होती है।

शंका — सयोगकेवली के मूलशरीर की तो छहों लेश्याएं होती हैं फिर उन्हें यहाँ क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान — नहीं, क्योंकि कपाटसमुद्घात के समय चौदह राजू आयाम ( लम्बाई ) से और सात राजू विस्तार से अथवा चौदह राजू आयाम से और एक राजू को आदि लेकर बढ़े हुए विस्तार से व्याप्त जीव के प्रदेशों का संख्यात अंगुल की अवगाहना वाले पूर्वशरीर के साथ संबंध नहीं हो सकता है। यदि संबंध माना जाएगा तो जीव के प्रदेशों के परिमाण वाला ही औदारिकशरीर को होना पड़ेगा किन्तु ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि विशिष्ट बंध को धारण करने वाले शरीर के पूर्वोक्त प्रमाणरूप से फैलने की शक्ति का अभाव है। अथवा यदि मूलशरीर के कपाटसमुद्घात प्रमाण प्रसरणशक्ति मानी जाय तो फिर उनकी औदारिकमिश्रकाययोगता नहीं बन सकती है तथा कपाटसमुद्घातगत केवली का पुराने मूलशरीर के साथ संबंध है नहीं। अतएव यही अभिप्राय हुआ कि सयोगकेवली के मूलशरीर की छहों लेश्याएं होने पर भी कपाटसमुद्घात के समय उनका ग्रहण नहीं किया जा सकता है किन्तु औदारिकमिश्रकाययोग होने के कारण एक कापोत लेश्या ही कही गई है।

द्रव्य लेश्या के आगे भाव से शुक्ललेश्या, भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्वं, संज्ञिक और असंज्ञिक

नं. २७८

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	२	०	१	१	१	१	०	०	१	१	१	द्र.१	१	१	०	१	२
मि.	अप.	अ.	अथवा ४	क्षिप्यं	म.	प.	पू.	औ.मि.	अप.	अक्षि.	केव.	यथा.	के.द.	का. भा.१ शुक्ल.	भ.	क्षा.	अनु.	आहार	साकार अनाकार यु.उ.

कषायाः, षट् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२७९।

वैक्रियिककाययोगिमिथ्यादृष्टिजीवानां भण्यमाने सामान्यवद् ज्ञातव्यं। केवलं त्रिज्ञान-अवधिदर्शनानि अपनेतव्यानि\*२८०।

वैक्रियिककाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने अभव्यसिद्धिका अपि अपनेतव्याः\*२८१।

इन दोनों विकल्पों से रहित, आहारक, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

वैक्रियिककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—चार गुणस्थान (प्रारंभ के), एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, वैक्रियिककाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान और आदि के तीन ज्ञान इस प्रकार छह ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर सभी प्ररूपणाएं तो सामान्य आलाप के समान होते हैं केवल तीन ज्ञान एवं अवधिदर्शन उसमें से निकाल देना चाहिए।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवों के आलाप वर्णन

नं. २७९

वैक्रियिककाययोगी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. सम्य. अवि.	१ सं. प.	६	१०	४	२ न. दे.	१ इं. दे.	१ का. दे.	१ यो. वै.	३	४	६ ज्ञान.३ अज्ञा.३	१ असं.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८०

वैक्रियिककाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६	१०	४	२ न. दे.	१ इं. दे.	१ का. दे.	१ यो. वै.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८१

वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं. प.	६	१०	४	२ न. दे.	१ इं. दे.	१ का. दे.	१ यो. वै.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

वैक्रियिककाययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि ज्ञातव्यानि, शेषं पूर्ववत्\*२८२।

वैक्रियिककाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने त्रीणि ज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, त्रीणि सम्यक्त्वानि, शेषं पूर्ववत् ज्ञातव्यम्\*२८३।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां भण्यमाने त्रीणि गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, वैक्रियिकमिश्रकाययोगः त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन विना पंच ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतलेश्या, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वेन विना पञ्च सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२८४।

में अभव्यसिद्धिक अवस्था भी नहीं होती है अतः उसे निकाल कर शेष कथन सामान्य आलाप के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापवर्णन में तीनों अज्ञान से मिश्रित तीन ज्ञान जानना चाहिए, शेष आलाप पूर्ववत् जानें।

आगे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती वैक्रियिककाययोगी जीवों के आलाप वर्णन में तीन ज्ञान (आदि के), तीन दर्शन, तीन सम्यक्त्व के साथ शेष आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

नं. २८२

वैक्रियिककाययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं. प.	६	१०	४	२ न. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै.	३	४	३ अज्ञा.३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ पुं.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८३

वैक्रियिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं. प.	६	१०	४	२ न. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै.	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८४

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अवि.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	२ न. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै. मि.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ का. भा.६	२ भ. अ.	५ मि. सासा. औ. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने द्वे अज्ञाने, द्वे दर्शने एष एव विशेषः कथयितव्यः\*२८५।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने केवलं देवगतिः ज्ञातव्या\*२८६।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां पुरुष-नपुंसकवेदौ द्वौ, द्रव्येण कापोतलेश्या, भावेन जघन्या कापोतलेश्या तेजःपद्मशुक्ललेश्याः विशेषेण ज्ञातव्याः, शेषाः प्ररूपणाः सामान्यवद् ज्ञातव्याः\*२८७।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर — तीन गुणस्थान ( मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि ), एक जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त ), छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गतियाँ ( नरकगति और देवगति ), पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान के बिना पाँच ज्ञान, तीन दर्शन, द्रव्य से कापोत लेश्या एवं भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, अभव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से संबंधित आलाप कहने पर उनमें सामान्य आलापों की अपेक्षा यही विशेषता है कि उनके आदि के दो अज्ञान, दो दर्शन ही होते हैं।

नं. २८५

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	२ न. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै. मि.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.१ का. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै. मि.	२ स्त्री. पु.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.१ भा.६ का.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. २८७

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	२ न. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१ वै. मि.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ भा.४ का. का.ते. प.शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

आहारकाययोगिनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, आहारकाययोगः, पुरुषवेदः, स्त्री-नपुंसकवेदौ न स्तः।

किं कारणम् ?

अप्रशस्तवेदाभ्यां सह आहारद्विर्न उत्पद्यते।

चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, मनःपर्ययज्ञानं नास्ति। किञ्च, आहारमनःपर्ययज्ञानयोः सहानवस्थानलक्षणविरोधात्। द्वौ संयमौ, परिहारशुद्धिसंयमौ नास्ति, एतेनापि सह आहारशरीरस्य विरोधात्। त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, उपशमसम्यक्त्वं नास्ति, एतेनापि सह विरोधात्। संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२८८।

इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के केवल एक देवगति जानना चाहिए। शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में उनके पुरुषवेद और नपुंसकवेद ये दो वेद होते हैं, द्रव्य से उनके कापोत लेश्या तथा भाव से जघन्य कापोतलेश्या एवं पीत-पद्म-शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं। इतना ही कथन इसमें विशेष है, शेष प्ररूपणाएं सामान्य आलापों के समान जानना चाहिए।

आहारककाययोगी जीवों के आलाप कहने पर—एक ( प्रमत्तसंयत ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, आहारककाययोग, पुरुषवेद होता है, उनके स्त्री और नपुंसकवेद नहीं होते हैं।

प्रश्न—आहारककाययोगी जीवों के उपर्युक्त दोनों वेदों के नहीं होने का क्या कारण है?

उत्तर—क्योंकि अप्रशस्त वेदों के साथ आहारक ऋद्धि नहीं उत्पन्न होती है।

वेद आलाप के आगे चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान होते हैं। उनके मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है क्योंकि आहारकऋद्धि और मनःपर्ययज्ञान का सहानवस्थानलक्षण विरोध है अर्थात् ये दोनों एक साथ एक जीव में नहीं रहते हैं।

पुनः उनके दो संयम ( सामायिक और छेदोपस्थापना ) होते हैं, किन्तु परिहारविशुद्धि संयम नहीं होता है क्योंकि इसके साथ भी आहारकशरीर का विरोध है।

संयम आलाप के आगे तीनों दर्शन ( आदि के ), द्रव्य से शुक्ललेश्या तथा भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यत्व, दो सम्यक्त्व ( क्षायिक, क्षायोपशमिक ) होते हैं परन्तु

नं. २८८

आहारककाययोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्रम.	१ सं. प.	६	१०	४	१ म.	१ म.	१ म.	१ म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	२ सामा. छेदो.	३ के.द. विना.	द्र.१ शु. भा.३ शुभ.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

आहारमिश्रकाययोगिनां भण्यमाने द्रव्येण कापोतलेश्या ज्ञातव्याः, शेषा अपर्याप्तप्ररूपणा गृहीतव्याः\*२८९।

कर्मणकाययोगिनां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, सप्त जीवसमासाः, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, सयोगिकेवलिनं प्रतीत्य द्वौ प्राणौ, शेषाणां सप्त-सप्त-षट्-पञ्च-चतुस्त्रिप्राणाः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, कर्मणकाययोगः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, मनःपर्ययविभंगज्ञानाभ्यां विना षड् ज्ञानानि, यथाख्यातविहारशुद्धि-संयमोऽसंयमश्चेति द्वौ संयमौ, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण शुक्ललेश्या, अथवा षड्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तपूर्वशरीरमपेक्ष्य उपचारेण द्रव्येण षड् लेश्या भवन्ति। भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, पञ्च सम्यक्त्वानि सम्यग्मिथ्यात्वेन विना, संज्ञिनोऽसंज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, नो कर्मग्रहणाभावात्।

उनके उपशम सम्यक्त्व नहीं होता है क्योंकि इसके साथ भी आहारक शरीर का विरोध है। पुनः वे संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवों के आलाप कहने पर उनके द्रव्य से कापोत लेश्या जानना चाहिए, शेष सभी आलाप अपर्याप्त प्ररूपणा वाले ग्रहण करना चाहिए।

कर्मणकाययोगी जीवों के आलाप कहने पर — चार गुणस्थान, ( प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और तेरहवाँ ), सात जीवसमास ( सातों अपर्याप्त जीवसमास ), छहों अपर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, सयोगकेवली जीवों की अपेक्षा ( प्रतर और लोकपूरण समुद्घात काल में ) दो प्राण ( आयु और कायबल ) होते हैं तथा शेष जीवों के क्रमशः सात, सात, छह, पाँच, चार और तीन प्राण होते हैं। चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय जाति आदि पाँचों जातियाँ, पृथिवीकायादि छहों काय, कर्मणकाययोग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है। मनःपर्ययज्ञान और विभंगावधिज्ञान के बिना छहों ज्ञान, यथाख्यातपरिहारविशुद्धिसंयम एवं असंयम ये दो संयम, चारों दर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या अथवा छहों पर्याप्ति से पर्याप्त पूर्व शरीर की अपेक्षा करके केवली के उपचार से द्रव्य से छहों लेश्या होती हैं। भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, अभव्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व, संज्ञी, असंज्ञी, तथा दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान होता है। अनाहारक होते हैं क्योंकि कर्मणकाययोगी जीव नो कर्मवर्गणाओं को ग्रहण

नं. २८९

आहारकमिश्रकाययोगी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	१	१	१	१	१	४	३	२	३	द्र.१	१	२	१	१	२
प्र	सं.	अ.			म.	पु.	पु.	पु.	पु.		मति.	सामा.	के.द.	शु.	भ.	क्षा.	सं.	आहार	साकार
	अ.										श्रुत.	छेदो.	विना.	भा.३	शुभ.	क्षायो.			अनाकार
											अव.								



कर्मग्रहणस्यास्तित्वं प्रतीत्य आहारित्वं किञ्चोच्यत इति चेत् ?

नोच्यते, आहारस्य त्रिसमयविरहकालोपलब्धेः।

साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२९०।

कर्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने सामान्यवत्सर्वे आलापाः प्ररूपयितव्याः\*२९१।

कर्मणकाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषा अपर्याप्तवद् ज्ञातव्याः\*२९२।

नहीं करते हैं।

प्रश्न—कर्मणकाययोग की अवस्था में भी कर्मवर्गणाओं के ग्रहण का अस्तित्व पाया जाता है, इस अपेक्षा कर्मणकाययोगी जीवों को आहारक क्यों नहीं कहा जाता?

उत्तर—उन्हें फिर भी आहारक नहीं कहा जाता है क्योंकि कर्मणकाययोग के समय नोकर्मवर्गणाओं के आहार का अधिक से अधिक तीन समय तक विरहकाल पाया जाता है।

आहार आलाप के आगे साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा दोनों उपयोगों से युगपत् संयुक्त भी होते हैं।

नं. २९०

कर्मणकाययोगी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	७	६	७	४	४	५	६	१	३	४	६	२	४	द्र.१	२	५	२	१	२
मि.	६	अ.	७	४				कर्म.	अपा.	अक्षा.	मनः	असं.		शु.	भ.	मि.	सं.	अना.	साकार
सासा.	५	अ.	६	४				कर्म.	अपा.	अक्षा.	विभं.	यथा.		अथ.	अ.	सा.	असं.		अनाकार
अवि.	४	अ.	४	४							विना.			६		क्षा.	अनु.		यु.उ.
सयो.	अ.	३,२												भा.६		क्षायो.			
																औप.			

नं. २९१

कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	७	६	७	४	४	५	६	१	३	४	२	१	२	द्र.१	२	१	२	१	२
मि.	६	अ.	७					मि.			कुम.	असं.	चक्षु.	शु.	भ.	मि.	सं.	अना.	साकार
	५	अ.	६					किं			कुश्रु.		अचक्षु.	भा.६	अ.		असं.		अनाकार
	४	अ.	४																
	अ.	३																	

नं. २९२

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	३	१	१	१	३	४	२	१	२	द्र.१	१	१	१	१	२
सा.	सं.	अ.			ति.	मि.	मि.	मि.			कुम.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	मि.	सं.	अना.	साकार
अ.	अ.				दे.	मि.	मि.	मि.			कुश्रु.		अचक्षु.	शु.					अनाकार

कर्मणकाययोगि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, कर्मणकाययोगः, द्वौ वेदौ, स्त्रीवेदो नास्ति, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*२९३।

कर्मणकाययोगि-सयोगिकेवलिनं भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, द्वौ प्राणौ, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, कर्मणकाययोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण शुक्ललेश्या, षड् लेश्या वा, भावेन शुक्ललेश्यैव, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनौ नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*२९४।

कर्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर सामान्य के समान ही सभी आलापों का प्ररूपण करना चाहिए।

कर्मणकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलापों में नरकगति के बिना तीनों गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी आलाप अपर्याप्त के समान जानना चाहिए।

कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक ( चतुर्थ ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त ), छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, कर्मणकाययोग पुरुष एवं नपुंसक ये दो वेद होते हैं और स्त्रीवेद नहीं होता है। चारों कषाय, तीन ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या एवं भाव से छहों लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

कर्मणकाययोगी सयोगिकेवलियों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास,

### नं. २९३ कर्मणकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	ई.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	४	१ पं.	१ पं.	१ किं.	२ न. पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ भा.६ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ अना.	२ साकार अनाकार

### नं. २९४ कर्मणकाययोगी सयोगिकेवली जिनके आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	ई.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं.	१ पं.	६ पं.	२ आयु. काय.	० सं.	१ म.	१ पं.	१ पं.	१ किं.	० अपुं.	० अकषा.	१ केव.	१ यथा. अथ.६	१ के.	द्र.१ शु. भा.१ शु.	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	१ अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

अयोगिकेवलानां सुगमो वर्तते।  
एवं त्रिपञ्चाशत्कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गतआलापाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां  
योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

छहों अपर्याप्तियाँ, दो प्राण, क्षीणसंज्ञास्थान, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, कर्मणकाययोग, अपगतवेदस्थान, अकषायस्थान, केवलज्ञान, यथाख्यातशुद्धिसंयम, केवलदर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या अथवा छहों लेश्याएं तथा भाव से एक शुक्ललेश्या ही होती है। आगे भव्यत्व, क्षायिकसम्यक्त्व, संज्ञी और असंज्ञी से रहित अवस्था, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

अयोगकेवली जीवों के आलाप सुगम हैं अतः यहाँ उनका विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है।  
इस प्रकार त्रेपन कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथमखण्ड में सत्प्ररूपणा  
के अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत  
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में योगमार्गणा नाम  
का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।



# अथ वेदमार्गणाधिकारः

ब्रह्मचर्यप्रभावेण, तिष्ठामि स्वात्मनि स्वयम्।

ततो ब्रह्मपदं प्राप्य, सुखं प्राप्स्यामि शाश्वतम्॥१॥

अथ वेदमार्गणायां सप्तत्रिंशत्संदृष्टयो वक्ष्यन्ते —

वेदानुवादेनानुवादो यथा मूलौघो नीतस्तथा नेतव्यः। विशेषेण-नव गुणस्थानानीति वक्तव्यं, वेदे निरुद्धे उपरिमगुणस्थानाभावात्। अस्ति क्षीणसंज्ञा, अपगत योगः, अपगतवेदः, अकषायः, अलेश्य, नैव भव्यसिद्धिका नैव अभव्यसिद्धिकाः, नैव संज्ञिनः, नैवासंज्ञिनः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्त्येते आलापा न वक्तव्याः। केवलज्ञानं, केवलदर्शनं, सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमः यथाख्यातशुद्धिसंयमश्चापनेतव्याः। अनिन्द्रिया अपि सन्ति, अकायिका अपि सन्ति, एतेऽपि आलापा न वक्तव्याः।

स्त्रीवेदानां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि—अस्यां मार्गणायां भाववेदा एव विवक्षिताः सन्ति। चत्वारो जीवसमासाः—संज्ञ्यसंज्ञि-पर्याप्तापर्याप्ताः। षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, नव प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, आहार-आहारमिश्रकाययोगाभ्यां विना त्रयोदश योगाः, स्त्रीवेदः—भावेन स्त्रीवेदो द्रव्येण पुरुषवेदः, चत्वारः

## अब वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है

श्लोकार्थ — ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मैं स्वयं अपनी आत्मा में स्थित होकर पुनः ब्रह्मपद को प्राप्त करके शाश्वतसुख को प्राप्त करूँगा।

अब वेदमार्गणा में सैंतीस संदृष्टियाँ ( आलाप ) कहेंगे—

वेदमार्गणा के अनुवाद से कथन करने पर आलापों का कथन जैसा मूल ओघालाप में लिया गया है वैसा यहाँ पर भी लेना चाहिए। विशेष बात यह है कि यहाँ आदि के नौ गुणस्थान हैं ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि वेदनिरुद्ध अवस्था में अर्थात् वेदों से युक्त रहने पर ऊपर के गुणस्थानों का अभाव है।

यहाँ पर क्षीणसंज्ञा, अपगतयोग, अपगतवेद, अकषाय, अलेश्य, भव्यत्व और अभव्यत्व इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान, संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित स्थान, इतने आलाप नहीं कहना चाहिए।

केवलज्ञान, केवलदर्शन, सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयम और यथाख्यात विहारशुद्धिसंयम इतने आलाप भी निकाल देना चाहिए तथा अनिन्द्रिय भी होते हैं, अकायिक भी होते हैं ये आलाप भी नहीं कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के नव गुणस्थान होते हैं। इस मार्गणा में भाववेदों की ही विवक्षा जानना चाहिए। आगे चार जीवसमास ( संज्ञी-असंज्ञी, पर्याप्त-अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ ( संज्ञी जीवों की अपेक्षा ), असंज्ञी के पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नव प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं,

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वे गुणस्थाने स्तः, द्वौ जीवसमासौ, षडपर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, सप्तप्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयो योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं

उन्हीं स्त्रीवेदी जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—दो गुणस्थान ( मिथ्यात्व, सासादन ) होते हैं, दो जीवसमास ( संज्ञी अपर्याप्त और असंज्ञी अपर्याप्त ), छहों अपर्याप्तियाँ पाँच अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, तीन गतियाँ ( नरकगति केबिना ),

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	हं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	३	१	१	१०	१	४	६	४	३	३.६	२	६	२	१	२
आदिके.	सं.प.	५	९		ति.	पे.	त्रस.	म.४	खी.		मनः	असं.	विना.	भा.६	भ.		सं.	आहार	साकार
	असं.प.				म.दे.			व.४			केव.	देश.	विना.	अ.			असं.		अनाकार
								औ.१				सामा.	के.						
								वै.१				छेदो.							

स्त्रीवेदमिथ्यादृष्टीनां भयमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चत्वारो जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि अज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञितोऽसंज्ञितः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा १९८।

उन्हीं स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक गुणस्थान ( प्रथम ), चार जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ , पाँच अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नव प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तीन गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, तेरहयोग ( आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

## स्त्रीवेदी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२	२	६	७	४	३	१	१	३	१	४	२	१	२	द्र.२	२	२	२	२	२
मि.	सं.अप.	अ	७		ति.	पे.	त्रसं.	औ.मि.	खिं.		कुम.	असं.	अचक्षु.	का.	भ.	मि.	सं.	आहार	साकार
सा.	असं.".	५			म.			वै.मि.			कुश्रु.		चक्षु.	शु.	अ.	सा.	असं.	अनाहार	अनाकार
		अ			दे.			कर्म.					भ.४	भ.३					
													तेज.१						

## स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ सं.प. सं.अप. असं.प. असं.अप.	६ प ६ अ ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ त्रसं.	१३ आहा.२ विना.	१ खं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु.अचक्षु.	२ द्र.६ भा.६ भ. अ.	२ भ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषां एव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबंधिन आलापा वक्तव्याः\*२९९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबंधिन आलापाः कथयितव्याः\*३००।

स्त्रीवेदसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, स्त्रीवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३०१।

उन्हीं स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों में केवल पर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

उन्हीं स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालीन आलापों में मात्र अपर्याप्त प्ररूपणाएं ही ग्रहण करना चाहिए।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक गुणस्थान ( द्वितीय ), दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों

नं. २९९

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प. असं.प.	६ प. ५	१० ९	४	३ ति. म. दे.	१ णिं.	१ ऋं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ ऋं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षुः अचक्षुः	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३००

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अप. असं.".	६ अ. ५ अ.	७ ७	४	३ ति. म. दे.	१ णिं.	१ ऋं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ ऋं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षुः अचक्षुः	२ द्र.२ का. शु. भा.४ अशु. ते.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३०१

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ णिं.	१ ऋं.	१३ आहा. द्विक. विना.	१ ऋं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षुः अचक्षुः	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां पर्याप्तसंबन्धिन आलापा गृहीतव्याः\*३०२।

तेषामेवापर्याप्तानां अपर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*३०३।

स्त्रीवेदसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः प्ररूपणा सामान्यवद् वक्तव्याः\*३०४।

प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, तीन गतियाँ ( नरकगति के बिना ), पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, तेरह योग ( आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना ), स्त्रीवेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व संज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालीन आलाप कहने पर केवल पर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं सासादनगुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी अपर्याप्तक जीवों के आलापवर्णन में मात्र अपर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं का ही कथन करना योग्य है।

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापों में नरकगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं, शेष

नं. ३०२

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ मृ.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ हिं.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ मृ.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३०३

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा	१ सं.अ.	६अ.	७	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ मृ.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ हिं.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.२ का. शू. भा.४ अशु. ३ तेज.	१ भ.	१ मृ.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३०४

स्त्रीवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सं.प.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ मृ.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ हिं.	४	३ अज्ञा. ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ मृ.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



स्त्रीवेदासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सामान्यवद् वक्तव्याः, केवलं पर्याप्तावस्थायामेवेदं गुणस्थानं\*३०५।

स्त्रीवेदसंयतासंयतानां भण्यमाने द्वे गती, एतदेवान्तरम्\*३०६।

स्त्रीवेदप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, आहारद्विकं नास्ति। स्त्रीवेदः भावेन द्रव्येण तु पुरुषवेद एव। चत्वारः कषायाः मनःपर्ययज्ञानेन विना त्रीणि ज्ञानानि, परिहारसंयमेन विना द्वौ संयमौ, कारणं-आहारद्विक-मनःपर्ययज्ञान-परिहारसंयमैः सह वेदद्विकोदयस्य विरोधात्। त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्या, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि

प्ररूपणाएं सामान्य आलापों के समान जानना चाहिए।

स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में सामान्य के समान ही सारा वर्णन जानना चाहिए, केवल यह विशेष है कि यह चतुर्थगुणस्थान पर्याप्त अवस्था में ही होता है।

स्त्रीवेदी संयतासंयत जीवों के आलापवर्णन में तिर्यच और मनुष्य ये दो गतियाँ होती हैं, यही इसमें अन्तर है शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी जीवों के आलाप कहने पर — एक गुणस्थान ( छठा ), एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, नौ योग ( मनोयोग चारों, वचनयोग चारों और औदारिककाययोग ) होते हैं किन्तु आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग नहीं होता है। योग आलाप के आगे स्त्रीवेद, चारों कषाय, मनःपर्ययज्ञान के बिना आदि के तीन ज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम के बिना दो संयम होते हैं। यहाँ पर आहारकद्विक, मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयम के साथ स्त्रीवेद और नपुंसकवेद होने का विरोध है। संयम आलाप के आगे आदि के तीन

नं. ३०५

स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	३	१	१	१०	१	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
कृ	सं.प.				ति. म. दे.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१ वै.१	कृ		मति. श्रुत. अव.	असं.	पुं. पुं. कृ	भा.६	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ३०६

स्त्रीवेदी संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	१	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
कृ	सं.प.				ति. म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१	कृ		मति. श्रुत. अव.	देश.	पुं. पुं. कृ	भा.३ शुभ.	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३०७।

स्त्रीवेदाप्रमत्तसंयतानां भण्यमाने केवलं आहारसंज्ञामन्तरेण तिस्रः संज्ञाः, शेषाः, प्ररूपणाः प्रमत्तसंयतवद् ज्ञातव्याः\*३०८।

स्त्रीवेदपूर्वकरणानां भण्यमाने भावेन शुक्ललेश्या, वेदकेन विना द्वे सम्यक्त्वे, शेषाः अप्रमत्तवद् ज्ञातव्याः\*३०९।

दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं और भाव से तेज, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

स्त्रीवेदी अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर उसमें केवल आहार संज्ञा के बिना तीनों संज्ञाएं होती हैं, शेष प्ररूपणाएं प्रमत्तसंयत के समान जानना चाहिए।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में भाव से शुक्ललेश्या होती है, वेदक सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं, शेष वर्णन प्रमत्तसंयत के समान जानना चाहिए।

नं. ३०७

स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र.६	१	३	१	१	२
प्रम.	सं.प.				म.	पिं.	पू.	म.४ व.४ औ.१	हिं.	श्रुत. अव.	मति. छेदो.	सामा. छेदो.	निं. पं. हिं.	भा.३ शुभ.	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ३०८

स्त्रीवेदी अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र.६	१	३	१	१	२
प्रम.	सं.प.			आहा. विना.	म.	पिं.	पू.	म.४ व.४ औ.१	हिं.	श्रुत. अव.	मति. छेदो.	सामा. छेदो.	निं. पं. हिं.	भा.३ शुभ.	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ३०९

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	१	४	३	२	३	द्र.६	१	२	१	१	२
प्रम.	सं.प.			आहा. विना.	म.	पिं.	पू.	म.४ व.४ औ.१	हिं.	श्रुत. अव.	मति. छेदो.	सामा. छेदो.	निं. पं. हिं.	भा.१ शुक्ल.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

स्त्रीवेदानिवृत्तिकरणानां भण्यमाने मैथुनपरिग्रहनामभ्यां द्वे संज्ञे, शेषाः अपूर्वकरणवद् ज्ञातव्याः\*३१०।

पुरुषवेदानां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि, चत्वारो जीवसमासाः, षट् पर्याप्तः षडपर्याप्तयः पञ्चपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः नरकगत्या विना, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, सप्त ज्ञानानि, पञ्च संयमाः, त्रीणि दर्शानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साक्षरोपयुक्ता भवन्त्यनाक्षरोपयुक्ता वा\*३११।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिनः आलापा वक्तव्याः\*३१२।

स्त्रीवेदी अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप वर्णन में मैथुन और परिग्रह नाम की दो संज्ञाएं होती हैं और शेष सभी आलाप अपूर्वकरण के समान ही जानना चाहिए।

पुरुषवेदी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के नौ गुणस्थान, चार जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नव प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, नरकगति के बिना तीनों गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, पुरुषवेद, चारों कषाय, सात ज्ञान (केवलज्ञान के बिना), पाँच संयम (सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात

### नं. ३१०

### स्त्रीवेदी अनिवृत्तिकरण जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदि.	१ सं.प.	६	१०	२ मै. प.	१ म.	१ पिं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ पुं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	२ सामा. छेदो.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.६ भा.१ शुक्ल.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३११

### पुरुषवेदी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदि.	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पुं.	१५ १ पु.	१ पु.	४	६ केव. विना.	५ असं. देश. सामा. छेदो. परि.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३१२

### पुरुषवेदी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदि.	२ सं.प. असं.प.	६ ५	१० ९	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पुं.	११म.४ व.४ औ.१ वै.१ आहा.१	१ पु.	४	७ केव. विना.	५ असं. देश. सामा. छेदो. परि.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा नेतव्याः\*३१३।

पुरुषवेदमिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, शेषाः प्ररूपणाः सामान्यवद् ज्ञातव्याः\*३१४।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने अपर्याप्तालापा अपनेतव्याः\*३१५।

के बिना), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पुरुषवेदी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर सभी पर्याप्त प्ररूपणाओं का ही वर्णन जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन पुरुषवेदी जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में अपर्याप्त प्ररूपणाएं ग्रहण की जाती हैं।

पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापवर्णन में गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि ही होता है, शेष सभी प्ररूपणाएं सामान्य आलापों के समान जानना चाहिए।

उन मिथ्यादृष्टि पुरुषवेदी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में केवल अपर्याप्त प्ररूपणाएं

नं. ३१३

पुरुषवेदी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. अवि. प्रम	२ सं.अ. असं."	६ अ ५ अ	७ ७	४	३ ति. म. दे.	१ पं.	१ ऋ.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	१ पु.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	३ नृ. पि. नृ.	३ द्र.२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	५ सम्य. विना.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३१४

पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	४ सं.प. सं.अ. असं.प. असं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१० ७ ९ ७	४ ३ ति. म. दे.	१ ३ पिं. पिं.	१ १ सं. सं.	१ ३ आहा. द्विक. विना.	१ ३ पु.	१ ४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

नं. ३१५

पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. असं.प.	६ ५	१० ९	४	३ ति. म. दे.	१ णिं. णिं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ ४	४ पु.	३ अज्ञा.	१ असं. चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार		

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा अपनेतव्याः\*३१६।

पुरुषवेदसासादनसम्यग्दृष्टेरारभ्य यावत्प्रथमानिवृत्तिगुणस्थानं इति तावन्मूलौघभंगः। नवरि सर्वत्र पुरुषवेदश्चैव वक्तव्यः। सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-असंयतसम्यग्दृष्टीनां तिस्रो गतयः वक्तव्याः।

नपुंसकवेदानां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः अष्ट प्राणाः षट् प्राणाः सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः देवगतिर्नास्ति, एकेन्द्रियादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, त्रयोदश योगाः, नपुंसकवेदः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, चत्वारः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेख्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३१७।

ही जानना चाहिए और अपर्याप्तकालीन सभी वर्णन उसमें से निकाल देना चाहिए।

उन मिथ्यादृष्टि पुरुषवेदी जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलापों के वर्णन में पर्याप्तकालीन आलापों को निकाल कर कथन करना चाहिए।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थान के प्रथम भाग तक के आलाप मूल ओघालापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि वेद आलाप कहते समय सर्वत्र एक पुरुषवेद ही कहना चाहिए तथा सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के गति आलाप कहते समय नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ कहना चाहिए।

नपुंसकवेदी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के नौ गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण और तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, तीन गतियाँ, देवगति नपुंसकवेद वालों

नं. ३१६

पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.अ. असं.अ.	६ अ ५ अ	७ ७	४	३ ति. म. दे.	१ णि. १ णि.	१ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं. चक्षु. अच.	२ द्र.२ का. शु. भा.६	२ भ. मि. सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार				

नं. ३१७

नपुंसकवेदी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदिक्.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ १,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	३ न. ति. म.	५	६	१३ आहा. द्विक. विना.	१ मं	४	३ मनः. केव. विना.	४ असं. देश. सामा. छेदो.	३ पित्तं. पुं.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*३१८।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन्यः प्ररूपणा अपनेतव्याः\*३१९।

नपुंसकवेदमिथ्यादृष्टीनां सामान्येन भण्यमाने एकं गुणस्थानं, शेषाः प्ररूपणाः सामान्यवद् ज्ञातव्याः\*३२०।

के नहीं है, एकेन्द्रियादि पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, तेरहयोग ( आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना ), नपुंसकवेद, चारों कषाय, छह ज्ञान ( मनःपर्यय और केवलज्ञान के बिना ), चार संयम ( असंयम, देशसंयम, सामाधिक और छेदोपस्थापना ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, अभव्यत्व, छहों सम्यक्त्व, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं नपुंसकवेदी पर्याप्तक जीवों के आलापों में अपर्याप्त संबंधी सभी प्ररूपणाएं निकाल देना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्तक नपुंसकवेदी जीवों के आलापवर्णन में पर्याप्तसंबन्धी सभी प्ररूपणाओं को निकालकर कथन करना चाहिए।

### नं. ३१८

### नपुंसकवेदी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१. आदि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	३ न ति. म.	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ न.	४	६ मन. केव. विना	४ असं. देश. सामा. छेदो.	३ के.द. विना.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३१९

### नपुंसकवेदी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सा. अ.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	३ न ति. म.	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ न.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं. कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ के.द. विना.	३ द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	४ मि. सासा. क्षा. क्षायो.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३२०

### नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	३ न ति. म.	५	६	१३ आहा. द्विक. विना.	१ न.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबंधिन आलापा वक्तव्याः\*३२१।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबंधिन आलापाः कथयितव्याः\*३२२।

नपुंसकवेदसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने, द्वौ जीवसमासौ, द्वादश योगाः, सासादनगुणस्थानेन जीवा नरकगतौ नोत्पद्यन्ते तेन वैक्रियिकमिश्रकाययोगो नास्ति, देवगतौ च नपुंसकवेदो नास्ति। शेषा आलापा पूर्ववद् वक्तव्याः\*३२३।

नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापों में उनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही जानना चाहिए, शेष सभी प्ररूपणाएं सामान्यरूप से ही होती हैं।

उन नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर पर्याप्तसंबंधी सभी आलाप ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार उन नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलाप वर्णन में केवल अपर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर कुछ प्ररूपणाएं तो पूर्ववत् होती हैं तथा कुछ प्ररूपणाओं में विशेषता पाई जाती है जो इस प्रकार हैं—

नं. ३२१

नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ प. ४	१० १ ८ ७ ४	४ न ति. म.	३	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ न.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३२२

नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पृ. ४	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४ न ति. म.	३	५	६	२ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ न.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३२३

नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ न ति. म.	३	१ पृ. १ पृ.	१२ म.४ व.४ औ.२ वै.१ का.१	१ न.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सं. सं.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*३२४।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वे गती — देवनरकगती न स्तः। द्वौ योगौ वैक्रियिकमिश्रकाययोगो नास्ति। शेषा आलापाःपूर्ववद् ज्ञातव्याः\*३२५।

नपुंसकवेदसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने वेदस्थाने नपुंसकवेदः, शेषाः प्ररूपणाः पूर्ववद् ज्ञातव्याः\*३२६।

उनके दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं, बारह योग ( आहारक-काययोग, आहारकमिश्रकाययोग एवं वैक्रियिकमिश्र के बिना ) सासादनगुणस्थान के द्वारा जीव नरकगति में नहीं उत्पन्न होते हैं इसलिए इसमें वैक्रियिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। शेष प्ररूपणाओं को सामान्यवत् जानना चाहिए।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में केवल पर्याप्तक प्ररूपणाएं ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार नपुंसकवेदी सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के अपर्याप्तकालीन आलापों में मात्र यह अन्तर है कि वहाँ देवगति और नरकगति नहीं पाई जाती हैं। दो योगों में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोग नहीं होते हैं। शेष आलाप पूर्ववत् होते हैं।

#### नं. ३२४ नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ नृ. पि.	१ पुं. ल्ल	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ न.	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ पुं. ल्ल	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ३२५ नपुंसकवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ ति. म.	१ नृ. पि.	१ पुं. ल्ल	२ औ.मि. कर्म.	१ न.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.२ भा.३ का.शु. अशु.	१ भ.	१ पुं. ल्ल	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ३२६ नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ संय.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ नृ. पि.	१ पुं. ल्ल	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ न.	४	३ अज्ञा. ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ पुं. ल्ल	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



नपुंसकवेदासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने द्वादश योगाः— औदारिकमिश्रकाययोगो नास्ति। शेषाः पूर्ववद् ज्ञातव्याः\*३२७।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा अपनेतव्याः\*३२८।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने एका नरकगतिः, द्वौ योगौ— वैक्रियिकमिश्रकर्मणामानौ, भावेन जघन्या कापोतलेश्याः,  
द्वे सम्यक्त्वे क्षायिकक्षायोपशमिकनामनी—कृतकरणीयं प्रतीत्य वेदकसम्यक्त्वं लब्धं। शेषा आलापाः पूर्ववद् ज्ञातव्याः\*३२९।

नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में वेद के स्थान पर एक नपुंसक वेद होता है तथा शेष प्ररूपणाएं पूर्ववत् जानना चाहिए।

नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर उनके बारह योग होते हैं, औदारिकमिश्रकाययोग उनके नहीं होता है, शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों में सभी अपर्याप्त आलाप निकाल कर कथन करना चाहिए।

उन नपुंसकवेदी चतुर्थगुणस्थानवर्ती अपर्याप्तक जीवों के आलाप वर्णन में एक नरकगति, वैक्रियिकमिश्र और कर्मणकाययोग नाम के दो योग, भाव से जघन्य कापोतलेश्या, क्षायिक

### नं. ३२७ नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ वि. क्रि	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	३ न. ति. म.	१ न. ति. म.	१ प्रा. प्रा.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ कर्म.१	१ न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३२८ नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ वि. अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ न. ति. म.	१ प्रा. प्रा.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	१ न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३२९ नपुंसकवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ वि. अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ न.	१ न. ति. म.	१ प्रा. प्रा.	२ वै.मि. कर्म.	१ न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	२ का. शु. भा.१ का.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नपुंसकवेद-संयतासंयतानां भण्यमाने द्वे गती, भावेन त्रिकशुभलेश्याः, शेषाः पर्याप्तवद् ज्ञातव्याः\*३३०।

नपुंसकवेद-प्रमत्तसंयतगुणस्थानादारभ्य प्रथमानिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्तानां स्त्रीवेदवद्भंगो ज्ञातव्यः।

अपगतवेदानां भण्यमाने सन्ति षट् गुणस्थानानि-अनिवृत्तिकरणावेदभागादारभ्य अयोगिकेवलिपर्यन्तानीति अतीतगुणस्थानमपि अस्ति, द्वौ जीवसमासौ-संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ, अतीतजीवसमासोऽप्यस्ति, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, दश प्राणाः चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ एकः प्राणः अतीत प्राणोऽप्यस्ति, परिग्रहसंज्ञा क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, मनुष्यगतिः सिद्धिगतिरप्यस्ति, पञ्चेन्द्रियजातिरनिन्द्रियत्वमप्यस्ति, त्रसकायोऽकायत्वमप्यस्ति, एकादश योगा अयोगोऽप्यस्ति, अपगतवेदः, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, पञ्च ज्ञानानि, चत्वारः संयमाः परिहारसंयमेन विना, नैव संयमो नैवासंयमो

और क्षायोपशमिक ये दो सम्यक्त्व होते हैं। यहाँ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होने का यह कारण है कि कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा से यहाँ पर क्षयोपशम सम्यक्त्व पाया जाता है। शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

नपुंसकवेदी संयतासंयत जीवों के आलाप वर्णन में दो गति ( मनुष्य गति एवं तिर्यच गति ) होती हैं तथा लेश्या मार्गणा की अपेक्षा भाव से तीन शुभ लेश्या होती हैं, शेष सभी आलाप पर्याप्तकों के समान जानना चाहिए।

नपुंसकवेदी जीवों के प्रमत्तसंयतगुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक के आलाप स्त्रीवेदी जीवों के आलापों के समान होते हैं। विशेष बात केवल यह है कि वेद आलाप कहते समय सर्वत्र एक नपुंसकवेद ही कहना चाहिए।

अपगतवेदी जीवों के आलाप कहने पर अनिवृत्तिकरण के अवेद भाग से लेकर अयोगकेवली पर्यन्त अंत के छह गुणस्थान एवं अतीत गुणस्थान भी होता है। संज्ञीपर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं तथा अतीत जीवसमास भी होता है। छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ तथा अतीतपर्याप्तिस्थान भी होता है। दशों प्राण, चार प्राण, दो प्राण, एक प्राण तथा अतीतप्राणस्थान भी होता है। परिग्रहसंज्ञा तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी होता है, मनुष्यगति तथा सिद्धिगति भी होती है। पञ्चेन्द्रियजाति तथा अनिन्द्रियपना भी पाया जाता है, त्रसकाय तथा अकायस्थान भी होता है। ग्यारह योग तथा अयोगस्थान भी होता है, अपगतवेद, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है, पाँचों ज्ञान, परिहारविशुद्धि के बिना सामायिक, छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये चार संयम तथा संयम, असंयम और संयमासंयम से रहित भी अवस्था होती है। चारों दर्शन,

नं. ३३०

नपुंसकवेदी संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ हृ.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पु.	१ पु.	९ म.४ व.४ औ.१	१ न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ के.द. विना.	६ भा.६ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नैव संयमासंयमोऽप्यस्ति, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण षट् लेश्या, भावेन शुक्ललेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिका अपि सन्ति, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा। साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>\*३३१</sup>।

द्वितीयभागादनिवृत्तिकरणगुणस्थानादारभ्य सिद्ध्यपर्यन्तानां मूलौघभंगा ज्ञातव्याः।

एवं वेदमार्गणाधिकारे सप्तत्रिंशत्कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां  
वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से एक शुक्ललेश्या तथा अलेश्यास्थान भी होता है। भव्यसिद्धिक तथा भव्यत्व-अभव्यत्व इन दोनों विकल्पों से रहित भी अवस्था पाई जाती है। दो सम्यक्त्व ( औपशमिक और क्षायिक ) संज्ञिक तथा संज्ञी-असंज्ञी इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान होता है। आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी एवं साकार-अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित भी होते हैं।

अपगतवेदी जीवों के अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के द्वितीय भाग से लेकर सिद्ध जीवों तक प्रत्येक जीवों के आलाप मूल ओघालाप के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के  
अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत  
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में वेदमार्गणा नाम  
का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।



नं. ३३१

अपगतवेदी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
६	२	६	१०,४	१	१	१	१	११	०	४	५	४	४	६	१	२	१	२	२
अनि.	सं.प.	प.	२,१	प.	म.	पं.	त्र.	म.४	अप.	अक.	मति.	सा.	छे.	द्र.६	भा.१	ओ.	सं.	आहार	साकार
से	सं.अ.	६	अ	अ	सं.	सिद्धि.	अ	व.४	अप.	अक.	श्रुत.	छे.	सू.	शु.	भ.	आ.	अनु.	अनाहार	अनाकार
अयो.	कृ.	अ	अ	अ	अ	अ	अ	औ.२	अप.	अक.	अव.	सू.	य.	अले.	कृ.	आ.	अनु.	अनाहार	अनाकार
अती.	कृ.	अ	अ	अ	अ	अ	अ	कर्म.१	अप.	अक.	मनः	य.	अनु.	अले.	कृ.	आ.	अनु.	अनाहार	अनाकार
गु.	कृ.	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अयो.	अप.	अक.	केव.	अनु.	अनु.	अले.	कृ.	आ.	अनु.	अनाहार	अनाकार

लप्स्ये चतुष्टयं ज्ञान - दृवीर्यसौख्यपूरितम् ।।१।

क्रोधकषायाणां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, षड् पर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः अष्टौ प्राणाः षट् प्राणाः सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, क्रोधकषायः, सप्त ज्ञानानि, पंच संयमाः, सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातसंयमौ न स्तः, त्रीणि दर्शनानि, द्वयभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३३२</sup>।

क्रोध कषायी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के नौ गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण,

## क्रोधकषायी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदिक्.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१५	३ अपरा. उ	१ क्रो.	७ के.ज्ञा. विना.	५ सूक्ष्म. यथा. विना.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां पर्याप्तसंबंधिन आलापाः कथयितव्याः\*३३३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि—मिथ्यादृष्टि-सासादन-अविरतिसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयताः,

शेषाः प्ररूपणाः अपर्याप्तसंबन्धिन्यो गृहीतव्याः\*३३४।

क्रोधकषाय-मिथ्यादृष्टीनां त्रयोदश योगाः, शेषाः सामान्यवद् ज्ञातव्याः\*३३५।

सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रियादि पाँचों जातियाँ, पृथ्वीकायादि छहों काय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, क्रोधकषाय, केवलज्ञान के बिना सात ज्ञान, पाँच संयम होते हैं। यहाँ सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यातसंयम नहीं होते हैं, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं क्रोधकषायी पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनमें केवल पर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाएं ही प्ररूपित करना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्तक क्रोधकषायी जीवों के आलापों में उनके चारगुणस्थान—( मिथ्यादृष्टि,

नं. ३३३

## क्रोधकषायी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ आदिक्.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७,६ ४	४	४	५	६	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आहा.१	३ अपा.	१ क्रो.	७ के.ज्ञा. विना.	५ सूक्ष्म. यथा.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३३४

## क्रोधकषायी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	७	६	७	४	२	५	६	४	३	१	५	३	३	द्र. २	२	५	२	२	२
मि.	अप.	अ.	७					औ.मि.		क्रो.	कुम.	असं.	वि.पुं.	का.	भ.	सम्य.	सं.	आहार	साकार
सा.		५	६					वै.मि.			कुश्रु.	सामा.	छेदो.	शु.	अ.	विना.	असं.	अनाहार	अनाकार
अवि		अ.	५					आ.मि.			मति.		भ.६						
प्रम.		४	४					कार्म.			श्रुत.								
		अ.	३								अव.								

नं. ३३५

**क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप**

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं	का	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१३ आहा. २ विना.	३	१ क्रो.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२. द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा गृहीतव्याः\*३३६।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*३३७।

क्रोधकषाय-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः,

सासादन, अविरतसम्यग्दृष्टि और प्रमत्तसंयत ) होते हैं, शेष सभी अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापों में तेरह योग ( आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग के बिना ) होने की विशेषता है, शेष सभी आलाप सामान्य के सदृश जानना चाहिए।

उन्हीं क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापों में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने में केवल अपर्याप्तप्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

क्रोधकषायी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक सासादन गुणस्थान, दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, तेरह योग ( आहारककाययोग और आहारक-मिश्रकाययोग के बिना ), तीनों वेद, क्रोध कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य

### नं. ३३६

### क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पृ.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७,६ ४	४	४	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	१ क्रो.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३३७

### क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ कृ.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ६ ५ ४,३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	१ क्रो.	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	२ द्र.२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

क्रोधकषायः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३३८।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३३९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषा अपर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*३४०।

और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती क्रोधकषायी जीवों के पर्याप्तकालीन आलापों में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं क्रोधकषायी सासादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलाप वर्णन में केवल अपर्याप्तप्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि इसमें नरकगति के बिना तीनों गतियाँ होती हैं।

नं. ३३८

क्रोधकषायी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. सां.	२ सं. प.	६ प. अ.	१०	४	४	१ पं.	१ पं.	१३ आहा. २ विना.	३	१ क्रो.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३३९

क्रोधकषायी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. सां.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पं.	१ पं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	१ क्रो.	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३४०

क्रोधकषायी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	३ ति. म. दे.	१ पं.	१ पं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	१ क्रो.	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.२ का. शु. भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

क्रोधकषाय-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने क्रोधकषायः कषायस्थाने, शेषाः ओधवद् वक्तव्याः\*३४१।

क्रोधकषाय-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने क्रोधकषायः इति शेषा ओधवद् ज्ञातव्याः\*३४२।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापाः वक्तव्याः\*३४३।

क्रोधकषायी सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में कषाय के स्थान पर केवल क्रोधकषाय होती है, शेष सभी आलाप मूल ओधालाप के समान होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि क्रोधकषायी जीवों के आलाप में क्रोधकषाय ही होती है, शेष आलाप सामान्यवत् होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि क्रोधकषायी जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापों में केवल पर्याप्तप्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ३४१ क्रोधकषायी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	१०	३	१	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
सं.	सं.					पिं.	पिं.	म.४		क्रो.	ज्ञान.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	सं.	सं.	आहार	साकार
प.	प.							व.४		३	३		अज्ञा.					अनाकार	
								औ.१		मिश्र.									
								वै.१											

### नं. ३४२ क्रोधकषायी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	४	१	१	१३	३	१	३	१	३	द्र.६	१	३	१	२	२
अवि.	सं.	प.	७			पिं.	पिं.	आहा.२		क्रो.	मति.	असं.	विं.	भा.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
अ.	प.	६						विना.		श्रुत.	अव.		पिं.			क्षा.	अनाहार	अनाकार	
	स.	अ.											पिं.			क्षायो.			
	अ.												पिं.						

### नं. ३४३ क्रोधकषायी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	१०	३	१	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
अवि.	सं.					पिं.	पिं.	म.४		क्रो.	मति.	असं.	विं.	भा.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
अ.	प.							व.४			श्रुत.		पिं.			क्षा.		अनाकार	
								औ.१			अव.		पिं.			क्षायो.			
								वै.१					पिं.						



तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*३४४।

क्रोधकषाय-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट्पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, क्रोधकषायः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३४५।

क्रोधकषाय-प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादशयोगाः — आहार-आहारमिश्राभ्यां सह, त्रयो

इसी प्रकार अपर्याप्तक असंयतसम्यग्दृष्टि क्रोधकषायी जीवों के आलापों में अपर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाएं ही कही जाती हैं।

क्रोधकषायी संयतासंयतगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक ( पंचम ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, दो गति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ), तीनों वेद, क्रोधकषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्रोधकषायी जीवों के आलाप कहने पर—

एक ( छठा ) गुणस्थान, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ), छहों पर्याप्ति, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, ग्यारह

### नं. ३४४ क्रोधकषायी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं.	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	४	१ लं.	१ लं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	२ पु. नं.	१ क्रो.	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ लं. लं.	२.२ का. शु. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३४५ क्रोधकषायी संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ लं.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ लं. म.	१ लं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	१ क्रो.	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ लं. लं.	२.६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

वेदाः, क्रोधकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३४६</sup>।

क्रोधकषाय-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः तिस्रःसंज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, क्रोध कषायः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३४७</sup>।

योग ( उपर्युक्त नौ में आहारक और आहारकमिश्र मिलाने से ), तीनों वेद, क्रोध कषाय, आदि के चारों ज्ञान, तीन संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं तथा भाव से तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती क्रोधकषायी जीवों के आलाप कहने पर—

एक ( सप्तम ) गुणस्थान, एक जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, तीन संज्ञा ( आहारसंज्ञा के बिना ), मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचन योग, औदारिककाययोग ), तीनों वेद, क्रोधकषाय, चार ज्ञान, तीन संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ), तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं तथा तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व ( औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ), संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

क्रोधकषायी अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवों के एक गुणस्थान ( आठवाँ ), भाव से शुक्ललेश्या

### नं. ३४६

### क्रोधकषायी प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ म.	१ प्र.	१ प्र.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.२	३	१ क्रो.	४ मति. श्रुत. अव. मन.	३ सामा. छेदो. परि.	३ प्र. प्र.	६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३४७

### क्रोधकषायी अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ क्र.	१ सं.प.	६	१०	३ आहा. विना.	१ म.	१ प्र.	१ प्र.	९ म.४ व.४ औ.१	३	१ क्रो.	४ मति. श्रुत. अव. मन.	३ सामा. छेदो. परि.	३ प्र. प्र.	६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

क्रोधकषाय-अपूर्वकरणानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, भावेन शुक्ललेश्या, शैवा आलापा अप्रमत्तसंयतवद् ज्ञातव्याः\*३४८।

क्रोधकषाय-प्रथमानिवृत्तिकरणानां भण्यमाने द्वे संज्ञे, शेषाः प्ररूपणा अपूर्वकरणवद् वक्तव्याः\*३४९।

क्रोधकषाय-द्वितीयानिवृत्तिकरणानां भण्यमाने, परिग्रहसंज्ञा एका, शेषा आलापाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*३५०।

एवं मानमायाकषाययोरपि मिथ्यादृष्टेरारभ्य अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्तानां ज्ञातव्याः। विशेषेण यत्र क्रोधकषायस्तत्र मानकषायो मायाकषायो वा वक्तव्यः। लोभकषायस्य क्रोधकषायवद्भंगः। विशेषण तु ओघालापे भण्यमाने दश गुणस्थानानि, षट् संयमाः, लोभकषायश्च वक्तव्याः।

यही दो विशेषता होती हैं, शेष सभी आलाप अप्रमत्त के समान जानना चाहिए।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथमभागवर्ती क्रोधकषायी जीवों के सभी आलाप अपूर्वकरण के समान ही होते हैं, केवल संज्ञा मार्गणा में यहाँ दो संज्ञाएं (मैथुन और परिग्रह) ही जाननी चाहिए।

क्रोधकषायी द्वितीयभागवर्ती अनिवृत्तिकरण जीवों के आलापों में एक परिग्रह संज्ञा मात्र होती है। शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार मान कषाय और माया कषाय वाले जीवों के भी मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक के आलाप जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि जहाँ क्रोधकषाय कहा गया है वहाँ मान कषाय और माया कषाय कहना चाहिए। लोभकषाय के आलाप क्रोध कषाय के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि लोभकषाय के ओघालाप कहने पर आदि के दश

नं. ३४८

क्रोधकषायी अपूर्वकरण जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	३	१	४	२	३	६	१	२	१	१	२
क्रोध	सं.प.			आहा. विना.	म.	पिं.	प्रां.	म.४ व.४ औ.१		क्रो.	मति. श्रुत. अव. मनः	सामा. छेदो.	पिं. प्रां. प्रां.	द्र.६ भा.१ शुक्ल.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ३४९

क्रोधकषायी प्रथम भागवर्ती अनिवृत्तिकरण जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	२	१	१	१	९	३	१	४	२	३	६	१	२	१	१	२
क्रोध	सं.प.			मै.प.	म.	पिं.	प्रां.	म.४ व.४ औ.१		क्रो.	मति. श्रुत. अव. मनः	सामा. छेदो.	पिं. प्रां. प्रां.	द्र.६ भा.१ शुक्ल.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ३५०

क्रोधकषायी द्वितीय भागवर्ती अनिवृत्तिकरण जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	१	१	१	१	९	०	१	४	२	३	६	१	२	१	१	२
क्रोध	सं.प.			प.	म.	पिं.	प्रां.	म.४ व.४ औ.१	अपा.	क्रो.	मति. श्रुत. अव. मनः	सामा. छेदो.	पिं. प्रां. प्रां.	द्र.६ भा.१ शुक्ल.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

अकषायानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, अतीतगुणस्थानमप्यस्ति, द्वौ जैवसमासौ अतीतजीवसमासा अप्यस्ति, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, दश चत्वारः द्वौ एकः प्राणः अतीतप्राणोऽप्यस्ति, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, सिद्धगतिरप्यस्ति, पञ्चेन्द्रियजातिरनिन्द्रियत्वमप्यस्ति, त्रसकायोऽकायत्वप्यस्ति, एकादश योगा अयोगोऽप्यस्ति, अपगतवेदः, अकषायः, पञ्च ज्ञानानि, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमो नैव संयमो नैवासंयमो नैव संयमासंयमोऽप्यस्ति, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>३५१</sup>।

एवं कषायमार्गणायां विंशतिकोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-  
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां कषायमार्गणानामा षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

गुणस्थान, छह संयम ( यथाख्यात के बिना ) और लोभकषाय कहना चाहिए।

अकषायी जीवों के आलाप कहने पर—उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये चार गुणस्थान तथा अतीत गुणस्थान भी है, संज्ञी-पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा अतीतजीवसमासस्थान भी है, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ तथा अतीतपर्याप्तिस्थान भी है; दशों प्राण, सयोगिकेवली के संभवित चार प्राण और दो प्राण, अयोगिकेवली के संभवित एक प्राण और सिद्ध जीवों की अपेक्षा से अतीतप्राणस्थान भी है; क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति तथा सिद्धगति भी है, पंचेन्द्रियजाति तथा अनिन्द्रियत्व स्थान भी है, त्रसकाय तथा अकायत्वस्थान भी है, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये ग्यारह योग तथा अयोगस्थान भी है, अपगतवेद, अकषाय, पाँचों सम्यग्ज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम तथा संयम, संयमासंयम और असंयम इन तीनों से रहित स्थान भी है, चारों दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से शुक्ल लेश्या तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक तथा भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

इस प्रकार कषायमार्गणा में बीस कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत

आलाप अधिकार में गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका

कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

नं. ३५१

अकषायी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ अंत. अती. गु.	२ सं.प. सं.अ गु.	६ प. ६ अ अति. प.	१०,४ २,१ प्र. अति. प्र.	० ० प्र. अति. प्र.	१ म. सि.	१ पं. प्र.	१ त्र. प्र.	११ म.४ व.४ औ.२ कार्म.१ अयो.	० अपना. अकषा.	० अकषा.	५ मति. श्रुत. अव. मन. केव.	१ यथा. अनु.	४ अनु.	४ द्र.६ भा.१ शु. अले.	१ भ. प्र.	२ औ. क्षा.	१ सं अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

तस्य प्राप्त्यै प्रयत्नेना-भ्यसामि ज्ञानमार्गणाम् ।।१।।

मतिश्रुताज्ञानिनां भण्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः अष्टौ प्राणाः षट् प्राणाः, सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः, पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*३५२</sup>।

**श्लोकार्थ**—अतीन्द्रिय और अनुत्तर जो पंचमज्ञान केवलज्ञान है उसकी प्राप्ति के लिए मैं ज्ञानमार्गणा का अभ्यास करता हूँ॥१॥

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से ओघालाप मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए। मति, श्रुत, अज्ञानी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—दो गुणस्थान ( मिथ्यात्व और सासादन ), चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्ति, पाँच अपर्याप्ति, चार पर्याप्ति, चार अपर्याप्ति, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रिय आदि पाँचों जातियाँ, पृथिवीकाय आदि छहों काय, तेरह योग ( आहारक और आहारकमिश्र के बिना ), तीनों वेद, चारों कषाय, दो अज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, दो सम्यक्त्व ( मिथ्यात्व, सासादन ), संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

## मति-श्रुत-अज्ञानी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ मि. सा	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१३ आ. द्वि. विना.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	२ मि. हंस	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



मतिश्रुताज्ञानिनां सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ जीवसमासौ, शेषा यथायोग्या भणितव्याः\*३५८।

उन्हीं मति-श्रुत अज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर उनके एक गुणस्थान ( द्वितीय ), संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं तथा शेष सभी आलाप यथायोग्य—गुणस्थान की योग्यतानुसार जानना चाहिए।

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	हं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्याः	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ अचक्षुं अक्षुं	२ द्र. २ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. सां.	२ सं. प. सं. अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ पं.	१ सं.	१३ आ. द्वि. विना.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२. ६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

विभंगज्ञानिनां भण्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानं, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३६९</sup>।

विभंगावधि ज्ञानी जीवों के आलाप कहने पर उनके दो गुणस्थान ( मिथ्यात्व, सासादन ), एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दश योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग ), तीनों वेद, चारों

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सासां.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पिं.	१ प्रां.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अ	६ भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा	१ सं. अ.	६ अ.	७	४	३ ति. म. दै.	१ पुं.	१ पुं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अ.	३.२ का. शु. भा.६	१ भ.	१ सां.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ मि. सा.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पिं.	१ पू.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	१	१ विभं.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षु.	६ भा.६	२ भ. अ.	२ मि. सां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



विभंगज्ञानि-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानं, असंयमः, द्वे दर्शने, द्वव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३६२।

विभंगज्ञानि-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानं, असंयमः, द्वे दर्शने, द्वयभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३६२</sup>।

कषाय, विभंगज्ञान, असंयम, दो दर्शन ( चक्षु, अचक्षु ), द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्ति, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दश योग, तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान, एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, दश योग, तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यत्व, सासादन सम्यक्त्व, संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. ३६२

## विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ ॥ ॥	१ ॥ ॥	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	१ विभं.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३६३

## विभंगज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सां. सां.	१ सं. प.	६	१०	४	४	१ पं.	१ प्रं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	१ विभं.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ वां. सां.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञानिनां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदाः, अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, द्वे ज्ञाने, सप्त संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३६४।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३६५।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने अविरतसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयतनामनी द्वे गुणस्थाने, चत्वारो योगाः, स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ, द्वे ज्ञाने, सामायिक-छेदोपस्थापना-असंयमाः, त्रयः संयमाः, शेषाः प्ररूपणाः अपर्याप्तसंबन्धिन्यः

आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञानी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—

नौ गुणस्थान (चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक), दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञा तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, दो ज्ञान, सात संयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञानी जीवों के पर्याप्तसंबन्धी आलापों में केवल पर्याप्तक प्ररूपणाओं को ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार उन आभिनिबोधिक और श्रुतज्ञानी अपर्याप्तक जीवों के आलाप वर्णन में अविरतसम्यग्दृष्टि एवं प्रमत्तसंयत नाम के दो गुणस्थान होते हैं, चार योग (औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, आहारकमिश्र और कार्मणकाययोग), स्त्रीवेद के बिना दो वेद, आदि के दो ज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना और

नं. ३६४

मति-श्रुतज्ञानी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि. से. क्षी.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ	१० ७	४ प्रा. क्षी.	४ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	१५	३ अप्रा. अप्रा.	४ अप्रा. अप्रा.	२ मति. श्रुत.	७	३ के. द. विना.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३६५

मति-श्रुतज्ञानी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि. से. क्षी.	१ सं.प.	६	१०	४ प्रा. क्षी.	४ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	१ प्रा. प्रा.	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अप्रा. अप्रा.	४ अप्रा. अप्रा.	२ मति. श्रुत.	७	३ के. द. विना.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं	१ आहार	२ साकार अनाकार

कथयितव्याः\*३६६।

आभिनिबोधक-श्रुतज्ञानासंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे ज्ञाने, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३६७।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने दश योगाः, शेषाः आलापा पर्याप्तसंबन्धिना वक्तव्याः\*३६८।

असंयम ये तीन संयम होते हैं। शेष सभी प्ररूपणाएं अपर्याप्तसंबन्धी ही जानना चाहिए।

आभिनिबोधक और श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—

एक गुणस्थान (चतुर्थ), दो जीवसमास (संज्ञी पर्याप्तक और संज्ञी अपर्याप्तक), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, तेरह योग (आहारकद्रिक के बिना), तीनों वेद, चारों कषाय, दो ज्ञान, असंयम, तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक,

नं. ३६६

मति-श्रुतज्ञानी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ अवि. प्र.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	२ मति. श्रुत.	३ असं. सामा. छेदो.	३ के. द. पुं.	३.२ का. शु. भा.६	१ भ. औप. क्षा. क्षायो.	३	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३६७

मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	२ मति. श्रुत.	१ असं.	३ के. द. पुं.	३.६ भा.६	१ भ. औप. क्षा. क्षायो.	३	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३६८

मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	२ मति. श्रुत.	१ असं.	३ के. द. विना.	३.६ भा.६	१ भ. औप. क्षा. क्षायो.	३	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने, त्रयो योगाः, द्वौ वेदौ, शेषा यथायोग्याः कथयितव्याः\*३६९।

संयतासंयतप्रभृति यावत् क्षीणकषाय इति तावन्मूलौघभंगः। विशेषेण आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञाने वक्तव्ये।

एवं अवधिज्ञानमपि वक्तव्यं, विशेषेणावधिज्ञानमेकमेव भणितव्यम्।

कश्चिदाह-ज्ञानदर्शनमार्गणे येन क्षयोपशममाश्रित्य स्थिते तेनमतिश्रुतज्ञानयोर्निरुद्धयोर्द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा ज्ञानैर्भवितव्यम् तथा अवधिमनःपर्ययज्ञानयोर्निरुद्धयोः त्रिभिश्चतुर्भिर्वा ज्ञानैर्भवितव्यम् ?

आचार्यः प्राह-सत्यमेतत्, किन्तु विवक्षितज्ञानेन सह इतरेषु ज्ञानेषु सत्स्वपि न विवक्षा कृता, तेन विवक्षितज्ञानव्यतिरिक्तज्ञानानामपनयनं कृतम् ।

अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती मति-श्रुतज्ञानी जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके दश योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग ) होते हैं, शेष सभी पर्याप्तक प्ररूपणाओं का ही कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार उन अपर्याप्तक असंयतगुणस्थानवर्ती मति-श्रुतज्ञानधारी जीवों के आलापों में तीन योग ( औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग ), दो वेद ( पुरुषवेद और नपुंसकवेद ) होते हैं, शेष सभी आलाप यथायोग्य कहना चाहिए।

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक इन मति-श्रुतज्ञानी जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि ज्ञान आलाप कहते समय आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार अवधिज्ञान के आलाप कहते समय यह विशेष बात ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ पर पूर्वोक्त दो ज्ञानों के स्थान में एक अवधिज्ञान ही कहना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

जब ज्ञान और दर्शन मार्गणा अपने आवरणकर्मों के क्षयोपशम के आश्रय से स्थित हैं तब मतिज्ञान और श्रुतज्ञान निरुद्ध आलापों के कहने पर दो, तीन अथवा चार ज्ञान तथा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान निरुद्ध आलापों के कहने पर तीन अथवा चार ज्ञान होना चाहिए? आचार्य इसका समाधान करते हैं कि आपका कहना सत्य है किन्तु विवक्षित ज्ञान के साथ इतर ज्ञानों के होने पर भी उनकी विवक्षा नहीं की गई है इसलिए विवक्षित ज्ञान से अतिरिक्त अन्य ज्ञानों को नहीं गिनाया गया है।

नं. ३६९

मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	४	१	१	३	२	४	२	१	३	३	१	३	१	२	२
अवि.	सं.अ.	अ.				पुं.	पुं.	औ.मि. वै.मि. कर्म	पु. न.		मति. श्रुत.	असं.	के. द. वि.	द्र.२ का. शु. भा.६	१ भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं	आहार अनाहार	साकार अनाकार

मनःपर्ययज्ञानिनां भण्यमाने सन्ति सप्त गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, आहारद्विकेन विना नव योगाः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, मनःपर्ययज्ञानं, परिहारसंयमेन विना चत्वारः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्या भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि।

मनःपर्ययज्ञानिनां औपशमिकसम्यक्त्वं कथं संभवति ?

यः कश्चित् वेदकसम्यक्त्वानन्तरं द्वितीयसम्यक्त्वं प्राप्नोति, तस्य सम्यक्त्वस्य प्रथमसमयेऽपि मनःपर्ययज्ञानोपलंभात्। तथा मिथ्यात्वानन्तरं उपशमसम्यग्दृष्टौ मनःपर्ययज्ञानं नोपलभ्यते, मिथ्यात्व पश्चादुत्कृष्टोपशमसम्यक्त्वकालादपि गृहीतसंयमप्रथमसमयात् सर्वजघन्यमनःपर्ययज्ञानोत्पादनसंयमकालस्य बहुत्वोपलंभात्।

संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३७०।

मनःपर्ययज्ञानी जीवों के आलाप कहने पर—

सात गुणस्थान ( प्रमत्तसंयत से क्षीणकषाय तक ), एक जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं एवं क्षीणसंज्ञा भी होती है, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, आहारकद्विक के बिना नव योग, पुरुषवेद, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है, मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम के बिना चार संयम, तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या तथा भाव से तेज, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व होते हैं।

प्रश्न—मनःपर्ययज्ञानी जीवों के औपशमिक सम्यक्त्व कैसे संभव हो सकता है ?

उत्तर—इसका समाधान यह है कि जो कोई मनुष्य वेदक सम्यक्त्व के अनन्तर द्वितीय सम्यक्त्व को प्राप्त करता है उनके सम्यक्त्वप्राप्ति के प्रथम समय में भी मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तथा मिथ्यात्व के पश्चात् उपशमसम्यग्दृष्टि जीव में मनःपर्ययज्ञान नहीं हो सकता है। मिथ्यात्व के पश्चात् उत्पन्न हुए उत्कृष्ट उपशमसम्यक्त्वकाल से भी ग्रहण किया गया संयम प्रथम समय से सर्वजघन्य मनःपर्ययज्ञान के उत्पादन में संयमकाल का बहुत्व देखा जाता है। सम्यक्त्वमार्गणा के पश्चात् वे संज्ञी, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवों के तीनों सम्यक्त्व बतलाए गए हैं। क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ तो मनःपर्ययज्ञान इसलिए होता है कि मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति में जो विशेष संयम हेतु पड़ता है वह विशेष संयम इन दोनों सम्यक्त्वों में हो सकता है। अब रही औपशमिक

नं. ३७०

मनःपर्ययज्ञानी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
७	१	६	१०	४	१	१	१	९	१	४	१	४	३	३.६	१	३	१	१	२
प्रम. से क्षीण.	सं.प.			क्षीणसं	म.	पं.	त्रं.	म.४ व.४ औ.१	पु.	अकषा.	मनः	सामा. छेदो. सूक्ष्म. यथा.	के. द. शुभ.	द्र.६ भा.३ भ.	औप. क्षा. क्षायो.		सं.	आहार	साकार अनाकार

मनःपर्ययज्ञान-प्रमत्तसंयतप्रभृति यावत् क्षीणकषाय इति तावन्मूलौघभंगः। नवरि मनःपर्ययज्ञानमेकमेव वक्तव्यम्।  
अत्र परिहारशुद्धिसंयमोऽपि नास्तीति भणितव्यम्।

केवलज्ञानिनां भण्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने अतीतगुणस्थानमप्यस्ति, द्वौ जीवसमासौ एको वा अतीतजीवसमासोऽप्यस्ति  
षट् पर्याप्तयः षट् पर्याप्तयः, अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, चत्वारः प्राणा द्वौ प्राणौ एकः प्राणः अतीतप्राणोऽप्यस्ति, क्षीणसंज्ञा,

सम्यग्दर्शन की बात, सो उनके प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व ऐसे दो भेद हैं। उनमें प्रथमोपशम सम्यक्त्व को अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि ही उत्पन्न करता है और उसके रहने का जघन्य अथवा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है। यह अन्तर्मुहूर्तकाल, संयम को ग्रहण करने के पश्चात् मनःपर्ययज्ञान को उत्पन्न करने के योग्य संयम में विशेषता लाने के लिए जितना काल लगता है उससे छोटा है। इसलिए प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति न हो सकने के कारण मनःपर्ययज्ञान के साथ उसके होने का निषेध किया है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उपशम श्रेणी के अभिमुख विशेष संयमी के ही होता है, इसलिए यहाँ पर अलग से मनःपर्ययज्ञान के योग्य विशेष संयम को उत्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है और यही कारण है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के प्रथम समय में भी मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। अथवा जिस संयमी ने पहले वेदक सम्यक्त्व के काल में ही मनःपर्ययज्ञान को ग्रहण कर लिया है उसके भी उपशम श्रेणी के अभिमुख होने पर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है, इसलिए भी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के प्रथम समय में मनःपर्ययज्ञान पाया जा सकता है। ऊपर टीका में 'पदमसमए वि' में जो अपि शब्द आया है उससे यह ध्वनित होता है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के ग्रहण करने के द्वितीयादिक समय में वर्द्धमान चारित्र रहता है, इसलिए वहाँ तो मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो ही सकता है, किन्तु प्रथम समय में भी संयम में इतनी विशेषता पाई जाती है कि वह मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति में कारण हो सकता है। इस कथन का तात्पर्य यह हुआ कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अनन्तर या उसके साथ संयम की उत्पत्ति होती है इसलिए उसमें तो मनःपर्ययज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता है। परन्तु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संयमी के ही होता है, इसलिए उसमें मनःपर्ययज्ञान के उत्पन्न होने में कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार मनःपर्ययज्ञान के साथ तीनों सम्यक्त्व तो होते हैं, किन्तु औपशमिकसम्यक्त्व में द्वितीयोपशम का ही ग्रहण करना चाहिए, प्रथमोपशम का नहीं। सम्यक्त्व आलाप के आगे संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के जीवों में जो मनःपर्ययज्ञान माना है वह सब मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए। उसमें विशेष बात यही है कि ज्ञान के स्थान पर केवल एक मनःपर्ययज्ञान कहना चाहिए। यहाँ परिहारविशुद्धि संयम भी नहीं होता है ऐसा मानना चाहिए।

केवलज्ञानी जीवों के आलाप कहने पर — दो गुणस्थान ( तेरहवाँ-चौदहवाँ ) होते हैं गुणस्थान से अतीत अवस्था भी होती है। दो जीवसमास होते हैं एवं अतीतजीवसमास भी होता है। छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ होती हैं तथा पर्याप्तियों से अतीत अवस्था भी होती है। चार प्राण,

मनुष्यगतिः सिद्धगतिरप्यस्ति, पंचेन्द्रियजातिः अनिन्द्रियत्वमप्यस्ति, त्रसकायोऽकायत्वमप्यस्ति, सप्त योगा अयोगोऽप्यस्ति, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं यथाख्यातशुद्धिसंयमः, नैव संयमो नैवासंयमो नैव संयमासंयमः अप्यस्ति, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्या भावेन शुक्ललेश्या अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३७१</sup>।

सयोगि-अयोगि-सिद्धानामालापा मूलौघवत् कथयितव्याः। एवं ज्ञानमार्गणायां विंशतिकोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गतालापाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां ज्ञानमार्ग-  
णानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

दो प्राण, एक प्राण होता है तथा अतीतप्राण भी होता है। क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति तथा सिद्धगति भी पाई जाती है। पञ्चेन्द्रियजाति तथा अनिन्द्रिय अवस्था भी होती है। त्रसकाय एवं अकायत्व भी होता है। सात योग तथा अयोगी अवस्था भी होती है। अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातशुद्धिसंयम होता है तथा संयम, असंयम एवं संयमासंयम से रहित अवस्था भी होती है। केवलदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या तथा भाव से एक शुक्ललेश्या एवं अलेश्या स्थान भी होता है। भव्यसिद्धिक होते हैं तथा भव्यत्व-अभव्यत्व दोनों से रहित भी होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञी-असंज्ञी से रहित, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

सयोगकेवली, अयोगकेवली एवं सिद्ध जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान कहना चाहिए। इस प्रकार ज्ञानमार्गणा में बीस कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथमखण्ड में सत्प्ररूपणा  
के अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमती कृत  
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में ज्ञानमार्गणा नाम  
का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



नं. ३७१

केवलज्ञानी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ सयो. अयो. अती. गु.	२ पर्या. अप. अती. जीव.	६प. ६अ. अती. पर्या.	४ २,१ अती. प्राण.	० १ १ १	१ म. १ १	१ पं. १ १	१ त्र. १ १	७ म.२ व.२ औ.२ कर्म.१ अयो.	० अपा.	० अकषा.	१ केव.	१ यथा. अनु.	१ के. द.	१ द्र.६ भा.१ शुक्ल. अले.	१ भ. १ १	१ क्षा.	० अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## अथ संयममार्गणाधिकारः

असंयममपाकृत्य, संयमासंयमेन हि।

भावयामि कदा मे स्यात् श्रेष्ठः पंचमसंयमः॥१॥

अथ संयमाधिकारे नव संदृष्टयो निगद्यते —

संयमानुवादेन सामान्येन संयतानां भण्यमाने नव गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चत्वारो द्वौ एकः प्राणः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगा अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, पञ्च ज्ञानानि, पञ्च संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*३७२।

प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त

### अब संयम मार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है।

मंगलाचरण — असंयम को दूर करके संयमासंयम ( देशसंयम ) के द्वारा मैं कब पंचम संयम को प्राप्त करूँ ऐसी भावना भाता हूँ। अर्थात् यथाख्यात संयम की मुझे शीघ्र प्राप्ति हो यही भावना इस मंगलाचरण में प्रगट की गई है।

अब संयम अधिकार में नव संदृष्टियाँ कही जाती हैं—

संयममार्गणा के अनुवाद से संयतों के आलाप कहने पर—नौ गुणस्थान ( छठे से चौदहवें गुणस्थान तक ), दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चार प्राण, दो प्राण, एक प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, तेरहयोग ( वैक्रियिकद्विक के बिना ) एवं अयोगस्थान भी है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, मतिज्ञानादि पाँचों ज्ञान, सामायिकादि पाँचों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्या तथा भाव से तेजो, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्या एवं अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा इन दोनों अवस्थाओं से रहित अवस्था है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी, अनाकारोपयोगी तथा दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान ( प्रमत्तसंयत ), दो

नं. ३७२

संयमी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	१	१	१	१३	३	४	१	५	४	द्र.६	१	३	१	२	२
प्रम.	सं.प.	प.	७	४	म.	प.	प.	वै.द्वि.	कृपां.	कृपां.	मति.	सामा.	४	भा.३	भ.	औप.	सं	आहार	साकार
से	सं.अ.	६	४	२				विना.			श्रुत.	छेदो.		शुभ.		क्षा.	अनु.	अनाहार	अनाकार
अयो.	अ.	अ.	२	१				अयो.			अव.	परि.		अले.		क्षायो.			यु.उ.
			१								मनः	सूक्ष्म.							
											केव.	यथा.							



प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षट् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३७३।

अप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, आहारसंज्ञा नास्ति, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षट् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३७४।

जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग ), तीनों वेद, चारों कषाय, चारों ज्ञान ( केवलज्ञान के बिना ), तीन संयम ( सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ), आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं एवं भाव से तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्या, भव्यसिद्धिक, तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक गुणस्थान, एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, भय, मैथुन और परिग्रह ये तीन संज्ञाएं होती हैं किन्तु यहाँ पर आहार संज्ञा नहीं है। मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिक काययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिकादि तीन संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, औपशमिकादि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

## नं. ३७३

## संयम की अपेक्षा प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ षट्	१ षट्	११ म.४ व.४ औ.१ आहा.२	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ के. द. विना.	३ द्र.६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

## नं. ३७४

## संयम की अपेक्षा अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अप्र.	१ सं.प.	६	१०	३ आहा. विना.	१ म.	१ षट्	१ षट्	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ के. द. विना.	३ द्र.६ भा.३ शुभ.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

अपूर्वकरणप्रभृति यावदयोगिकेवलीति तावन्मूलौघभंगः।

सामायिकशुद्धिसंयतानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयोवेदाः, अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषायाः चत्वारि ज्ञानानि, सामायिक शुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>क ३७५।</sup>

प्रमत्तसंयतादारभ्य अनिवृत्तिकरणपर्यन्तानां भंगा मूलौघवद् वक्तव्याः। एवं छेदोपस्थापनसंयमस्यापि वक्तव्यम्।

परिहारशुद्धिसंयतानां भण्यमाने स्तः द्वे गुणस्थाने, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगा आहार-आहारमिश्रौ न स्तः, पुरुषवेदः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि

अपूर्वकरण गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक संयमी जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान होते हैं।

सामायिक शुद्धिसंयत जीवों के आलाप कहने पर—प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये चार गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक-काययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये ग्यारह योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिक शुद्धि संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकादि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सामायिक शुद्धिसंयतों के आलाप मूल ओघालाप के समान हैं। विशेष बात यह है कि संयम आलाप कहते समय एक सामायिक शुद्धिसंयम ही कहना चाहिए। इसी प्रकार छेदोपस्थापना संयम के भी आलाप जानना चाहिए, किन्तु संयम आलाप कहते समय एक छेदोपस्थापना संयम ही कहना चाहिए।

परिहारविशुद्धिसंयत जीवों के आलाप कहने पर—प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये दो गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, और औदारिककाययोग ये नौ योग होते हैं, किन्तु यहाँ पर आहारक काययोग और आहारकमिश्रकाययोग नहीं होते हैं। पुरुषवेद, चारों कषाय आदि के तीन ज्ञान होते हैं, किन्तु यहाँ पर आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग नहीं होते हैं। पुरुषवेद, चारों कषाय आदि के तीन ज्ञान होते हैं, किन्तु यहाँ पर मनःपर्ययज्ञान नहीं

नं. ३७५

सामायिकशुद्धिसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ प्र. अप्र. अपू. अनि.	२ सं.प. सं.अ. अपू. अनि.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ पू.	१ पू.	११ म.४ व.४ औ.१ आहा.२	३ कृपा.	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः.	१ सामा.	३ के. द. विना.	३ द्र.६ भा.३ शुभ.	१ भ. औप. क्षा. क्षायो.	३	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

ज्ञानानि मनःपर्ययज्ञानं नास्ति, कारणं आहारद्विकं मनःपर्ययज्ञानं परिहारशुद्धिसंयमश्च एते युगपदेव नोत्पद्यन्ते। परिहारशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्या, भावेन तेजः पद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३७६।

प्रमत्ताप्रमत्तपरिहारशुद्धिसंयतानां पृथक्-पृथक् भण्यमाने ओघभंगः। विशेषेण आहारद्विक-मनःपर्ययज्ञान-उपशमसम्यक्त्व-सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमाश्च न सन्ति। परिहारशुद्धिसंयम एकश्चैव संयमस्थाने। अत्र पुरुषवेद एव वक्तव्यः।

सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतानां भण्यमाने मूलौघभंगः।

यथाख्यातशुद्धिसंयतानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश चत्वारो द्वौ एकश्च प्राणाः, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, अपगतवेदः,

है, क्योंकि, आहारकद्विक, मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयम ये तीनों युगपत् नहीं उत्पन्न होते हैं। ज्ञान आलाप के आगे परिहारविशुद्धिसंयम ये तीनों युगपत् नहीं उत्पन्न होते हैं। ज्ञान आलाप के आगे परिहारविशुद्धिसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व के बिना क्षायिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

प्रमत्तसंयत-परिहार विशुद्धिसंयत और अप्रमत्तसंयत-परिहार विशुद्धिसंयत जीवों के आलाप पृथक्-पृथक् कहने पर उनके आलाप ओघालाप के समान हैं। विशेष बात यह है कि यहाँ पर आहारककाययोगद्विक, मनःपर्ययज्ञान, औपशमिकसम्यक्त्व, सामायिक शुद्धिसंयम और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयम इतने आलाप नहीं होते हैं। संयम स्थान पर एक परिहार विशुद्धि संयम ही होता है तथा वेदस्थान पर एक पुरुषवेद ही कहना चाहिए।

सूक्ष्म साम्परायिक शुद्धिसंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके आलाप मूल ओघालाप के समान ही जानना चाहिए।

यथाख्यात विहार शुद्धिसंयत जीवों के आलाप कहने पर—उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये चार गुणस्थान, संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चार प्राण, दो प्राण और एक प्राण, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग ये ग्यारह योग, अपगतवेद, अकषाय, मतिज्ञानादि पांचो सुज्ञान, यथाख्यातविहार शुद्धिसंयम, चारों दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से शुक्ल लेश्या तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक, वेदक सम्यक्त्व के बिना शेष दो सम्यक्त्व, संज्ञिक तथा

नं. ३७६

परिहारविशुद्धिसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ प्र. अ.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ परि.	३ के. द. विनि.	३ द्र.६ भा.३ शुभ.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

संयतासंयतानां पूर्वपञ्चमगुणस्थानवद् भंगः।

असंयतानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः सप्त प्राणाः अष्ट प्राणाः षट् प्राणाः सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, षट् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्वयभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा ३७८।

असंयत जीवों के आलाप कहने पर—आदि के चार गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण और तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों गतियाँ, एकेन्द्रियजाति आदि पाँचों जातियाँ

## यथाख्यात शुद्धिसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	२	६	१०	०	१	१	१	११	०	४	५	१	४	६.६	१	२	१	२	२
उ.	सं.प.	प.	४	सं.	म.	पे.	त्रं.	म.४	अपा.	अकषा.	मति.	यथा.		भा.१	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
क्षी.	अप.	६	२	क्षीणसं.				व.४		अकषा.	श्रुत.			शुक्ल.		क्षा.	अनु.	अनाहार	अनाकार
स.		अ.	१					औ.१			अव.			अले.					यु.उ.
अ.								का.१			केव.								

## असंयत जीवों के आलाप

गु.	जी	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१३ आ. द्वि. विना.	३	४	६ अज्ञा. ३ ज्ञान. ३	१ असं.	३ के.द. विना.	द्व.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*३७९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८०।

मिथ्यादृष्टेरारभ्य असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानां गुणस्थानवद् भंगा वक्तव्याः।

एवं संयममार्गणायां नव कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गतालापाधिकारे

गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां

संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

पृथिवीकाय आदि छहों काय, आहारककाय योगद्विक के बिना तेरह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान और आदि के तीन ज्ञान इस प्रकार छह ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलापों में मात्र पर्याप्तप्ररूपणाएं ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार असंयत अपर्याप्त जीवों के आलाप वर्णन में केवल अपर्याप्त प्ररूपणाएं ही ग्रहण करें।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि पर्यन्त जीवों के आलाप गुणस्थानों के अनुसार ही जानना चाहिए। इस प्रकार संयम मार्गणा में नौ कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागमग्रंथ के प्रथमखण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत

आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि

टीका में संयममार्गणा नामक अष्टम

अधिकार समाप्त हुआ।

नं. ३७९

असंयत जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	७	६	१०	४	४	५	६	१०	३	४	६	१	३	द्र.६	२	६	२	१	२
मि.	प्रा.	५	९					म.४			ज्ञान.	असं.	के.द.	भा.६	भ.		सं.	आहार	साकार
सा.		४	८					व.४			३		विना.	अ.			असं.		अनाकार
स.			७					औ.१			अज्ञा.								
अ.			६					वै.१			३								
			४																

नं. ३८०

असंयत जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३	७	६	७	४	४	५	६	३	३	४	५	१	३	द्र.२	२	५	२	२	२
मि.	अ.	अ.	७					औ.मि.			कुम.	असं.	के.द.	का.	भ.	प्रा.	सं.	आहार	साकार
सा.		५	६					वै.मि.			कुशु.		विना.	शु.	अ.	विना.	असं.	अनाहार	अनाकार
अ.		अ.	५					कर्म.			मति.			भा.६		मय.			
		४	४								श्रुत.								
		अ.	३								अव.								

## अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

दर्शनज्ञानचारित्रैः, स्वात्मसिद्धिर्भवेन्मम। ततश्चाराधनां कुर्वे स्वात्मदर्शनहेतवे॥१॥

अथ दर्शनमार्गणायां पञ्चदश कोष्ठकान्युच्यन्ते—

दर्शनानुवादेन भण्यमाने ओघालापा गुणस्थानवद् वक्तव्याः।

चक्षुर्दर्शनानां भण्यमाने सन्ति द्वादश गुणस्थानानि, षड् जीवसमासाः — चतुरिन्द्रिय-असंज्ञि-संज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः, दश-सप्त-नव-सप्त-अष्ट-षट् प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, चतुरिन्द्रियजात्यादी द्वे जाती, त्रयकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, सप्त ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चक्षुर्दर्शनं, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३८१</sup>

**अब दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है**

## मंगलाचरण

**श्लोकार्थ**—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के द्वारा मेरी स्वात्मसिद्धि होवे। इसलिए आत्मदर्शन की प्राप्ति हेतु मैं चार आराधनाओं की आराधना करता हूँ।

अब दर्शनमार्गणा में पन्द्रह ( १५ ) कोष्ठक कहे जा रहे हैं—

दर्शनमार्गणा के अनुवाद से ओघालापों का वर्णन मूल ओघालाप अर्थात् गुणस्थानों के समान ही जानना चाहिए।

चक्षुदर्शन सहित जीवों के सामान्य ओघालाप कहने पर उनके आदि के बारह गुणस्थान, छह जीवसमास—( चतुरिन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त ), छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, दश, सात, नौ, सात, आठ और छह प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय ये दो जातियाँ, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद एवं अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है, सात ज्ञान ( केवलज्ञान के बिना ), सातों संयम, चक्षुदर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक-असंज्ञिक, आहारक-अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. ३८१

## चक्षुदर्शनी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२	६ च.प. च.अ. असं.प. असं.अ. सं.पं. सं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१०,७ ९,७ ८,६	४  क्षीणंसं.  	४  च.पंचे.  	२  त्रसं.  	१  अपांग.  	१५  केव.  	३  विना.  	४  ज्यैष्ठ्यं  	७  भा.६  	७  र भ.  	१  अ.  	द्र.६  सं.  	२  असं.  	६  आहार  	२  अनाहार  	२  साकार  	२  अनाकार  

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८२।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८३।

चक्षुर्दर्शनिनां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, षट् जीवसमासाः, शेषा यथायोग्याः कथयितव्याः\*३८४।

उन्ही चक्षुदर्शनी जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर केवल पर्याप्त आलापों को जानना चाहिए।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी अपर्याप्तक जीवों के आलापों में मात्र अपर्याप्त प्ररूपणाएं ही ग्रहण की जाती हैं।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थान वाले चक्षुदर्शनी जीवों के आलाप कहने पर उनके एक प्रथम गुणस्थान, छह जीवसमास होते हैं तथा शेष प्ररूपणाएं यथायोग्य मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के समान ग्रहण करना चाहिए।

नं. ३८२

चक्षुदर्शनी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२ मि. से क्षी.	३ च.प. असं.प. सं.पं.	६ ५	१० ९ ८	४ क्षीपं. क्षीपं.	४	४ च.पं. च.पं.	१ म. म.	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अप.	४ अ. अ.	७ केव. विना.	७	१ क्षि. क्षि.	६ भा.६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३८३

चक्षुदर्शनी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. अ. प्र.	३ च.अ. असं.अ. सं.प.	६ अ. ७ ६ अ.	७ ७ ६	४	४	४ च.पं. च.पं.	१ म. म.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	१ क्षि. क्षि.	६ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	५ विना. मय.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३८४

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	६ च.प. च.अ. असं.प. असं.अ. सं.प. सं.अ.	६प. ६अ. ५प. ५अ.	१०,७ ९,७ ८,६	४	४	४ च.पं. च.पं.	१ म. म.	१३ विना. हि. आ.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	१ क्षि. क्षि.	६ भा.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८५।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८६।

चक्षुर्दर्शनि-सासादनसम्यग्दृष्टेरारभ्य क्षीणकषायान्तानां ओघवद् भंगाः कथयितव्याः। विशेषेण दर्शनस्थाने-चक्षुर्दर्शनमिति वक्तव्यम्।

अचक्षुर्दर्शनिनां भण्यमाने सन्ति द्वादश गुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः पञ्च पर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश-सप्त-नव-सप्त-अष्ट-षट्-सप्त-पञ्च-षट्-चतुः-चतुस्त्रिप्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, एकेन्द्रियजात्यादयः पञ्च जातयः, पृथिवीकायादयः षट् कायाः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, सप्त ज्ञानानि, सप्त

उन मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनी पर्याप्तक जीवों के वर्णन में केवल पर्याप्त आलाप ही लेवें।

उन्हीं अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि चक्षुदर्शनी जीवों के वर्णन में मात्र अपर्याप्त प्ररूपणा ग्रहण करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी सासादनगुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के आलाप मूल ओघालापों के समान कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि दर्शन आलाप में “चक्षुदर्शन” ऐसा कहना चाहिए क्योंकि चक्षुदर्शन का ही प्रकरण चल रहा है।

अचक्षुदर्शनी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के बारह गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं तथा

नं. ३८५

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	३ च.प. असं.प. सं.प.	६प. ६अ.	१० ९ ८	४	४	२ पिं. पिं.	१ पुं. पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	१ पुं. पिं.	६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३८६

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	३ च.अ. असं.अ. सं.अ.	६प. ५अ.	७ ७ ६	४	४	२ पिं. पिं.	१ पुं. पुं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	१ पुं. पिं.	२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



संयमाः, अचक्षुर्दर्शनं, द्रव्यभावाभ्यां, षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३८७।

तेषामेव पर्याप्तानां पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८८।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३८९।

क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियां, एकेन्द्रियजाति आदि पांचों जातियां, पृथिवीकाय आदि छहों काय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, केवलज्ञान के बिना सात ज्ञान, सातों संयम, अचक्षुर्दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं अचक्षुर्दर्शन वाले अपर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर केवल पर्याप्तप्ररूपणा लेवें।

इसी प्रकार अपर्याप्तक अचक्षुर्दर्शनी जीवों के वर्णन में मात्र अपर्याप्त प्ररूपणा लेना चाहिए।

नं. ३८७

अचक्षुर्दर्शनी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२ मि. से क्षीण.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४ संज्ञि.	४	५	६	१५	३ अपा.	४ अकषा.	७ केव. विना.	७	१ पुं.	६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३८८

अचक्षुर्दर्शनी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२ मि. से क्षीण.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६,४	४ संज्ञि.	४	५	६	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अपा.	४ अकषा.	७ केव. विना.	७	१ पुं.	६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. अ.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३८९

अचक्षुर्दर्शनी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. अवि. प्रम.	७ अ.	६अ. ५अ. ४अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	१ पुं.	६ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	५ सम्य. विना.	२ सं. अ.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

अचक्षुर्दर्शनि-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने दर्शनस्थाने अचक्षुर्दर्शनं, शेषाः मिथ्यादृष्टि एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियवत् भंगा वक्तव्याः\*३९०।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३९१।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३९२।

अब मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवों के आलापों में दर्शन के स्थान पर अचक्षुदर्शन कहें तथा शेष प्ररूपणाएं मिथ्यादृष्टि एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए।

उन अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के वर्णन में मात्र पर्याप्त प्ररूपणा लेना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्तक अवस्था वाले मिथ्यादृष्टि अचक्षुदर्शनी जीवों के आलाप कथन में केवल अपर्याप्त प्ररूपणाएं ग्रहण की जाती हैं।

### नं. ३९० अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१३ विना. आ.दि.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	१ पुं ल	६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३९१ अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६,४	४	४	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	१ पुं ल	६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ३९२ अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६अ. ५अ. ४अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	१ पुं ल	२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. अ.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

सासादनसम्यग्दृष्टेरारभ्य क्षीणकषायपर्यन्तानां मूलौघवद् आलापाः वक्तव्याः।

अवधिदर्शनिनां भण्यमाने सन्ति नव गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षड्पर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदशयोगाः, त्रयो वेदाः अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, चत्वारि ज्ञानानि, सप्त संयमाः, अवधिदर्शनं, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*३९३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*३९४।

सासादन गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अचक्षुदर्शनी जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए।

अवधिदर्शनी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के नौ गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आदि के चार ज्ञान, सातों संयम, अवधिदर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं अवधिदर्शनी जीवों के पर्याप्तकालीन आलाप वर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

नं. ३९३

अवधिदर्शनी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि. से क्षीण.	२ सं.प. अ.प.	६प. ६अ.	१० ७	४ क्षीणसं.	४ क्षीणसं.	१ क्षीणसं.	१ क्षीणसं.	१५ क्षीणसं.	३ अपग.	४ अकषा.	४ मति. श्रुत. अव. मनः	७	१ अव.	६ द्र. ६ भा. ६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ३९४

अवधिदर्शनी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि. से क्षीण.	१ सं.प.	६	१०	४ क्षीणसं.	४ क्षीणसं.	१ क्षीणसं.	१ क्षीणसं.	११ म. ४ व. ४ औ. १ वै. १ आ. १	३ अपग.	४ अकषा.	४ केव. विना.	७	१ क्षीणसं.	६ द्र. ६ भा. ६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा भणितव्याः\*३९५।

असंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्य क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्ता अवधिज्ञानिवद् भंगा ज्ञातव्याः। विशेषेण अवधिदर्शनमिति भणितव्यम्।

केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवद् आलापाः कथयितव्याः। एवं दर्शनमार्गणायां पंचदश कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम  
नवमोऽधिकारः समाप्तः।

इसी प्रकार अपर्याप्त अवधिदर्शनी जीवों के आलाप कथन में मात्र अपर्याप्त प्ररूपणाएं कहना चाहिए।

अवधिदर्शनी जीवों के असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त आलाप अवधिज्ञानी जीवों के समान जानना चाहिए। विशेष केवल इतना है कि दर्शन आलाप में अवधिज्ञान के स्थान पर अवधिदर्शन कहना चाहिए।

केवलदर्शनी जीवों के आलाप केवलज्ञानी के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा में पन्द्रह कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के  
अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत  
सिद्धान्तचिन्तामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम  
का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।



नं. ३९५

अवधिदर्शनी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ अवि. प्रम.	१ सं.अ.	६अ.	७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	२ पु. नं.	४	३ मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	१ पुं. क.	३.२ का. शु. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तप्ररूपणा अपनेतव्याः\*३९७।

केवलं पर्याप्तावस्थायां देवगतिर्नास्ति, देवानां पर्याप्तकालेऽशुभत्रिकलेश्याभावात् ।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापाः कथयितव्याः। विशेषेण त्रीणि सम्यक्त्वानि— मिथ्यात्व-सासादन-वेदकसम्यक्त्वानि, षष्ठीतः पृथिवीतः कृष्णलेश्यासम्यग्दृष्टयो मनुष्येषु ये आगच्छन्ति तेषां वेदकसम्यक्त्वेन सह कृष्णलेश्या लभ्यते इति\*३९८।

के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से कृष्ण लेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं कृष्णलेश्या वाले जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप कहने पर उसमें से सभी अपर्याप्त प्ररूपणा छोड़ देना चाहिए।

पर्याप्त अवस्था में केवल देवगति नहीं होती है क्योंकि देवों के पर्याप्त काल में तीनों अशुभ लेश्याओं का अभाव पाया जाता है।

उन्हीं कृष्णलेश्या वाले अपर्याप्तक जीवों के आलापवर्णन में केवल अपर्याप्तसंबंधी आलाप ही ग्रहण करना चाहिए। विशेष कथनानुसार उनके मिथ्यात्व, सासादन, वेदक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं। इसका कारण यह है कि छठी पृथ्वी ( नरक ) से जो कृष्णलेश्या वाले अविरतसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में जन्म धारण कर लेते हैं उनके अपर्याप्तकाल में वेदक सम्यक्त्व के साथ कृष्णलेश्या पाई जाती है।

नं. ३९७

कृष्णलेश्या वाले जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४ ३ न. ति. म.		५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	६ अज्ञा. ३ ज्ञान. ३	१. असं.	३. पि. ७. १८. १६.	३. द्र.६ भा.१ कृष्ण.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ३९८

कृष्णलेश्या वाले जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सासा. अवि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ हि. ७ १८ १६	३ द्र.२ का. शु. भा.१ कृष्ण.	२ भ. अ.	३ मि. सा. क्षायो.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने मिथ्यात्वगुणस्थानवद् यथायोग्याः कथयितव्याः\*३९९।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*४००।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापाः कथयितव्याः\*४०१।

कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कथन में मिथ्यात्व गुणस्थान के समान यथायोग्य वर्णन जान लेना चाहिए।

उन्हीं कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलापवर्णन में देवगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं, शेष सभी प्ररूपणाएं पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलापों में केवल अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणाएं ही लेना चाहिए।

कृष्णलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलापों में यथायोग्य सभी प्ररूपणाएं

नं. ३९९

कृष्णलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. १०,७ ६अ. ९,७ ५प. ८,६ ५अ. ७,५ ४प. ६,४ ४अ. ४,३		४	४	५	६	१३	३	४	३	अज्ञा. असं.	२	द्र.६ भा.१ कृष्ण	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४००

कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ १० ५ ९ ४ ८ ७ ७ ६ ६ ४ ४		४	३ न. ति. म.	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ कृष्ण	द्र.६ भा.१ कृष्ण	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ४०१

कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ ७ अ. ७ ५ ६ अ. ५ ४ ४ अ. ३		४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ कृष्ण	द्र.२ का. शु. भा.१ कृष्ण	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कृष्णलेश्यासासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने यथायोग्याः आलापाः वक्तव्याः\*४०२।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या बिना तिस्रो गतयः, शेषाः प्ररूपणाः वक्तव्याः\*४०३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने नरकगत्या बिना तिस्रो गतयः, शेषाः आलापा यथायोग्या वक्तव्याः\*४०४।

कृष्णलेश्या-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः

द्वितीय गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

उन्हीं कृष्णलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनके देवगति के बिना तीन गतियाँ पाई जाती हैं, शेष सभी पूर्ववत् जाननी चाहिए।

इसी प्रकार उन सासादन गुणस्थानवर्ती कृष्णलेश्या वाले अपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनमें नरकगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी आलाप यथायोग्य समझना चाहिए।

कृष्णलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर — एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों

नं. ४०२ कृष्णलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	४	१ पं.	१ त्र.	१३ वि. १६. १६. १६.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४०३ कृष्णलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६ १०	४	३ न. ३ ति. ३ म.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१० म. ४ व. ४ औ. १ वै. १	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ४०४ कृष्णलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	३ ति. ३ म. ३ दे.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	३ औ. ३ मि. ३ वै. ३ मि. ३ कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	१ १६. १६. १६. १६.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



संज्ञाः, देवगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४०५</sup>।

कृष्णलेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, देवगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, वैक्रियिकमिश्रेण विना द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४०६</sup>।

वचनयोग, औदारिक-काययोग और वैक्रियिक काययोग ये दश योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से कृष्णलेश्या, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

कृष्णलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, देवगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारककाययोगद्विक के बिना शेष बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से कृष्णलेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. ४०५

कृष्णलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ त्रसं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ द्र.६ भा.१ कृष्ण. चक्षुं. अचक्षुं.	१ भ.	१ सम्यं.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार	

नं. ४०६

कृष्णलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ७ अ.	१०	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ पू.	१२ म.४ व.४ औ.२ वै.१ का.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ द्र.६ भा.१ कृष्ण.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४०७।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने मनुष्यगतिः, औदारिकमिश्रकर्मणयोगौ द्वौ, वेदकसम्यक्त्वमिति, शेषाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*४०८।

नीललेश्यायां भण्यमाने ओघादेशालापाः कृष्णलेश्यावद् ज्ञातव्याः। केवलं सर्वत्र नीललेश्या वक्तव्याः।

कापोतलेश्यानां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, चतुर्दशजीवसमासाः, षट्-पञ्च-चतुःपर्याप्तयोऽपर्याप्तयश्च, दश-सप्त-नव-सप्त-अष्ट-षट्-सप्त-पञ्च-षट्-चतुश्चतुस्त्रिप्राणाः चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्च जातिः, षट् कायाः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, षड् ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः,

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि कृष्णलेश्या वाले पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर मात्र पर्याप्तकाल संबंधी प्ररूपणाएं ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार उन कृष्णलेश्या सहित असंयत सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलाप वर्णन में एक मनुष्यगति होती है, औदारिकमिश्र और कर्मण ये दो योग होते हैं, वेदक सम्यक्त्व होता है तथा शेष सभी वर्णन पूर्ववत्—चतुर्थ गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

नीललेश्या वाले जीवों के आलापवर्णन में सभी ओघालापा कृष्णलेश्या के समान जानना चाहिए। सभी जगह लेश्या आलाप कहते समय नीललेश्या कहना चाहिए यही विशेष बात है।

अब कापोतलेश्या वाले जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के चार गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएं, चारों

### नं. ४०७ कृष्णलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ पू.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ पू. पू. कृष्ण.	३ द्र.६ भा.१ कृष्ण.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४०८ कृष्णलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ	२ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ म.	१ पिं.	१ पू.	२ औ.मि. कर्म.	१	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ पू. पू. कृष्ण.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ कृष्ण.	१ भ.	१ क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४०९।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४१०।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने चतस्रो गतयः, मिथ्यात्व-सासादन-क्षायिक-क्षायोपशमिकसम्यक्त्वानि, शेषाः प्ररूपणा वक्तव्याः\*४११।

गतियां, पांचों जातियाँ, छहों काय, आहारककाययोगद्विक के बिना तेरह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान और आदि के तीन ज्ञान ये छह ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएं, भाव से कापोतलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं कापोतलेश्या वाले पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में देवगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी आलाप पर्याप्तकालसंबंधी ही ग्रहण करें।

इसी प्रकार उन कापोतलेश्या वाले अपर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर उनके चारों गतियाँ मिथ्यात्व, सासादन, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये चार सम्यक्त्व होते हैं, शेष सभी प्ररूपणाएं

### नं. ४०९ कापोतलेश्या वाले जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	४	५	६	१३ विनां विं. विं.	३	४	६ अज्ञा. ३ ज्ञान. ३	१ असं.	३ विनां विं. विं.	३ द्र.६ भा.१ कापो.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४१० कापोतलेश्या वाले जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सा. स. अ.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	३ न. ति. म.	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	६ अज्ञा. ३ ज्ञान. ३	१ असं.	३ विनां विं. विं.	३ द्र.६ भा.१ कापो.	२ भ. अ.	६	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४११ कापोतलेश्या वाले जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ मि. सासा. अवि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विनां विं. विं.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ कापो.	२ भ. अ.	४ मि. सा. क्षा. क्षायो.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कापोतलेश्यानां मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने मिथ्यात्वसंबन्धिनः सर्वे आलापा वक्तव्याः\*४१२।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या बिना तिस्रो गतयः, शेषाः पर्याप्तालापाः ज्ञातव्याः\*४१३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने चतस्रो गतयः, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४१४।

पूर्ववत् होती हैं।

कापोत लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर उनके मिथ्यात्व संबंधी सभी आलाप जानना चाहिए।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि कापोत लेश्याधारी पर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर उनके देवगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन कापोतलेश्याधारी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में उनके चारों गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी आलाप पर्याप्तसंबन्धी ही ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ४१२ कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०, ७ ९, ७ ८, ६ ७, ५ ६, ४ ४, ३	४	४	५	६	१३ पुं. पुं. का.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अज्ञा. पुं. पुं.	२ द्र. ६ भा. १ कापो.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४१३ कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	३ न. ति. म.	५	६	१० म. ४ व. ४ औ. १ वै. १	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अज्ञा. पुं. पुं.	२ द्र. ६ भा. १ कापो.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४१४ कापोतलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ. मि. वै. मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अज्ञा. पुं. पुं.	२ द्र. २ का. शु. भा. १ कापो.	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कापोतलेश्या-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सासादनवत् सर्वे आलापा वक्तव्याः\*४१५।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४१६।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४१७।

कापोत लेश्याधारी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलापवर्णन में सासादन गुणस्थान के समान सभी आलाप जानना चाहिए।

उन्हीं सासादन सम्यग्दृष्टि कापोतलेश्याधारी पर्याप्तजीवों के आलापकथन में देवगति के बिना तीनों गतियाँ उनके पाई जाती हैं तथा शेष सभी पर्याप्तप्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन सासादन सम्यग्दृष्टि कापोतलेश्या वाले अपर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर उनमें नरकगति के बिना तीनों गतियाँ मानी हैं एवं शेष सभी प्ररूपणाएं अपर्याप्तकाल संबंधी ही ग्रहण करना चाहिए।

#### नं. ४१५ कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	४	१ पं.	१ त्र.	१३ विनां आ.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ कं. कं. विक्षुं.	६ द्र.६ भा.१ कापो.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४१६ कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ पं.	१ पं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ कं. कं. विक्षुं.	६ द्र.६ भा.१ कापो.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४१७ कापोतलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	३ ति. म. दे.	१ पं.	१ पं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रुत	१ असं.	२ कं. कं. विक्षुं.	२ द्र.२ का. शु. भा.१ का.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

कापोतलेश्या-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषालापाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*४१८।

कापोतलेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, शेषा आलापा यथायोग्या वक्तव्याः\*४१९।

तेषां पर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषाः पर्याप्तालापा भणितव्याः\*४२०।

कापोतलेश्याधारी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापवर्णन में देवगति के बिना उनमें तीनों गतियाँ कही है तथा शेष सभी आलाप पूर्ववत्-तृतीय गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

चतुर्थगुणस्थानवर्ती असंयतसम्यग्दृष्टि कापोतलेश्याधारी जीवों के आलापवर्णन में देवगति के बिना तीनों गतियाँ उनमें कही हैं। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं तथा शेष आलाप यथायोग्य—गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

उन्हीं कापोतलेश्याधारी असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर उनमें देवगति के बिना तीन गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी पर्याप्तकालीन प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

नं. ४१८

कापोतलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ मू.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ अवि. अवि. अवि.	२ द्र.६ भा.१ कापो.	१ भ.	१ पुं.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ४१९

कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ मू.	१३ आ. द्वि विना.	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ अवि. अवि. अवि.	२ द्र.६ भा.१ कापो.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४२०

कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ न. ति. म.	१ पिं.	१ मू.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ अवि. अवि. अवि.	२ द्र.६ भा.१ कापो.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगत्या विना तिस्रो गतयः, स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ, उपशमसम्यक्त्वेन विना द्वे सम्यक्त्वेन, शेषापर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४२१।

तेजोलेश्यानां भण्यमाने सन्ति सप्त गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, सप्त ज्ञानानि—केवलज्ञानमन्तरेण, पञ्च संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजोलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४२२।

इसी प्रकार उन कापोतलेश्याधारी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें देवगति के बिना तीनों गतियाँ होती हैं, स्त्रीवेद के बिना दो वेद, उपशम सम्यक्त्व के बिना दो सम्यक्त्व होते हैं तथा शेष सभी अपर्याप्त प्ररूपणाओं का ही वर्णन करना चाहिए।

तेजोलेश्या वाले जीवों के आलाप कहने पर—आदि के सात गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद, चारों कषाय, केवलज्ञान के बिना शेष सात ज्ञान, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात संयम के बिना शेष पाँच संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

### नं. ४२१ कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.अ.	६ अ.	७	४	३ न. ति. म.	१ पुं. प्र.	१ पुं. प्र.	३ ओ.मि. वै.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ पुं. प्र. प्र.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ कापो.	१ भ.	२ क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४२२ तेजोलेश्यावाले जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
७ मि. से अप्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ न. ति. म.	१ पुं. प्र.	१ पुं. प्र.	१५	३	४	७ केव. विना.	५ सूक्ष्म. यथा. विना.	३ पुं. प्र. प्र.	३ द्र.६ भा.१ ते.	२ भ. अ.	६	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४२३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवमनुष्यगतीति द्वे गती, नपुंसकवेदेन विना द्वौ वेदौ, सामायिकच्छेदोपस्थापन-

इस प्रकरण में धवला टीका के हिन्दी अनुवाद में दिया गया विशेषार्थ भी दृष्टव्य है—

**विशेषार्थ**—गोम्मटसार जीवकाण्ड के अन्त में आलाप अधिकार के ऊपर पं. टोडरमल जी ने जो संदृष्टियाँ दी हैं उनमें इन्द्रियमार्गणा की अपेक्षा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के पर्याप्त अवस्था में चार लेश्याएँ, तेजोलेश्या के आलाप बताते हुए तेजोलेश्या में संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त अतिरिक्त असंज्ञीपंचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवसमास और संज्ञीमार्गणा के आलाप बतलाते हुए असंज्ञियों के चार लेश्याएँ बतलाई हैं परन्तु जिस आलाप अधिकार के अनुसार पंडित जी ने ये संदृष्टियाँ संग्रहीत की हैं उसमें केवल संज्ञीमार्गणा के आलाप बतलाते हुए असंज्ञियों के तीन अशुभ लेश्याएँ और तेजोलेश्या के आलाप बतलाते हुए संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो ही जीवसमास बतलाए हैं किन्तु धवला में सर्वत्र असंज्ञियों के तेजोलेश्या का अभाव या तेजोलेश्या में असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवसमास का अभाव ही बतलाया है। इससे इतना तो निश्चित हो जाता है कि गोम्मटसार जीवकाण्ड में संज्ञीमार्गणा के आलाप बतलाते हुए असंज्ञियों के जो चार लेश्याएँ बतलाई हैं वह कथन धवला की मान्यता के विरुद्ध है परन्तु गोम्मटसार जीवकाण्ड के मूल आलाप अधिकार में ही जो दो मान्यताएँ पाई जाती हैं उसका क्या कारण होगा, इसका ठीक निर्णय समझ में नहीं आता है। एक बात अवश्य है कि पंडित टोडरमल जी ने सर्वत्र एक ही मान्यता अर्थात् असंज्ञियों के तेजोलेश्या या तेजोलेश्या में असंज्ञीपंचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवसमास को स्वीकार कर लिया है, इसलिए उनके सामने सर्वत्र उक्त मान्यता का पोषक ही पाठ रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यदि पण्डित जी ने मूल में दिए गए संज्ञीमार्गणा के निर्देश के अनुसार ही सर्वत्र सुधार किया होता तो कहीं न कहीं उन्होंने उसका संकेत अवश्य किया होता। जो कुछ भी हो, फिर भी यह प्रश्न विचारणीय है।

उन्हीं तेजोलेश्या वाले जीवों के पर्याप्तकालीन आलाप वर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन तेजोलेश्याधारी जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें देव और मनुष्य ये दो गतियाँ होती हैं, नपुंसकवेद के बिना दो वेद होते हैं। संयममार्गणा की अपेक्षा उनमें सामायिक, छेदोपस्थापना तथा असंयम ये तीन संयम माने हैं। सम्यग्मिथ्यात्व के बिना

नं. ४२३

तेजोलेश्यावाले जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
७ मि. से अग्र.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पं.	१ पं.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.१	३	४	७ केव. विना.	५ असं. देश. सामा छेदो. परि.	३ पं.	६ भा.१ ते.	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



असंयमाः, त्रयः संयमाः, सम्यग्मिथ्यात्वमन्तरेण पञ्च सम्यक्त्वानि, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४२४।

तेजोलेश्या-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, आहारद्विक-औदारिकमिश्रैर्विना द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्या, भावेन तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४२५।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४२६।

उनमें पाँच सम्यक्त्व होते हैं तथा शेष सभी आलापों में अपर्याप्त संबंधी प्ररूपणएँ ग्रहण करना चाहिए।

तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्र और आहारककाययोगद्विक के बिना शेष बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

### नं. ४२४ तेजोलेश्यावाले जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सासा. अवि. प्रम.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ दे. म.	१ पिं.	१ पुं.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	२ पुं.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	३ वि. द. क.	३.२ का. शु. भा.१ ते.	२ भ. अ.	५ सम्य. विना.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४२५ तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ दे. ति. म.	१ पिं.	१ पुं.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षु. चक्षु.	३.६ भा.१ ते.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४२६ तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ ज्ञान.	१ असं.	२ अचक्षु. चक्षु.	३.६ भा.१ ते.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, वैक्रियिकमिश्रकर्मणनामानौ द्वौ योगौ, पुरुषस्त्रीनामानौ द्वौ वेदौ, नपुंसकवेदो नास्ति, शेषा आलापा अपर्याप्तसंबंधिनो वक्तव्याः\*४२७।

तेजोलेश्या-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिकमिश्रेण विना द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४२८।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४२९।

उन्हीं तेजोलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकाल संबंधी आलाप वर्णन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएँ ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार उन तेजोलेश्याधारी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलाप कथन में एक देवगति, वैक्रियिकमिश्र और कर्मण नामक दो योग, पुरुष-स्त्री ये दो वेद होते हैं, नपुंसकवेद नहीं होता है। शेष सभी आलाप अपर्याप्तसंबंधी ही जानना चाहिए।

तेजोलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि के आलाप कहने पर—एक सासादन गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्रकाययोग और आहारककाययोगद्विक के बिना शेष बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम,

#### नं. ४२७ तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ पुं.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	२ पुं.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अचक्षु. अचक्षु.	२ द्र.२ का. शु. भा.१ ते.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४२८ तेजोलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.१ ते.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४२९ तेजोलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पुं.	१ पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षु. अचक्षु.	२ द्र.६ भा.१ ते.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, वैक्रियिकमिश्रकर्मणामानौ द्वौ योगौ, नपुंसकवेदेन विना द्वौ वेदौ, शेषा अपर्याप्तालापा भणितव्याः\*४३०।

तेजोलेश्या-सम्यग्मिथ्या दृष्टीनां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषा यथायोग्या वक्तव्याः\*४३१।

तेजोलेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, शेषा आलापा यथायोग्या वक्तव्याः\*४३२।

आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं तेजोलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं तेजोलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर मात्र अपर्याप्तप्ररूपणाओं को ही लेना चाहिए। विशेषरूप से उनमें देवगति, वैक्रियिकमिश्र और कर्मण ये दो योग तथा नपुंसक वेद के बिना दो वेद होते हैं।

अब तेजोलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापों में नरकगति के बिना तीन गति जानना, शेष सभी आलाप गुणस्थान के समान यथायोग्य ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ४३० तेजोलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ ॥	१ ॥	१ ॥	२ वै.मि. कर्म.	२ पु.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अ.व.कुं. चक्षु.	२ द्र.२ का. शु. भा.१ ते.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४३१ तेजोलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ ॥	१ ॥	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ अ.व.कुं. चक्षु.	२ द्र.६ भा.१ ते.	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४३२ तेजोलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ ॥	१ ॥	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ अ.व.कुं. चक्षु.	२ द्र.६ भा.१ ते.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४३३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने, देवमनुष्यगती इति द्वे गती, औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकर्मणामानो त्रयो योगाः, पुरुषवेदः, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४३४।

तेजोलेश्या-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः,

तेजोलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलापवर्णन में नरकगति के बिना तीनों गतियाँ होती हैं तथा शेष सभी प्ररूपणाएँ यथायोग्य—चतुर्थ गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

उन्हीं असंयतसम्यग्दृष्टि तेजोलेश्याधारी पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्तसंबंधी प्ररूपणाओं को ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार तेजोलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलाप वर्णन में देव और मनुष्य ये दो गतियाँ होती हैं। औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्मण ये तीन योग होते हैं, पुरुषवेद पाया जाता है तथा शेष सभी आलाप अपर्याप्तसंबंधी ही ग्रहण करना चाहिए।

तेजोलेश्या वाले संयतासंयतगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक पंचम गुणस्थान, एक-संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति और मनुष्यगति ये दो गतियाँ, एकेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक,

### नं. ४३३ तेजोलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ इं.	१ इं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ इं. पुं. कं.	द्र.६ भा.१ ते.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४३४ तेजोलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ दे. म.	१ इं.	१ इं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ इं. पुं. कं.	द्र.२ का. शु. भा.१ ते.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४३५।

तेजोलेश्या-प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजोलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४३६।

तेषामप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः भावेन तेजोलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४३७।

आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

तेजोलेश्या वाले प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक प्रमत्तविरत गुणस्थान संज्ञी-पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये ग्यारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामाधिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. ४३५

तेजोलेश्यावाले संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.प.					ति.	इं.	मं.	म.४			मति.	देश.	इं.	भा.१	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
					म.	मं.	मं.	व.४			श्रुत.		इं.	ते.		क्षा.			अनाकार
								औ.१			अव.		मं.			क्षायो.			

नं. ४३६

तेजोलेश्यावाले प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६प.	१०	४	१	१	१	११	३	१	४	३	३	द्र.६	१	३	१	१	२
प्र.	सं.प.	६अ.	७		म.	इं.	मं.	म.४			मति.	सामा.	इं.	भा.१	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
	सं.अ.					मं.	मं.	व.४			श्रुत.	छेदो.	इं.	ते.		क्षा.			अनाकार
								औ.१			अव.	परि.	मं.			क्षायो.			
								आ.२			मनः		मं.						

नं. ४३७

तेजोलेश्यावाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	३	४	४	३	३	द्र.६	१	३	१	१	२
सं.प.				भय.	म.	इं.	मं.	म.४			मति.	सामा.	इं.	भा.१	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
				मै.		मं.	मं.	व.४			श्रुत.	छेदो.	इं.	ते.		क्षा.			अनाकार
				परि.				औ.१			अव.	परि.	मं.			क्षायो.			
											मनः		मं.						

पद्मलेश्यानां भण्यमाने सन्ति सप्त गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, नरकगत्या विना तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, सप्त ज्ञानानि, पञ्च संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्या, भावेन पद्मलेश्या, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४३८।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४३९।

तेजोलेश्या वाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक अप्रमत्तविरत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, आहारसंज्ञा के बिना तीन संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, आदि के तीन संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेजोलेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

पद्मलेश्या वाले जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—आदि के सात गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद, चारों कषाय, केवलज्ञान के बिना शेष सात ज्ञान, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातसंयम के बिना शेष पाँच संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से पद्मलेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं पद्मलेश्या वाले जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनमें केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ४३८

### पद्मलेश्यावाले जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
७ मि. से अप्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	१५ ३	३ ४	७ केव. विना.	५ असं. देश. सामा. छेदो. परि.	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	२ भ. अ.	६	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४३९

### पद्मलेश्यावाले जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
७ मि. से अप्र.	१ सं.प.	६	१०	४ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	१ ३ ति. म. दे.	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३	४	७ केव. विना.	५ असं. देश. सामा. छेदो. परि.	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः। केवलमत्र तिर्यग्गतिर्नास्ति अपर्याप्तावस्थायाम्\*४४०।  
 पद्मलेश्या-मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने औदारिकमिश्रेण विना द्वादश योगाः, शेषा यथायोग्याः कथयितव्याः\*४४१।  
 तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४४२।

उन्हीं पद्मलेश्या वाले अपर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर मात्र अपर्याप्त प्ररूपणाएँ ही ग्रहण करना चाहिए। इनके केवल अपर्याप्त अवस्था में तिर्यग्गति नहीं है ऐसा जानना चाहिए।

पद्मलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर उनके औदारिकमिश्र के बिना बारह योग होते हैं, शेष सभी प्ररूपणाएँ यथायोग्य—गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि पद्मलेश्या वाले पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ४४० पद्मलेश्यावाले जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सासा. अवि. प्रम.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ दे. म.	१ इं. म.	१ त्रसं.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	१ पु.	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ प.	२ भ. अ. विना.	५ सम्य. विना.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

### नं. ४४१ पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ इं. म.	१ का. म.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ द्र.६ भा.१ प. चक्षु, अचक्षु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार	

### नं. ४४२ पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ स्रः	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुः चक्षुः	२ द्र.६ भा.१ प.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, द्वौ योगौ वैक्रियिकमिश्रकर्मणौ, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४४३।

पद्मलेश्या-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने, औदारिकमिश्रआहारद्विकैर्विना द्वादश योगाः, शेषा मिथ्यात्ववद् वक्तव्याः, केवलं मिथ्यात्वस्थाने सासादनसम्यक्त्वं वक्तव्यम्<sup>\*४४४</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४४५।

इसी प्रकार अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि पद्मलेश्याधारी जीवों के आलापवर्णन में एक देवगति होती है, वैक्रियिकमिश्र और कर्मण ये दो योग होते हैं तथा शेष सभी प्ररूपणाएँ अपर्याप्तकालीन ही ग्रहण करना चाहिए।

पद्मलेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कथन में औदारिकमिश्र और आहारकद्विक के बिना बारह योग होते हैं। शेष सभी प्ररूपणाएँ मिथ्यात्व गुणस्थान के समान जानना चाहिए, केवल सम्यक्त्वमार्गणा में मिथ्यात्व के स्थान पर सासादनसम्यक्त्व कहना चाहिए।

उन सासादनसम्यग्दृष्टि पद्मलेख्या वाले पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं को ही लेना चाहिए।

नं. ४४३ पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संयं.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ टि.	१ पि.	१ प्र.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अचक्षुं अचक्षुं	२ का. शु. भा.१ प.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४४४ पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पुं.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ पुं. पुं. पुं.	६ भा.१ प.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४४५ पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पू.	१ म.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुः चक्षुः	६ भा.१ प.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



पद्मलेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सर्वे सामान्यालापाः, केवलं भावलेश्यायां 'पद्मलेश्या' वक्तव्या<sup>\*४४८</sup>।

पद्मलेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककायोग और

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संयं.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ रुं.	१ पं.	१ प्रं.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अचक्षुं. अचक्षुं.	२ द्र.२ का. शु. भा.१ प.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति म. द.	१ पं. पं.	१ त्रः	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा. ३ ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ चक्षु. अचक्षुः	६ भा.१ प.	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ पं.	१ न	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ विनि. के	६ भा.१ प.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४४९।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवमनुष्यगती इति द्वे गती, पुरुषवेदः, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४५०।

पद्मलेश्या-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि

वैक्रियिककाययोग ये दश योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से पद्मलेश्या, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

पद्मलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर उनमें सभी आलाप सामान्यरूप से गुणस्थान के समान हैं केवल भावलेश्या में 'पद्मलेश्या' जानना चाहिए।

उन्हीं पद्मलेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के कथन में केवल पर्याप्त आलाप ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानवर्ती पद्मलेश्याधारी अपर्याप्त जीवों के आलाप कहने पर देव और मनुष्य ये दो गतियाँ होती हैं, एक पुरुषवेद होता है तथा शेष सभी प्ररूपणाएँ अपर्याप्त संबंधी ही जानना चाहिए।

पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक देशविरत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति और मनुष्यगति ये दो गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से पद्मलेश्या होती है। पिटिका में कहा भी है—

### नं. ४४९ पद्मलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पि.	१ पु.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ वि. पि. क.	३ द्र.६ भा.१ प.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४५० पद्मलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ दे. म.	१ पि.	१ पु.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ वि. पि. क.	३ द्र.२ का. शु. भा.१ ते.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन पद्मलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४५१।

द्रव्यभावलेश्ययोः किमन्तरम् ?

तदेवोच्यते-लेस्सा य दव्व-भावं, कम्मं णोकम्ममिस्सियं दव्वं।

जीवस्स भावलेस्सा, परिणामो अप्पणो जो सो।।

नोकर्मवर्गणाभिर्मिश्रिताः कर्मवर्गणाः, द्रव्यलेश्या, जीवस्य कषाययोगनिमित्तोद्भवा आत्मपरिणामा भावलेश्या कथ्यते।

पद्म लेश्या-प्रमत्तसंयतानां भण्यमाने सामान्यालापाः सर्वे भणितव्याः\*४५२।

पद्म लेश्या-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमाने तिस्रः संज्ञाः, शेषाः सामान्यवद् वक्तव्याः\*४५३।

**श्लोकार्थ** —लेश्या दो प्रकार की है, द्रव्यलेश्या और भावलेश्या। नोकर्मवर्गणाओं से मिश्रित कर्मवर्गणाओं को द्रव्यलेश्या कहते हैं तथा जीव का कषाय और योग के निमित्त से होने वाला जो आत्मिक परिणाम है, वह भावलेश्या है।

लेश्या आलाप के आगे भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

पद्मलेश्या वाले प्रमत्तसंयत जीवों के आलापवर्णन में सभी आलाप सामान्यरूप से गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

### नं. ४५१

### पद्मलेश्यावाले संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सं.प.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पिं.	१ सं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ पिं. पिं. पिं.	३ द्र.६ भा.१ प.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४५२

### पद्मलेश्यावाले प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र. प्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६अ.	१० ७	४	१ म.	१ पिं.	१ सं.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.२	३	४	४ केव. विना.	३ सामा. छेदो. परि.	३ पिं. पिं. पिं.	३ द्र.६ भा.१ प.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४५३

### पद्मलेश्यावाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र. प्र.	१ सं.प.	६	१०	३ भय. मै. परि.	१ म.	१ पिं.	१ सं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ केव. विना.	३ सामा. छेदो. परि.	३ पिं. पिं. पिं.	३ द्र.६ भा.१ प.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

शुक्ललेश्यानां भण्यमाने सन्ति अयोगिकेवलिना विना त्रयोदश गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः प्राणाः, द्वौ प्राणौ, चतस्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, तिस्रो गतयः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण षड्लेश्या, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा\*४५४।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४५५।

पद्मलेश्या वाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके तीन संज्ञाएं ( आहारसंज्ञा के बिना ) होती हैं, शेष सभी आलाप सामान्यरूप से गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले जीवों के आलाप कहने पर—अयोगिकेवली गुणस्थान के बिना आदि के तेरह गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण तथा सयोगिकेवली की अपेक्षा चार प्राण और दो प्राण, चारों संज्ञाएँ तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी होता है, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी होता है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है। आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों

## नं. ४५४

### शुक्ललेश्यावाले जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ अयो. विना.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७ ४ २	४ सं. क्षीणसं.	३ ति म. दे.	१ पिं.	१ ऋ.	१५ ३	३ अपग.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.१ शु.	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा यु.उ.

## नं. ४५५

### शुक्ललेश्यावाले जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ अयो. विना.	१ सं.प.	६	१० ४	४ सं. क्षीणसं.	३ ति म. दे.	१ पिं.	१ ऋ.	११ म.४ व.४ औ. वै.१ आ.१	३ अपग.	४ अकषा.	८	७	४	द्र.६ भा.१ शु.	२ भ. अ.	६	१ सं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार तथा यु.उ.

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति पंच गुणस्थानानि — मिथ्यादृष्टि-सासादन-अविरतसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तविरत-सयोगिकेवलिनः, देवमनुष्यगती, पुरुषवेदः अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः संयमाः — असंयम-सामायिक-छेदोपस्थापन-यथाख्यातसंयमाः, सम्यग्मिथ्यात्वेन विना पञ्च सम्यक्त्वानि, शेषाः आलापाः पूर्ववद वक्तव्याः\*४५६।

शुक्ललेश्या-मिथ्यादृष्टिजीवानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिकमिश्रेण विना द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्याः,

विकल्पों से रहित भी स्थान होता है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी तथा अनाकारोपयोगी और साकार तथा अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

उन्हीं शुक्ललेश्या वाले पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएँ ही कहने योग्य हैं।

इसी प्रकार उन शुक्ललेश्या वाले अपर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर उनके मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरतसम्यग्दृष्टि, प्रमत्तविरत, सयोगकेवली ये पाँच गुणस्थान होते हैं। देव और मनुष्य ये दो गतियाँ होती हैं, पुरुषवेद एवं अपगतवेदस्थान भी होता है। संयममार्गणा में उनके असंयम, सामाधिक, छेदोपस्थापना, यथाख्यात ये चार संयम होते हैं। सम्यग्मिथ्यात्व के बिना पाँच सम्यक्त्व होते हैं। शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—उनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थान संज्ञी- पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय औदारिकमिश्र- काययोग और आहारककाययोगद्विक के बिना शेष बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या,

नं. ४५६

## शुक्ललेश्यावाले जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
५ मि. सा. अवि. प्रम. सयो.	१ सं.अ.	६ अ.	७ २	४ सं. क्षीणसं.	२ दे. मं.	१ गं. पं.	१ सं. त्रः	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	१ पु. अपु.	४ अक्षं. अक्षं.	६ विभं. मनः. विना.	४ असं. सामा. छेदो. यथा.	४	४.२ का. शु. भा.१ शु.	२ भ. अ.	५ विना. संय.	१ सं. अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा यु.उ.

भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४५७।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, इत्यादयः पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४५८।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः, अत्र केवलं देवगतिः, पुरुषवेदः, शेषाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*४५९।

भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं शुक्ललेश्याधारी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप वर्णन में एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है और इसी प्रकार सभी पर्याप्त आलाप उनके ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्तकाल संबंधी आलापकथन में अपर्याप्त प्ररूपणाएँ ही ग्रहण की जाती हैं। यहाँ केवल देवगति और पुरुषवेद पाया जाता है

#### नं. ४५७ शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ ः मि.	१ ः मि.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुः अचक्षुः	२ द्र.६ भा.१ शु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४५८ शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ ः मि.	१ ः मि.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुः अचक्षुः	२ द्र.६ भा.१ शु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४५९ शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ ः मि.	१ ः मि.	१ ः मि.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ अचक्षुः अचक्षुः	२ द्र.२ का.१ शु. भा.१ शु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

शुक्ललेश्या-सासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, द्वादश योगाः, औदारिकमिश्रकाययोगो नास्ति। कारणं, देवमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनां तिर्यग्मनुष्येषु उत्पद्यमानानां अज्ञातपरमार्थानां तीव्रलोभानां संक्लेशेषा तेजः-पद्म-शुक्ल-लेश्याः नष्ट्वा कृष्णनीलकापोतलेश्यानां एकतमा भवति। सम्यग्दृष्टीनां पुनः मनुष्येषु चैवोत्पद्यमानानां मंदलोभानां सुज्ञातपरमार्थानां छिन्नजातिजराकरणे अर्हद्भगवति दत्तबुद्धीनां चिरन्तनास्तेजःपद्मशुक्ललेश्या यावदन्तर्मुहूर्तं तावन्न नश्यन्ति। त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४६०</sup>।

शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर — एक सासादन गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएं, नरकगति के बिना शेष तीन गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्र और आहारककाययोगद्विक के बिना शेष बारह योग होते हैं, किन्तु यहाँ पर औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। इसका कारण यह है कि, तिर्यच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले, परमार्थ के अजानकार और तीव्र लोभकषाय वाले ऐसे मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के मरते समय संक्लेश उत्पन्न हो जाने से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएं नष्ट होकर कृष्ण, नील और कापोत लेश्या में से यथासंभव कोई एक लेश्या हो जाती है। किन्तु जो मनुष्यों में ही उत्पन्न होने वाले हैं, मंद लोभकषाय वाले हैं, परमार्थ के जानकार हैं और जिन्होंने जन्म, जरा और मरण के नष्ट करने वाले अरहंत भगवन्त में अपनी बुद्धि को लगाया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवों के चिरंतन (पुरानी) तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएं मरण करने के अनन्तर अन्तर्मुहूर्त तक नष्ट नहीं होती हैं, इसलिए शुक्ललेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवों के औदारिकमिश्रकाययोग नहीं होता है। योग आलाप के आगे तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक,

नं. ४६० शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४ ति. म. दे.	३ पिं.	१ पिं.	१ पिं.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अवक्षुं चक्षुं	३ द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	१ सा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४६१।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, द्वौ योगौ, पुरुषवेदः, शेषाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*४६२।

शुक्ललेश्या सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने तत्संबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*४६३।

साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन शुक्ललेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालीन आलापवर्णन में उनके केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ही जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन सासादनसम्यग्दृष्टि शुक्ललेश्याधारी अपर्याप्तक जीवों के आलापकथन में देवगति, दो योग ( वैक्रियिक मिश्र और कार्मणकाययोग ), पुरुषवेद होता है। शेष भंग पूर्ववत् जानना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलापों में तत्सम्बन्धी आलाप ही ग्रहण करना

### नं. ४६१ शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ इं. मं.	१ मं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अक्षुं अक्षुं	२ द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४६२ शुक्ललेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ इं. मं.	१ इं. मं.	१ मं.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ अक्षुं अक्षुं	२ द्र.२ का. शु. भा.१ शु.	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४६३ शुक्ललेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ इं. मं.	१ मं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा. ज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ अक्षुं अक्षुं	२ द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



शुक्ललेश्या-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने तिस्रो गतयः, भावेन शुक्ललेश्या, शेषाः सामान्यवद् गृहीतव्याः\*४६४।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४६५।  
तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वे गती — देवमनुष्यगती, पुरुषवेदः, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४६६।

चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती शुक्ललेश्या वाले जीवों के आलापों में तीन गतियाँ ( नरक गति के बिना ), भाव से शुक्ललेश्या होती है। शेष सभी आलाप सामान्यवत् ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं शुक्ललेश्याधारी असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के आलापों में पर्याप्त संबंधी प्ररूपणाएँ ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार शुक्ललेश्याधारी चतुर्थगुणस्थानवर्ती अपर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में दो गतियाँ ( देवगति-मनुष्यगति ) होती हैं, पुरुषवेद होता है। शेष सभी आलाप अपर्याप्तसंबंधी जानना चाहिए।

### नं. ४६४ शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पू.	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ विना. पुं.पुं. के.	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४६५ शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	३ ति. म. दे.	१ पिं.	१ पू.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विना. पुं.पुं. के.	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४६६ शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	२ दे. म.	१ पिं.	१ पू.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विना. पुं.पुं. के.	द्र.२ का. शु. भा.१ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

शुक्ललेश्या-संयतासंयतानां भण्यमाने सामान्यवद् वक्तव्याः, केवलं शुक्ललेश्या वक्तव्या\*४६७।

शुक्ललेश्या-प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४६८।

शुक्ललेश्या-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि,

शुक्ललेश्या वाले संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके सामान्यवत् गुणस्थान के समान सभी कथन जानना चाहिए। केवल लेश्या के स्थान पर शुक्ललेश्या कहना चाहिए।

शुक्ललेश्या वाले प्रमत्तसंयत जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक प्रमत्तसंयत गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये ग्यारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

शुक्ललेश्या वाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

नं. ४६७

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ ह्रिं	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ पुं. पुं. ह्रिं	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ४६८

शुक्ललेश्यावाले प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ ह्रिं	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.२	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ पुं. पुं. ह्रिं	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४६९।

अपूर्वकरणगुणस्थादारभ्य सयोगिकेवलपर्यन्तानामालापा ओघवद् वक्तव्याः, तेषु शुक्ललेश्याव्यतिरिक्तान्यलेश्याभावात्। अलेश्यानामयोगि-सिद्धानां ओघवद्भंग एव ज्ञातव्यः। एवं लेश्यामार्गणायां चतुःसप्तति कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-  
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां लेश्यानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियां, दशों प्राण, आहारसंज्ञा के बिना शेष तीन संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिक छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अपूर्वकरण गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त के जीवों के आलाप ओघालाप के समान ही होते हैं, क्योंकि इन गुणस्थानों में शुक्ललेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं का अभाव है।

लेश्यारहित अयोगकेवली और सिद्ध जीवों के भी आलाप ओघ आलापों के समान होते हैं। इस प्रकार लेश्यामार्गणा में ७४ कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खंडागम ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत  
आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि  
टीका में लेश्या नाम का दशवाँ अधिकार  
समाप्त हुआ।



नं. ४६९

शुक्ललेश्यावाले अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	३	४	४	३	३	६	१	३	१	१	२
ल.	सं.प.			भय. मै. परि.	म.	पं.	पं.	म.४ व.४ औ.१			मति. श्रुत. अव. मनः	सामा. छेदो. परि.	द. ५८ पं. ४८	द्र.६ भा.१ शु.	भ.	औप. क्षा. क्षायो.	सं.	आहार	साकार अनाकार

## अथ भव्यमार्गणाधिकारः

भव्याभव्यत्वशून्योऽहं चिच्चैतन्यस्तथाप्यहम्।

भव्यत्वं प्रकटीकुर्वन्, लप्स्ये सिद्धं पदं त्वरम् ॥१॥

अथ भव्यमार्गणायां त्रीणि कोष्ठकानि वक्ष्यन्ते —

भव्यानुवादेन भव्यसिद्धिकानां भण्यमाने मिथ्यादृष्टेरारभ्यायोगिकेवलपर्यन्तानामोघवद् भङ्गो ज्ञातव्यः। विशेषेण भव्यसिद्धिका इति वक्तव्यम्।

### अब भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है

श्लोकार्थ — मेरी आत्मा यद्यपि निश्चय नय से भव्यत्व और अभव्यत्व से शून्य चिच्चैतन्यस्वरूपी है, फिर भी व्यवहार से मैं उसके भव्यत्व भाव को प्रगट करते हुए शीघ्र ही सिद्धपद को प्राप्त करना चाहता हूँ।

भावार्थ — सत्प्ररूपणा के इस आलाप अधिकार की भव्य मार्गणा श्रृंखला में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने मंगलाचरण में अपनी आत्मा को भव्यत्वगुण के द्वारा सिद्धपद प्राप्त कराने की भावना व्यक्त की है। भव्यत्व और अभव्यत्व जीवात्मा के पारिणामिक भाव होते हैं, इनमें कोई पुरुषार्थ नहीं प्रत्युत् प्राकृतिक शक्ति ही कार्यकारी होती है। अर्थात् जिस आत्मा में मोक्ष जाने की शक्ति हो वह भव्य कहलाता है तथा जिसमें कर्मों से मुक्त होने की शक्ति का अभाव है वह अभव्य कहलाता है। यह शक्ति जीव में केवल वर्तमान भव से संबंधित ही नहीं, वरन् अनादिकाल से अनंतकाल तक उसकी यह शक्ति ( भव्यत्व या अभव्यत्वरूप ) आत्मा के साथ ही रहती है।

पंचास्तिकाय ग्रंथ में श्रीकुंदकुंदाचार्य ने गाथा नं. ३७ में जीव के अभाव को मोक्ष कहने वाले नैयायिक मतावलम्बियों का खण्डन करते हुए जीव में तथा मोक्ष अवस्था में शाश्वतपना, क्षणिकपना, शून्यपना-अशून्यपना, भव्यपना-अभव्यपना, विज्ञान और अज्ञान इन सभी गुणों को स्वीकार किया है। यथा —

सस्सद-मध-उच्छेदं, भव्व-मभव्वं च सुण्ण-मिदं च।

विण्णाण-मविण्णाणं णवि जुज्जदि असदि सब्भावे ॥३७॥

अर्थ — यदि जीव का सद्भाव न हो तो शाश्वत-नाशवंत, भव्य-अभव्य, शून्य-अशून्य, विज्ञान और अविज्ञान भी घटित नहीं हो सकते। इसलिए मोक्ष में जीव का सद्भाव ही है, ऐसा मानना चाहिए।

इसकी तात्पर्यवृत्ति टीका में श्रीजयसेनाचार्य ने बड़े सुंदर ढंग से मुक्तात्माओं में इन ८ गुणों के सद्भाव को सिद्ध किया है तथा भव्यत्व-अभव्यत्व गुण को इस प्रकार बताया है- भव्वमभव्वं च-निर्विकारचिदानंदैकस्वभावपरिणामेन भवनं परिणमनं भव्यत्वं, अतीतमिथ्यात्वरगादि-विभावपरिणामेन अभवनपरिणमनमभव्यत्वं च सिद्धावस्थायां।

अर्थात् भव्यपना इसलिए है कि विकाररहित चिदानंदमय एकस्वभाव से वे सदा परिणमन

अभव्यसिद्धिकानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, चतुर्दश जीवसमासाः, षट्-पञ्च-चतुःपर्याप्तयस्ता एवापर्याप्तयश्च, दश-सप्त-नव-सप्त-अष्ट-षट्-सप्त-पञ्च-षट्-चतुः-चतुस्त्रिप्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पंच जातयः, षट् कायाः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीण्यज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४७०</sup>।

करते रहते हैं यह उनमें होनापना या भव्यपना है। अभव्यपना इसलिए है कि वे सिद्ध अवस्था में कभी भी अतीत मिथ्यात्व व रागादि विभावों में परिणमन नहीं करेंगे, इनरूप न होना यही अभव्यपना है अर्थात् यहाँ पर पारिणामिक भावरूप भव्य-अभव्यपना नहीं कहकर जो भाव सिद्धों में होते हैं और जो नहीं होते हैं उन्हीं को भव्य-अभव्यरूप से वर्णित किया है यह अध्यात्म परिभाषा सिद्धान्त में घटित नहीं होगी।

सत्प्ररूपणा के इस भव्यमार्गणा प्रकरण में तो आत्मा की भव्यत्व-अभव्यत्वशक्ति को ही प्रमुखता से दर्शाया गया है। आगम के परिप्रेक्ष्य में सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वन्दना तथा महाव्रतादि को धारण करने रूप क्रियाओं से ही वर्तमान में अपने भव्यत्व की पहचान की जा सकती है।

अब भव्यमार्गणा में तीन कोष्ठक कहेंगे—

भव्यमार्गणा के अनुवाद से भव्यसिद्धिक जीवों के आलाप कहने पर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक के आलाप ओघ आलापों के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि भव्य आलाप कहते समय एक भव्यसिद्धिक आलाप ही कहना चाहिए।

अभव्यसिद्धिक जीवों के आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छः प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छः प्राण, चार प्राण, चार प्राण तीन प्राण, चारों संज्ञाएं चारों गतियाँ, पाँचों जातियाँ, छहों काय, आहारककाययोगद्विक के विना शेष तेरह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

नं. ४७०

अभव्यसिद्धिक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१४	६प. ६अ.	१०, ७ ९, ७ ८, ६ ५प. ७, ५ ६, ४ ४अ.	४	४	५	६	१३ बिना आदि	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२	द्र. ६ भा. ६	१ अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा गृहीतव्याः\*४७१।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४७२।

नैव भव्यसिद्धिकानां नैवाभव्यसिद्धिकानामोघवद्भंगो ज्ञातव्यः। एवं भव्यत्वमार्गणायां तिस्रः संदृष्टयो गताः।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-  
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम् एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

उन्हीं अभव्यसिद्धिक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलापवर्णन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएँ लेना चाहिए।

इसी प्रकार उन अभव्यसिद्धिक जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर केवल अपर्याप्त प्ररूपणाएँ ही ग्रहण की जाती हैं।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक दोनों विकल्पों से रहित सिद्ध जीवों के आलाप ओघ-आलापों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार भव्यमार्गणा में तीन संदृष्टियाँ पूर्ण हुईं।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में भव्यमार्गणा नामका ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

### नं. ४७१

### अभव्यसिद्धिक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुः अचक्षुः	२ द्र.६ भा.६	१ अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४७२

### अभव्यसिद्धिक जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ. ५ अ. ४ अ.	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ अचक्षुः अचक्षुः	२ द्र.२ का. शु. भा.६	१ अ.	१ मि.	२ सं. असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

सम्यक्त्वं वेदकं प्राप्य, क्षायिकं में कदा भवेत्।

एवं भावनया शीघ्रं भवाम्भोधिं तराम्यहम् ॥१॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणायां अष्टाविंशतिकोष्ठकानि निगद्यन्ते—

सम्यक्त्वानुवादेन सम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सन्ति एकादश गुणस्थानानि, अतीतगुणस्थानमप्यस्ति, द्वौ जीवसमासौ अतीतजीवसमासा अपि सन्ति, षट् पर्याप्तयः षट्पर्याप्तयः अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, दश प्राणाः सप्त प्राणाः चत्वारो द्वौ एकः प्राणाः, अतीतप्राणा अपि सन्ति, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः सिद्धिगतिरप्यस्ति, पञ्चेन्द्रियजातिरनिन्द्रियत्वमप्यस्ति, त्रसकायोऽकाय-त्वमप्यस्ति, पञ्चदश योगा अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, पञ्च ज्ञानानि, सप्त संयमाः नैव संयमो नैवा संयमो नैव

### अब सम्यक्त्व मार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है।

**श्लोकार्थ**—वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके अब मुझे क्षायिक सम्यक्त्व कब प्राप्त होगा ऐसी भावना करते हुए शीघ्र ही संसार समुद्र से पार होने की अभिलाषा है॥१॥

**भावार्थ**—पंचमकाल में केवली-श्रुतकेवली का साक्षात् चरणसानिध्य न होने के कारण क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है फिर भी क्षयोपशम सम्यक्त्व के बल पर व्यवहारचारित्र का पालन करते हुए साधुजन मोक्षमार्ग में तत्पर हैं। इस सम्यक्त्वमार्गणा के प्रकरण में मंगलाचरण के माध्यम से पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने क्षयोपशम सम्यक्त्व की दृढ़ता के साथ क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है जो उनकी भावविशुद्धि का परिचायक है। हम सभी को इसी प्रकार अपने सम्यक्त्व की विशुद्धि हेतु भावना भाते हुए सभी प्रकार के अंतरंग एवं बहिरंग मिथ्यात्व का त्याग करना चाहिए।

जैसा कि श्री समंतभद्राचार्य ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है—

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्, त्रैकाल्ये त्रिगत्यपि।

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम्॥३४॥

अर्थात् तीनों लोकों और तीनों कालों में संसारी जीवों के लिए सम्यग्दर्शन के समान हितकारी और कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादर्शन के समान तीनों लोकों और तीनों कालों में अन्य कुछ भी दुःखकारी नहीं है।

सम्यग्दर्शन से शुद्ध हुआ मनुष्य यदि अव्रती भी है तो भी नारकी, तिर्यच, नपुंसक, स्त्री, नीचकुली, विकृत अंग वाला, अल्प आयु वाला और दरिद्री नहीं होता है। भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवों में भी सम्यग्दृष्टि का जन्म नहीं होता है। एकेन्द्रिय और विकलत्रय में भी जन्म नहीं लेता है। अर्थात् शुद्ध सम्यग्दृष्टि अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियों से युक्त उत्तम शोभा से सहित देवियों और अप्सराओं की सभा में चिरकाल तक सुख भोगते रहते हैं। इस तरह वे स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र आदि के वैभव को प्राप्त करते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव ही देवेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर, मुनिपति और गणधरो द्वारा पूज्य तीर्थंकर पद को प्राप्त कर धर्मचक्र को धारण करते हैं पुनः

संयमासंयमोऽप्यस्ति, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिका अपि सन्ति, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४७३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा गृहीतव्याः\*४७४।

सम्पूर्ण कर्ममल से रहित सिद्धअवस्था को प्राप्त करते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का सतत पुरुषार्थ करना ही मानवजीवन का सार है।

सम्यक्त्व मार्गणा के अनुवाद से सम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक ग्यारह गुणस्थान तथा अतीतगुणस्थान भी है, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा अतीतजीवसमासस्थान भी है, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ और अतीतपर्याप्तिस्थान भी है, दशों प्राण, सात प्राण, चार प्राण, दो प्राण, एक प्राण तथा अतीतप्राणस्थान भी है, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ तथा सिद्धगति भी है, पंचेन्द्रियजाति तथा अनिन्द्रियस्थान भी है, त्रसकाय तथा अकायत्वस्थान भी है, पन्द्रहों योग तथा अयोगस्थान भी है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, पाँचों ज्ञान, सातों संयम तथा संयम, असंयम और संयमासंयम से रहित भी स्थान है, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक तथा भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

नं. ४७३

सम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
११ अवि. से. अयो.	२ सं.प. सं.अ	६ प. ६ अ	१०, ७ ४, २ १	४ क्षीणसं	४ सिद्धा.	१ पं.	१ त्र.	१५ अयोग.	३ अपग.	४ अकषा.	५	७ अनुभ.	४	द्र.६ भा.६ अलेश्य.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.

नं. ४७४

सम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
११ अवि. से. अयो.	१ सं.प.	६	१० ४ २ १	४ क्षीणसं	४	१ पं.	१ त्र.	१४ वै.मि. विना. अथवा ११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अपग.	४ अकषा.	५	७	४	द्र.६ भा.६ अलेश्य.	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.



तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने अविरतसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयत-सयोगिनामानि त्रीणि गुणस्थानानि, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः द्वौ प्राणौ, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, चत्वारो योगाः—औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-आहारमिश्र-कर्मणयोगाः, स्त्रीवेदेन बिना द्वौ वेदौ, अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, चत्वारि ज्ञानानि, चत्वारः संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽनुभया वा, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*४७५</sup>।

उन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर केवल पर्याप्तप्ररूपणाएं ही ग्रहण की जाती हैं।

**विशेषार्थ**—छठवें गुणस्थान की आहारकसमुद्घात अवस्था में और तेरहवें गुणस्थान की केवलसमुद्घात अवस्था में पर्याप्त नामकर्म का उदय और औदारिक शरीर संबंधी सभी पर्याप्तियों की पूर्णता होने के कारण पर्याप्तता के स्वीकार कर लेने पर आहारकमिश्र, औदारिक मिश्र और कर्मणकाय ये तीन योग पर्याप्त अवस्था में भी बन जाते हैं इसलिए मूल में सर्वप्रथम चौदह योगों का निर्देश किया है किन्तु केवल समुद्घात के अपर्याप्तसंबंधी और आहारकमिश्रसंबंधी-काल को छोड़कर पर्याप्त अवस्था में ग्यारह ही योग संभव हैं, इसलिए अवस्था कहकर ग्यारह योग ही कहे हैं।

उन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि, प्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली ये तीन गुणस्थान, एक संज्ञी-अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, दो प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, आहारकमिश्र और कर्मणकाययोग ये चार योग स्त्रीवेद के बिना शेष दो वेद तथा अपगतवेद स्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान ये चार ज्ञान, असंयम, सामाधिक, छेदोपस्थापना और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम ये चार संयम, चारों दर्शन, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्याएँ, भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

नं. ४७५

सम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३	१	६	७	४	४	१	१	४	२	४	४	४	४	४	१	३	१	२	२
अवि.	सं.अ.	अ.	२	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	औ.मि.	पु.	वै.मि.	मति.	असं.	असं.	का.	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
प्रम.				प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	वै.मि.	न.	वै.मि.	श्रुत.	सामा.	छेदो.	शु.		क्षा.	अनु.	अनाहार	अनाकार
सयो.				प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	आ.मि.	प्रा.	आ.मि.	अव.	यथा.		भा.६		क्षायो.			तथा
				प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	कर्म.	प्रा.	कर्म.	केव.								यु.उ.

उपरि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानादारभ्यायोगिकेवलिपर्यन्तानां गुणस्थानवद् भंगा वक्तव्याः, तेषां सर्वेषां सम्यक्त्वसंभवात्।

क्षाधिकसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सन्ति एकादश गुणस्थानानि, अतीतगुणस्थानमप्यस्ति, द्वौ जीवसमासौ अतीतजीवसमासा अपि सन्ति, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, दश-सप्त-चतुः-द्वि-एकप्राणा अतीतप्राणोऽप्यस्ति, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः सिद्धगतिरप्यस्ति, पञ्चेन्द्रियजातिरिन्द्रियत्वमप्यस्ति, त्रसकायोऽकायत्वमप्यस्ति, पञ्चदश योगा अयोगोऽप्यस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, पञ्च ज्ञानानि, सप्त संयमा नैव संयमो नैवासंयमो नैव संयमासंयमोऽप्यस्ति, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिकाः नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिका अपि सन्ति, क्षायिकसम्यक्त्वं, संज्ञिनो नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>\*४९६</sup>।

ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान होते हैं क्योंकि उन सभी गुणस्थानवर्ती जीवों के सम्यक्त्व पाया जाता है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक ग्यारह गुणस्थान तथा अतीतगुणस्थान भी होता है, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास तथा अतीत जीवसमासस्थान भी है, छहों पर्याप्तियाँ छहों अपर्याप्तियाँ तथा अतीतपर्याप्तिस्थान भी हैं, दशों प्राण, सात प्राण, चार प्राण, दो प्राण और एक प्राण तथा अतीतप्राण स्थान भी है, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ तथा सिद्धगति भी है, पंचेन्द्रियजाति तथा अनिन्द्रियस्थान भी है, त्रसकाय तथा अकायस्थान भी है, पन्द्रहों योग तथा अयोगस्थान भी है, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, पाँचों ज्ञान, सातों संयम तथा संयम, असंयम और संयमासंयम से रहित भी स्थान है, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी है, भव्यसिद्धिक तथा भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, क्षायिकसम्यक्त्व, संज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

नं. ४७६

## क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
११ अवि. से. अयो. अती गु.	२ सं.प. सं.अ. अती.जी.	६ प. ६ अ अती.प.	१०,७ ४,२ १ अती.प्रा.	४ क्षीणसं	४ सिद्धग.	१ अनीन्द्र.	१ अकाय.	१५ अयोपा.	३ अपा.	४ अकषा.	५ मति. श्रुत. अव. मनः. केव.	७ अनुभ.	४	६ भा. ६ अलेख्य.	१ भ. अनु.	१ क्षा.	१ सं अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.

तेषामेव पर्याप्तानां भण्माने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४७७।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ—नरकगतौ नपुंसकवेदापेक्षया, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४७८।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४७९।

उन्हीं क्षायिकसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ही लेना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्त क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के आलापों में स्त्रीवेद के बिना दो वेद ( नरकगति में नपुंसकवेद की अपेक्षा यह वर्णन है ) होते हैं। शेष सभी अपर्याप्त आलाप ही वहाँ होते हैं।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयतजीवों के आलाप कहने पर—एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, आहारककाययोगद्विकके

### नं. ४७७

### क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
११ अवि. से. अयो.	१ सं.प.	६ ४ १	१० ४ १	४ ४ १	४ ४ १	१ १ १	१ १ १	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अपा. अकषा.	४ अकषा.	५ मति. श्रुत. अव. मनः. केव.	७	४	द्र.६ भा.६ हं. क	१ भ.	१ क्षा.	१ सं अनु.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.

### नं. ४७८

### क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
३ अवि. प्रम. सयो.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४ ४ १	४ ४ १	१ १ १	१ १ १	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	२ पु. न. अपा.	४ अकषा.	४ मति. श्रुत. अव. केव.	४ असं. सामा. छेदो. परि.	४	द्र.२ का.शुं. भा.४ का. तेज. पद्म शुक्ल	१ भ.	१ क्षा.	१ सं	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.

### नं. ४७९

### क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ १	१ १	१३ आ.द्रि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ असं.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४८०।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने स्त्रीवेदेन विना द्वौ वेदौ, द्रव्येण कापोतशुक्ललेश्ये, भावेन जघन्यकापोत-तेजः-पद्म-शुक्ललेश्याः, शेषाः अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४८१।

क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतानां भण्यमाने मनुष्यगतिः, सम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वं, शेषाः सामान्यवद् वक्तव्याः\*४८२।

बिना शेष तेरह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, क्षायिकसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप वर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाओं का ही कथन किया जाता है।

इसी प्रकार उन क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलापों में स्त्रीवेद के बिना दो वेद, द्रव्य से कापोत और शुक्ललेश्या तथा भाव से जघन्य कापोत-तेज-पद्म और शुक्ल ये चार लेश्या होते हैं। शेष सभी अपर्याप्तप्ररूपणाओं को ग्रहण करना चाहिए।

### नं. ४८० क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ पं.	१ पं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विज्ञा. पं.	द्र.६ भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४८१ क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पं.	१ पं.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विज्ञा. पं.	द्र.२ का.शु. भा.४ का. तेज. पद्म. शुक्ल.	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४८२ क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पं.	१ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ पं.	१ पं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ विज्ञा. पं.	द्र.६ भा.३ शु.	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

किंच तिर्यगगतौ भोगभूमावेव क्षायिकसम्यग्दृष्टय उत्पद्यन्ते अतस्तत्र संयमासंयमो नास्ति।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां प्रमत्तसंयतप्रभृति सिद्धावसानानां मूलौघवद्भंगा ज्ञातव्याः।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सन्ति चत्वारि गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, पंच संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, वेदकसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४८३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने अपर्याप्तालापा अपनेतव्याः\*४८४।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके एक मनुष्यगति, सम्यक्त्व में केवल क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा शेष सभी आलाप सामान्य हैं। यहाँ विशेषता यह है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव यदि तिर्यचगति में उत्पन्न होंगे तो वे भोगभूमि में ही जन्म लेंगे अतः वह संयमासंयम नहीं होता है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर सिद्ध जीवों तक के प्रत्येक स्थानवर्ती क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप मूल ओघालाप के समान होते हैं।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चार गुणस्थान, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये पाँच संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, वेदक सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और

### नं. ४८३

### वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	२	६	१०	४	४	१	१	१५	३	४	४	५	३	द्र.६	१	१	१	२	२
अवि.	सं.प.	प.	७			पं.	त्र.				मति.	असं.	पि.	भा.६	भ.	क्षायो.	सं	आहार	साकार
से.	सं.अ.	६									श्रुत.	देश.	१६.					अनाहार	अनाकार
अप्र.	अ										अव.	सामा.	१६.						
											मनः.	छेदो.	१६.						
											परि.								

### नं. ४८४

### वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४	१	६	१०	४	४	१	१	११	३	४	४	५	३	द्र.६	१	१	१	१	२
अवि.	सं.प.					पं.	त्र.	म.४			मति.	असं.	पि.	भा.६	भ.	क्षायो.	सं	आहार	साकार
से.								व.४			श्रुत.	देश.	१६.						अनाकार
अप्र.								औ.१			अव.	सामा.	१६.						
								वै.१			मनः.	छेदो.	१६.						
								आ.१			परि.								

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने स्तो द्वे गुणस्थाने, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः—देवगति-मनुष्यगती, कृतकरणीयं वेदकसम्यग्दृष्टिं प्रतीत्य नरकतिर्यग्गती लभ्येते। शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४८५।  
वेदकसम्यग्दृष्टि-असंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, शेषा यथायोग्या वक्तव्याः\*४८६।  
तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४८७।

अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं वेदकसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में सभी अपर्याप्त आलापों को छोड़कर कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार उन वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलापों में उनके दो गुणस्थान होते हैं, एक जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ तथा चारों गतियाँ होती हैं। इसका कारण यह है कि वेदकसम्यग्दृष्टि के अपर्याप्त काल में देव और मनुष्य ये दो गति तो पाई ही जाती हैं किन्तु कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से नरकगति और तिर्यचगति भी पाई जाती हैं। शेष सभी आलाप अपर्याप्तसंबंधी ही जानना चाहिए।

नं. ४८५

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
२ अवि. प्रम.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पं.	१ त्र.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	३ विज्ञा. पं.दं. कर्म.	३ द्र.२ का.शु. भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४८६

वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ पं.	१ त्र.	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ विज्ञा. पं.दं. कर्म.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ४८७

वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ पं.	१ त्र.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विज्ञा. पं.दं. कर्म.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वौ पुरुषनपुंसकवेदौ, भावेन षड्लेश्याः, वेदकसम्यक्त्वं, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*४८८।

वेदकसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानां भण्यमाने द्वे गती, भावेन तेजः-पद्म-शुक्ललेश्याः, वेदकसम्यक्त्वं, शेषाः सामान्यवद् वक्तव्याः\*४८९।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां प्रमत्तसंयतानां भण्यमाने केवलं सम्यक्त्वस्थाने वेदकसम्यक्त्वं, शेषाः सामान्यवद् वक्तव्याः\*४९०।

वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के आलाप कहने पर एक चतुर्थ गुणस्थान होता है, दो जीवसमास ( संज्ञी पर्याप्त-संज्ञी अपर्याप्त ) होते हैं। शेष सभी आलाप यथायोग्य जानना चाहिए।

उन्हीं वेदकसम्यग्दृष्टि असंयतगुणस्थानवर्ती पर्याप्तजीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त प्ररूपणाएं ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त जीवों के आलाप कथन में पुरुषवेद एवं नपुंसकवेद ये दो वेद, भाव से छहों लेश्या तथा वेदक सम्यक्त्व होता है। शेष सभी अपर्याप्त आलाप ही होते हैं।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर उनके दो गतियाँ ( तिर्यच एवं

### नं. ४८८

### वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पिं.	१ पू.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ द्वि. पिं. पू.	द्र.२ का.शु. भा.६	१ भ.	१ क्षा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४८९

### वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पिं.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पिं.	१ पू.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश.	३ पिं. पू.	द्र.६ भा.३ शु.	१ भ.	१ क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४९०

### वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्रम.	२ सं.प. सं.अ.	६प. ६अ.	१० ७	४	१ म.	१ पिं.	१ पू.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.२	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ पिं. पू.	द्र.६ भा.३ शु.	१ भ.	१ क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

वेदकसम्यग्दृष्टि-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमाने यथायोग्या वक्तव्याः\*४९१।

उपशमसम्यग्दृष्टीनां भण्यमाने सन्त्यष्टौ गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः उपशान्तपरिग्रहसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, औदारिकमिश्र-आहारद्विकैर्विना द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया उपशान्तकषायोऽप्यस्ति, चत्वारि ज्ञानानि, परिहारसंयमेन विना षट् संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४९२।

मनुष्यगति) होती हैं, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन लेश्या होती हैं। सम्यक्त्व के स्थान पर केवल वेदक सम्यक्त्व होता है। शेष सभी आलाप सामान्यवत् जानना चाहिए।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कथन में उनके सम्यक्त्वस्थान में केवल एक वेदकसम्यक्त्व कहना चाहिए। शेष सभी आलाप सामान्यवत् जानना चाहिए।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत जीवों के आलापवर्णन में यथायोग्य गुणस्थान के समान ही सभी आलाप ग्रहण करना चाहिए।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक आठ गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, तथा उपशान्तपरिग्रहसंज्ञा भी है, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, औदारिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग इन तीनों योगों के बिना शेष बारह योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा उपशान्तकषायस्थान भी है, आदि के चार ज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम के बिना शेष छह संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिक सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

### नं. ४९१

### वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ ऊं.	१ सं.प.	६	१०	३ भय. मै. परि.	१ म.	१ पं.	१ पं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ पं.	३ द्र.६ भा.३ शु.	१ भ.	१ क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ४९२

### उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
८ अवि. से. उप.	२ सं.प. सं.अ. अ	६ प.	१० ७	४ पं.	४	१ पं.	१ त्र.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३ ऊपां.	४ कं. रु.	४ मति. श्रुत. अव. मनः	६ परि. विना.	३ पं.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ औप.	१ सं	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार



तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने सन्ति अष्ट गुणस्थानानि, एको जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः उपशान्त परिग्रहसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दशयोगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया उपशान्तकषायोऽप्यस्ति, चत्वारि ज्ञानानि, षट् संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४९३।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, द्वौ योगौ, पुरुषवेदः, शेषा अपर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*४९४।

उपशमसम्यग्दृष्टि-असंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वादश योगाः — औदारिकमिश्र-आहारद्विकैर्विना,

उन्हीं उपशमसम्यग्दृष्टि पर्याप्तक जीवों के आलाप कहने पर—अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक आठ गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएं तथा उपशान्तपरिग्रहसंज्ञा भी है, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग ये दश योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा उपशान्तकषायस्थान भी है, आदि के चार ज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम के बिना शेष छह संयम आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं, भव्यसिद्धिक, औपशमिक सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालीन आलापों के वर्णन में सभी अपर्याप्तप्ररूपणाएं कहना चाहिए। केवल विशेष बात यह है कि उनके एक देवगति होती है, दो योग (वैक्रियिकमिश्र और कार्मण) होते हैं और पुरुषवेद होता है।

उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों

नं. ४९३

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
८ अवि. से. उप.	१ सं.प.	६	१०	४ पं.	४	१ पं.	१ त्र.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३ पु.	४ क.	४ मति. श्रुत. अव. मनः.	६ परि. विना.	३ विना.	३ भा.६	१ भ.	१ औप.	१ सं	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ४९४

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ दे.	१ पं.	१ त्र.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ विना.	३ का.शु. भा.३ शुभ.	१ भ.	१ औप.	१ सं	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४९५।

एषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा भणितव्याः\*४९६।

एषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने देवगतिः, पुरुषवेदः, शेषा अपर्याप्तलापा वक्तव्याः\*४९७।

प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैकियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिक सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं उपशमसम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती पर्याप्तक जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्त अवस्था वाली प्ररूपणाओं को ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्त अवस्था में उन उपशमसम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवों के

#### नं. ४९५

#### उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१२ म.४ व.४ औ.१ वै.२ का.१	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ औप.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४९६

#### उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ औप.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

#### नं. ४९७

#### उपशमसम्यग्दृष्टि असंयत जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	१ दे.	१ पुं.	१ पुं.	२ वै.मि. कर्म.	१ पु.	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ पुं. पुं. पुं.	३ द्र.२ का.शु. भा.३ शुभ.	१ भ.	१ औप.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

उपशमसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४९८।

उपशमसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, मनःपर्ययज्ञानेन सह उपशमश्रेण्याः अवतीर्य प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य उपशमसम्यक्त्वेन सह मनःपर्ययज्ञानं लभ्यते, किन्तु मिथ्यात्वपश्चादागत-उपशमसम्यग्दृष्टिप्रमत्तसंयतस्य मनःपर्ययज्ञानं नोत्पद्यते, तत्रोत्पत्तिसंभवाभावात्। द्वौ संयमौ, परिहारसंयमो नास्ति। कारणं, न तावन् मिथ्यात्वपश्चादागत-उपशमसम्यग्दृष्टिसंयताः परिहारसंयमं प्रतिपद्यन्ते, किंच-सर्वोत्कृष्ट-प्रथमोपशमसम्यक्त्व-

आलाप कथन में एक देवगति और एक पुरुषवेद होता है तथा शेष सभी आलाप अपर्याप्त संबंधी ही लिए जाते हैं।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत-पंचमगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक देशसंयत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति और मनुष्यगति ये दो गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिक सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक प्रमत्तसंयत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान होते हैं। उपशमसम्यग्दृष्टि के मनःपर्ययज्ञान होता है इसका कारण यह है कि मनःपर्ययज्ञान के साथ उपशमश्रेणी से उतरकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के औपशमिकसम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान पाया जाता है। किन्तु मिथ्यात्व से पीछे आए हुए उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीव के मनःपर्ययज्ञान नहीं पाया जाता है, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत के मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति संभव नहीं है। ज्ञान आलाप के आगे सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम होते हैं। किन्तु परिहारविशुद्धिसंयम नहीं होता है। इसका कारण यह है कि,

नं. ४९८

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	३	४	३	१	३	६	१	१	१	१	२
सं.प.					ति.	म.	म.	म.४			मति.	देश.	म.	द्र.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
							म.	व.४			श्रुत.		पुं.	भा.३					अनाकार
							औ.१				अव.		पुं.	शु.					

कालस्याभ्यन्तरे तदुत्पत्तिनिमित्तगुणानां — विशिष्टसंयम-तीर्थकरचरण-मूलवसति-प्रत्याख्यानपूर्वमहार्णवपठनादिगुणानां संभवाभावात्। न चोपशमश्रेणिं चटमानाः, तत्र पूर्वमेवान्तर्मुहूर्तमस्तीति उपसंहरतिविहारात्। न ततोऽवतीर्णानामपि-द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टीनां तस्य संभवः, नष्टे परिहारविशुद्धिसंयमे उपशमसम्यक्त्वेन सह विहारस्यासंभवात्।

त्रिणि दर्शनानि, द्रव्येण षट् लेश्याः भावेन तिस्रः शुभलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*४९९।

उपशमसम्यग्दृष्टि-अप्रमत्तानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, तिस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, चत्वारि ज्ञानानि, द्वौ संयमौ, परिहारसंयमो नास्ति।

उक्तं च — मणपज्जवपरिहारा, उवसमसम्मत्त दोण्णि आहारा।

एदेसु एक्कपयदे, णत्थि त्ति य सेसयं जाणे।।

मिथ्यात्व से पीछे आये हुए प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि संयत जीव तो परिहारविशुद्धिसंयम को प्राप्त होते नहीं हैं, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्व काल का काल अति स्तोक ( थोड़ा ) है, इसलिए उसके भीतर परिहारविशुद्धिसंयम की उत्पत्ति के निमित्तभूत विशिष्टसंयम, तीर्थकर-चरणमूल-वसति, प्रत्याख्यानपूर्व-महार्णवपठन आदि के गुणों के होने की संभावना का अभाव है और न उपशमश्रेणीपर चढ़ने वाले द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के भी परिहारविशुद्धिसंयम की संभावना है, क्योंकि उपशमश्रेणी पर चढ़ने के पूर्व ही जब अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है तभी परिहारविशुद्धिसंयमी अपने गमनागमनादि विहार को उपसंहरित अर्थात् संकुचित या बंद कर लेता है और उपशमश्रेणी से उतरे हुए द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि संयत जीवों के भी परिहारविशुद्धिसंयम की संभावना नहीं है, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर परिहारविशुद्धिसंयमी का पुनः संभव है। संयम आलाप के आगे आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तीन शुभ लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर — एक अप्रमत्तसंयत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, आहारसंज्ञा के बिना शेष तीन संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो संयम होते हैं, किन्तु परिहारविशुद्धिसंयम नहीं होता है। कहा भी है —

श्लोकार्थ — मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम, प्रथमोपशमसम्यक्त्व, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग इनमें से किसी एक के प्रकृत होने पर शेष के आलाप नहीं होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

नं. ४९९

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१. मि.	२ सं.प.	६	१०	४	१ म.	१ प.	१ प.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	२ सामा. छेदो.	३ पु. पु.	द्र.६ भा.३ शु.	१ भ.	१ औप.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तिस्रः शुभलेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, उपशमसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*५००</sup>।

अपूर्वकरणप्रभृति यावदुपशान्तकषाय इति तावदोषभंगः। नवरि सर्वत्र उपशमसम्यक्त्वं कथयितव्यम्।

मिथ्यात्व-सासादनसम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वाणां ओघमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टिवद् भंगो ज्ञातव्यः। एवं सम्यक्त्वमार्गणायां अष्टाविंशतिसंदृष्टयो गताः।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे गणिनी-  
ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

**विशेषार्थ**—गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में भी यही गाथा पाई जाती है। उसमें 'उवसमसम्मत' के स्थान में 'पढमुवसम्मत' पाठ पाया जाता है जो संगत प्रतीत होता है, क्योंकि, प्रथमोपशमसम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम और आहारद्विक इन सबके होने का विरोध है औपशमिकसम्यक्त्व के साथ नहीं। यद्यपि औपशमिक सम्यक्त्व के साथ परिहारविशुद्धिसंयम और आहारद्विक नहीं होते हैं फिर भी द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा औपशमिकसम्यक्त्व के साथ मनः पर्ययज्ञान का होना संभव है, इसलिए गाथा में 'उवसमसम्मत' ऐसा सामान्य पद रखने से औपशमिकसम्यक्त्व के साथ भी मनःपर्ययज्ञान के होने का निषेध हो जाता है। तो भी 'उवसमसम्मत' पद का अर्थ प्रथमोपशमसम्यक्त्व कर लेने पर कोई दोष नहीं आता है यही समझकर पाठ में परिवर्तन नहीं किया है।

संयम आलाप के आगे आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तीन शुभ लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों के अपूर्वकरण गुणस्थान से लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक सभी आलाप ओघ आलाप के समान होते हैं। विशेष बात यह है कि सम्यक्त्व आलाप कहते समय सर्वत्र उपशमसम्यक्त्व ही कहना चाहिए।

मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के आलाप क्रमशः मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के आलापों के समान जानना चाहिए। इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा में अट्ठाईस कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत  
आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका  
में बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

नं. ५००

उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	३	१	१	१	९	३	४	४	२	३	द्र.६	१	१	१	१	२
अप्र.	सं.प.			आहा. विना.	म.	पुं.	पुं.	म.४ व.४ औ.१			मति. श्रुत. अव. मनः	सामा. छेदो.	पुं. पुं.	भा.३ शु.	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार अनाकार

## अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

संज्ञित्वं प्राप्य कुर्वेऽहं, मनसा स्वात्मचिन्तनम्।

ततः प्राप्स्यामि सिद्धत्वं संसारार्णवपारगम्॥१॥

अथ संज्ञिमार्गणायां षोडश संदृष्टयः उच्यन्ते—

प्राधान्यपदेऽवलम्ब्यमाने सर्वानुवादानां मूलौघभङ्गो भवति, तत्र सर्वविकल्पसंभवात्। किन्तु गौणनामपदेऽवलम्ब्यमाने न भवति।

प्राधान्यपदेऽवलम्ब्यमानेऽसंयमादीनां कथं ग्रहणम् ? न, व्यतिरेकमुखेन संयमादि प्ररूपणार्थं व्याख्यानमविरुद्धम्। एषोऽर्थः सर्वत्र वक्तव्यः।

संज्ञ्यनुवादेन संज्ञिनां भण्यमाने सन्ति द्वादश गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, पञ्चदश योगाः, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, सप्त ज्ञानानि, सप्त संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां

### अब संज्ञी मार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है

**श्लोकार्थ**—संज्ञी अवस्था को प्राप्त करके मैं मन से आत्मा का चिन्तन करते हुए संसारसमुद्र को पार करके सिद्ध अवस्था को प्राप्त करूँगा।

**भावार्थ**—संज्ञीमार्गणा के इस प्रारंभिक मंगलाचरण के माध्यम से टीकाकर्त्री ने मानवपर्याय की दुर्लभता को प्रदर्शित किया है। अर्थात् एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के तो सभी जीव असंज्ञी-मनरहित ही होते हैं तथा पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी-असंज्ञी दो प्रकार के होते हैं जिनमें मनुष्य संज्ञी ही होते हैं। इसलिए वे मन के द्वारा अपने हित-अहित का चिन्तन करते हुए हित की ओर प्रवृत्त हुआ करते हैं। जैसा कि श्री पद्मनंदि आचार्य ने भी कहा है—

इन्द्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः।

संसारे भ्रमताश्चिरं यदखिलाः प्राप्ताः मयानन्तशः॥

तत्रापूर्वमिहास्ति किञ्चिदपि मे हित्वा विकल्पावलिं।

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तपदवीं तां देव! पूर्णां कुरु॥

अर्थात् हे देव! मैंने चिरकाल से संसार में भ्रमण करते हुए बहुत बार ऊँचे से ऊँचा इन्द्र पद प्राप्त किया है तथा नीची से नीची निगोदपर्याय को भी अनन्त बार प्राप्त किया है। बीच में और भी जो समस्त अनन्तभव हैं उन सबको भी अनन्तबार प्राप्त किया है। अतः उनमें से मुक्ति को प्रदान करने वाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप परिणति को छोड़कर और कोई भी वस्तु अपूर्व नहीं है इसलिए रत्नत्रयस्वरूप जिस पदवी को अभी तक मैंने नहीं प्राप्त किया है। हे नाथ! अब मेरे लिए उस अपूर्व पदवी को ही पूर्ण कीजिए।

इस प्रकार के अनेक चिन्तन मन के द्वारा ही मनुष्य करता है अतः संज्ञीमार्गणा में मन की विशेष उपयोगिता समझना चाहिए।

अब संज्ञी मार्गणा में सोलह संदृष्टियाँ ( कोष्ठक ) प्रस्तुत हैं—

षट् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५०१।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*५०२।

प्राधान्य पद के अवलम्बन करने पर सभी अनुवादों के आलाप मूल ओघालाप के समान होते हैं क्योंकि मूल ओघालाप में सभी विकल्प संभव हैं किन्तु गौणनामपद के अवलम्बन करने पर सभी विकल्प संभव हैं किन्तु गौणनामपद के अवलम्बन करने पर सभी विकल्प संभव नहीं हैं क्योंकि इस नामपद की दृष्टि से गुणनामों के भंगों के ही आलाप कहे जाएंगे, दूसरों के नहीं।

शंका —तो फिर प्राधान्य पद के अवलम्बन करने पर संयमादि के प्रतिपक्षी असंयमादि का ग्रहण कैसे किया जा सकता है?

समाधान —नहीं, क्योंकि व्यतिरेकमुख से संयमादि विकल्पों की प्ररूपणा के लिए ही असंजमादि विपक्षी विकल्पों की प्ररूपणा की जाती है, तभी विवक्षित मार्गणा द्वारा समस्त जीवों का मार्गण हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए संयमादि अन्वयरूप और असंयमादि व्यतिरेकरूप दोनों ही व्याख्यान अविरोद्ध हैं। यही अर्थ सभी मार्गणाओं के विषय में कहना चाहिए।

संज्ञी मार्गणा के अनुवाद से संज्ञी जीवों के आलाप कहने पर-आदि के बारह गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, पन्द्रहों योग, तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, केवलज्ञान के बिना शेष सात ज्ञान, सातों संयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक,

## नं. ५०१

## संज्ञी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२ मि. से क्षी.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. अ.	१० ७	४ क्षीणसं.	४	१ पिं.	१ प्रां.	१५	३ अपां.	४ अक्षां.	७ केव. विना.	७	३ विना. पिं.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

## नं. ५०२

## संज्ञी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१२ मि. से क्षी.	२ सं.प.	६	१०	४ क्षीणसं.	४	१ पिं.	१ प्रां.	११ म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अपां.	४ अक्षां.	७ केव. विना.	७	३ विना. पिं.	३ द्र.६ भा.६	२ भ. अ.	६	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः\*५०३।

संज्ञिमिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने मिथ्यात्वसंबन्धिन आलापा वक्तव्याः, केवलमत्र संज्ञिपदं एव वक्तव्यम्\*५०४।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५०५।

साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं संज्ञी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलापवर्णन में पर्याप्तप्ररूपणाएँ ही लेना।

उन्हीं अपर्याप्त संज्ञी जीवों के आलापवर्णन में केवल अपर्याप्तप्ररूपणाएँ ही ग्रहण की जाती हैं।

संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर मिथ्यात्व संबंधी सभी आलाप लेना चाहिए। यहाँ केवल संज्ञी के स्थान पर संज्ञी पद ही कहना चाहिए।

उन्हीं मिथ्यादृष्टि संज्ञी जीवों के पर्याप्तकालसंबन्धी आलाप कहने पर उनके भी सभी पर्याप्तप्ररूपणाएँ ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन संज्ञी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तक जीवों के आलाप में अपर्याप्तसंबन्धी प्ररूपणाएँ

नं. ५०३

संज्ञी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
४ मि. सासा. अवि. प्रम.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पं.	१ त्र.	४ औ.मि. वै.मि. आ.मि. कर्म.	३	४	५ कुम. कुश्रु. मति. श्रुत. अव.	३ असं. सामा. छेदो.	३ णि. ट्. क्.	३.२ का.शु. भा.६	२ भ. अ.	५ सम्य. विना.	१ सं	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५०४

संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ ट्.	१ क्.	१३ आ.द्वि. विना.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ क्षु. उचक्षु. वक्षु.	३.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५०५

संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ ट्.	१ क्.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षु. वक्षु.	३.६ भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा गृहीतव्याः\*५०६।

संज्ञिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सासादनगुणस्थानवद् वक्तव्याः\*५०७।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*५०८।

कही जाती हैं।

संज्ञी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलापों में द्वितीय गुणस्थान के समान सभी आलाप होते हैं।

उन्हीं द्वितीयगुणस्थानवर्ती सासादनसम्यग्दृष्टि संज्ञी पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएँ ही ग्रहण करना चाहिए।

उन्हीं संज्ञी सासादनसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलाप वर्णन में तीन गतियाँ होती हैं तथा

नं. ५०६

संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ ः	१ ः	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ क क पक्षुं.	२.२ का. शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५०७

संज्ञी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ ः	१ ः	१३ आ. द्वि. विना.	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुं. चक्षुं.	२.६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५०८

संज्ञी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ ः	१ ः	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ अचक्षुं. चक्षुं.	२.६ भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने तिस्रो गतयः शेषाः पूर्ववद् वक्तव्याः\*५०९।

संज्ञिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमाने गुणस्थानवद् वक्तव्याः\*५१०।

संज्ञि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, त्रयोदश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५११।

शेष सभी आलाप पूर्ववत् जानना चाहिए।

संज्ञी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कथन में तृतीय गुणस्थान के समान ही सभी वर्णन जानना चाहिए।

संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप कहने पर—एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, आहारककाययोगद्विक

नं. ५०९

संज्ञी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	३ ति. म. दे.	१ ः मि.	१ ः मि.	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ द्र.२ का. शु. भा.६	१ भ.	१ सासा.	१ सं.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५१०

संज्ञी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सम्य.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ ः मि.	१ ः मि.	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ ज्ञान. ३ अज्ञान. मिश्र.	१ असं.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सम्य.	१ सं.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५११

संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	४	१ ः मि.	१ ः मि.	१३ आ.दि. विना.	३	४	३ मति. श्रुत अव.	१ असं.	३ द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*५१२।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने द्वौ वेदौ, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५१३।

संयतासंयतप्रभृति यावत् क्षीणकषाय इति मूलौघभंगो ज्ञातव्यः।

असंज्ञानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वादश जीवसमासाः, पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, नव-सप्त-अष्ट-षट्-सप्त-पञ्च-षट्-चतुश्चतुस्त्रिप्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, तिर्यगतिः, पञ्च जातयः, षट् कायाः, चत्वारो योगाः—असत्यमृषावचनयोगः औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगौ कर्मणकाययोगश्चेति, त्रयो

के बिना शेष तेरह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्तप्ररूपणाएँ ही ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार उन संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि अपर्याप्त जीवों के आलापकथन में केवल अपर्याप्तप्ररूपणाएँ ही लेना चाहिए।

संयतासंयत गुणस्थान से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक के संज्ञी जीवों के आलाप मूल ओघालापों के समान जानना चाहिए।

असंज्ञी जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त के बिना शेष बारह जीवसमास, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यगति, पाँचो जातियाँ, छहों काय, असत्यमृषावचनयोग,

नं. ५१२

संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ ः	१ ः	१० म.४ व.४ औ.१ वे.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ ः वि.नि. कं	द्र.६ भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५१३

संज्ञी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अवि.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ ः	१ ः	३ औ.मि. वै.मि. कर्म.	२	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ ः वि.नि. कं	द्र.२ का. शु. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

वेदाः, चत्वारः कषायाः, विभंगज्ञानेन विना द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन कृष्णनीलकापोतलेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, असंज्ञिनः, आहारिणोऽनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*५१४</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः<sup>\*५१५</sup>।

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः<sup>\*५१६</sup>।

औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये चार योग, तीनों वेद, चारों कषाय, विभंगावधिज्ञान के बिना शेष दो अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से कृष्ण, नील और कापोत लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, असंज्ञिक, आहारक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी हाते हैं।

उन्हीं असंज्ञी पर्याप्त जीवों के आलापवर्णन में केवल पर्याप्तकालसंबंधी प्ररूपणा ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार उन असंज्ञी जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर केवल अपर्याप्त

नं. ५१४

असंज्ञी जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	१२ सं.प. सं.अ. विना.	५प. ५अ. ४प. ४अ.	१,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३	४	१ ति.			४ व.अनु.१ औ.२ कार्म.१	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	३ कृष्णं भा.३ अशु.	२ द्र.६ भा.३ अशु.	२ भ. अभ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नं. ५१५

असंज्ञी जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	६ पर्या. सं.प. विना.	५ ४	१ ८ ७ ६ ४	४	१ ति.			२ व. अनु.१ औ.१	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ कृष्णं भा.३ अशु.	२ द्र.६ भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५१६

असंज्ञी जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	६ अप. सं.अ. विना.	५ अ. ४ अ.	७ ६ ५ ४ ३	४	१ ति.			२ औ.मि. कार्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ कृष्णं भा.३ अशु.	२ द्र.२ का. शु. भा.३ अशु.	२ भ. अ.	१ मि.	१ असं.	२ आहार अनाहार	२ साकार अनाकार

नैव संज्ञिनां नैवासंज्ञिनां सयोग्ययोगि-सिद्धानां च ओघभंगा ज्ञातव्याः।  
एवं संज्ञिमार्गणायां षोडशकोष्ठकानि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते आलापाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-  
सिद्धान्त-चिन्तामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशाधिकारो समाप्तः।

प्ररूपणाओं का ही वर्णन करना चाहिए।

संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित सयोगिकेवली अयोगिकेवली और सिद्ध  
भगवान के आलाप ओघ आलापों के समान होते हैं।

इस प्रकार संज्ञी मार्गणा में सोलह कोष्ठक ( संदृष्टियाँ ) पूर्ण हुए हैं।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत  
आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि  
टीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार  
समाप्त हुआ।



# अथ आहारमार्गणाधिकारः

द्वात्रिंशदोषनिर्मुक्त-माहारमाददाम्यहम्।

अनाहारपदं सिद्धं, पिण्डशुद्धया भवेद् यतः॥१॥

अथाहारमार्गणायां एकोनत्रिंशत्संद्दृष्टयो वक्ष्यन्ते—

आहारानुवादेन आहारिणां भण्यमाने सन्ति त्रयोदश गुणस्थानानि, चतुर्दश जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः, चतस्रोऽपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः नव प्राणाः, सप्त प्राणाः, अष्टौ प्राणाः, षट् प्राणाः सप्त प्राणाः पञ्च प्राणाः षट् प्राणाः चत्वारः प्राणाः चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः चत्वारः प्राणाः द्वौ प्राणौ, चतस्रः संज्ञाः क्षीणसंज्ञाप्यस्ति, चतस्रो गतयः, पञ्च जातयः, षट् कायाः, चतुर्दश योगाः कर्मणकाययोगोऽस्ति, त्रयो वेदा अपगतवेदोऽप्यस्ति, चत्वारः कषाया अकषायोऽप्यस्ति, अष्ट ज्ञानानि, सप्त संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां

## अब आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है।

श्लोकार्थ — बत्तीस दोषों से रहित, पिण्डशुद्धिपूर्वक आहार ग्रहण करता हूँ क्योंकि अब मैं अनाहार पद—सिद्धपद को प्राप्त करना चाहता हूँ॥१॥

विशेषार्थ — आहारमार्गणा के इस प्रारंभिक मंगलाचरण में टीकाकर्त्री ने अनाहारकपद—सिद्धपद की प्राप्ति हेतु छियालीस दोष और बत्तीस अन्तराय टालकर दिगम्बर जैन साधुचर्यानुसार निर्दोष आहार ग्रहण करने का संकल्प प्रगट किया है। इस विषय में अन्यत्र भी कहा है कि “आहार अनेकों प्रकार का होता है। एक तो सर्वजगत् प्रसिद्ध मुख द्वारा किया जाने वाला खाने-पीने तथा चाटने की वस्तुओं का है उसे कवलाहार कहते हैं। जीव के परिणामों द्वारा प्रतिक्षण कर्मवर्गणाओं को ग्रहण करना कर्माहार है। वायुमण्डल से प्रतिक्षण स्वतः प्राप्त वर्गणाओं का ग्रहण नोकर्माहार है। गर्भस्थ बालक द्वारा ग्रहण किया गया माता का रजांश भी उसका आहार है। पक्षी अपने अण्डों को सेते हैं वह ऊष्माहार है.....इत्यादि। साधुजन इन्द्रियों को वश में रखने के लिए दिन में एक बार, खड़े होकर, यथालब्ध, गृद्धि व रस निरपेक्ष तथा पुष्टिहीन आहार लेते हैं। मूलाचार, आचारसार आदि ग्रंथों से इस आहारविधि का विशेष वर्णन जानना चाहिए।

यहाँ प्रसंगानुसार आहारमार्गणा को कहते हैं—

उदयावणसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं।

णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम॥६६४॥ (जीवकाण्ड गोम्मटसार)

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य।

भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणिदो॥६६५॥

अर्थ — औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नामकर्म में से किसी एक के उदय से उस शरीर, वचन और द्रव्यमन के योग्य नोकर्मवर्गणाओं के ग्रहण का आहार है॥६६४॥

औदारिकादि तीन शरीरों में से उदय में आये किसी शरीर के योग्य आहारवर्गणा, भाषावर्गणा एवं मनोवर्गणा को नियत जीवसमास में और नियतकाल में नियतरूप से सदा ग्रहण करता है इसलिए आहारक कहते हैं॥६६५॥

विग्रहगति में आये चारों गतियों के जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले

षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनोऽपि सन्ति, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा। साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>\*५१७</sup>।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने एकादश योगाः — औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-आहारमिश्र-कर्मणयोगा न सन्ति, शेषाः पर्याप्तालापाः कथयितव्याः<sup>\*५१८</sup>।

सयोगीजिन और सिद्धजीव अनाहारक हैं, शेष सब जीव आहारक हैं।

अब आहारमार्गणा में २९ कोष्ठक कहेंगे —

आहारमार्गणा के अनुवाद से आहारक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर — आदि के तेरह गुणस्थान, चौदहों जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, नौ प्राण, सात प्राण, आठ प्राण, छह प्राण, सात प्राण, पाँच प्राण, छह प्राण, चार प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, सयोगिकेवली के चार प्राण और दो प्राण, चारों संज्ञाएँ तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है, चारों गतियाँ, पाँचों जातियाँ, छहों काय, चौदह योग होते हैं, क्योंकि यहाँ पर कर्मणकाययोग नहीं होता है। तीनों वेद तथा अपगतवेदस्थान भी है, चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी है, आठों ज्ञान, सातों संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिक, असंज्ञिक तथा संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित भी स्थान है, आहारक साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी तथा साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् उपयुक्त भी होते हैं।

उन्हीं आहारक जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, आहारकमिश्र और कर्मण के बिना ग्यारह योग होते हैं। इनके अतिरिक्त शेष

नं. ५१७

आहारक जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ मि. से. सयो.	१४	६प. ६अ. ५प. ५अ. ४प. ४अ.	१०,७ ९,७ ८,६ ७,५ ६,४ ४,३ ४,२	४ प्र. हृ क्ल	४	५	६	१४ कर्म. विना.	३ अपा.	४ अकषा.	८	७	४	६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार तथा यु.उ.

नं. ५१८

आहारक जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१३ मि. से. सयो.	७ प्र. हृ	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४४	४ प्र. हृ क्ल	४	५	६	११म.४ व.४ औ.१ वै.१ आ.१	३ अपा.	४ अकषा.	८	७	४	६ भा.६	२ भ. अ.	६	२ सं. असं. अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार तथा. यु.उ.

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५२१।

आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर एक प्रथम गुणस्थान होता है, चौदहों जीवसमास होते हैं। बारह योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग ) होते हैं किन्तु कर्मणकाययोग

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संयं.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ पर्या.	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म.४ व.४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२. ६ भा. ६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार



तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५२२।

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वादश योगाः—आहारद्विककर्मणयोगा न सन्ति, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि अज्ञानानि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५२३।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने दश योगाः, शेषाः पर्याप्तालापाः कथयितव्याः\*५२४।

उनके नहीं होता है। शेष आलाप यथायोग्य जानना चाहिए।

उन्हीं आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ग्रहण करना चाहिए।

इसी प्रकार अपर्याप्त अवस्था में आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के मात्र अपर्याप्त प्ररूपणाएँ लेना चाहिए।

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक सासादन गुणस्थान, संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों

नं. ५२२

आहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ.	७ ७	४ ४	४ ४	५ ५	६ ६	२ औ.मि. वै.मि.	३ ३	४ ४	२ कुम. कुशु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र. १ का. भा.६	२ भ. अ.	२ मि.	१ सं. असं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५२३

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४ ४	४ ४	१ १	१ १	१२ म.४ व.४ औ.२ वै.२	३ ३	४ ४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५२४

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.प.	६	१०	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१० म.४ व. ४ औ.१ वै.१	३	४	३ अज्ञा.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	२ द्र.६ भा.६	१ भ.	१ सा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमाने तिस्रो गतयः, द्वौ योगौ—औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकाययोगौ, शेषा अपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५२५।

आहारि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, दश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि त्रिभिरज्ञानैर्मिश्राणि, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः भव्यसिद्धिकाः, सम्यग्मिथ्यात्वं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५२६।

प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोगद्विक और वैक्रियिककाययोगद्विक ये बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालीन आलापवर्णन में दश योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग ) होते हैं। शेष सभी अपर्याप्त आलाप ही इसमें जानना चाहिए।

इसी प्रकार उन आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालीन आलापों में तीन गतियाँ ( नरकगति के बिना ) होती हैं एवं औदारिकमिश्र और वैक्रियिकमिश्र ये दो योग होते हैं। शेष सभी अपर्याप्त प्ररूपणाएँ जानना चाहिए।

आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोग ये दश

### नं. ५२५ आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	७	४	३	१	१	२	३	४	२	१	२	द्र.१	१	१	१	१	२
सा.	सं.अ.	अ.			ति.	पिं.	पू.	औ.मि.			कुम.	असं.	चक्षु.	का.	भ.	सा.	सं.	आहार	साकार
					म.दे.			वै.मि.			कुश्रु.		अच.	भा.३					अनाकार

### नं. ५२६ आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इ.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	१०	३	४	३	१	२	द्र.६	१	१	१	१	२
संय.	सं.प.					पिं.	पू.	म.४			ज्ञान.	असं.	चक्षु.	भा.६	भ.	पू.	सं.	आहार	साकार
								व.४			३		अचक्षु.						अनाकार
								औ.१			अज्ञा.								
								वै.१			मिश्र.								

आहारि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, द्वादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५२७।

तेषामेव पर्याप्तानां भण्यमाने पर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५२८।

योग, तीनों वेद, चारों कषाय, तीनों अज्ञानों से मिश्रित आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, सम्यग्मिथ्यात्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोगद्विक और वैक्रियिककाययोगद्विक ये बारह योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिक आदि के तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

उन्हीं आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके केवल पर्याप्त प्ररूपणाएँ ही ग्रहण करना चाहिए।

नं. ५२७

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के सामान्य आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	२	६	१०	४	४	१	१	१२	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
वि.	सं.पं.	प	७			पुं.	पुं.	म.४			मति.	असं.	के.द.	भा.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
अवि.	सं.अ.	६						व.४			श्रुत.		विना.		क्षायो.				अनाकार
	अ.							वै.२			अव.								

नं. ५२८

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के पर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	४	१	१	१०	३	४	३	१	३	द्र.६	१	३	१	१	२
वि.	सं.प.					पुं.	पुं.	म.४			मति.	असं.	के.द.	भा.६	भ.	औप.	सं.	आहार	साकार
अवि.								व.४			श्रुत.		विना.		क्षायो.				अनाकार
								वै.१			अव.								

तेषामेवापर्याप्तानां भण्यमानेऽपर्याप्तालापा वक्तव्याः\*५२९।

आहारि-संयतासंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, द्वे गती, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, त्रीणि दर्शनानि, संयमासंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि दर्शनानि, संज्ञिनः, आहारिणः, सकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५३०।

आहारिप्रमत्तसंयतानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः,

इसी प्रकार उन आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्तकालसंबंधी आलाप कहने पर उनके केवल अपर्याप्त प्ररूपणाओं को लेना चाहिए।

आहारक संयतासंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक देशसंयत गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यचगति और मनुष्यगति ये दो गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, संयमासंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेज, पद्म और शुक्ललेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व आदि के तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

आहारक प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप कहने पर—एक प्रमत्तसंयत गुणस्थान, संज्ञी-पर्याप्त और संज्ञी-अपर्याप्त ये दो जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, छहों अपर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग,

### नं. ५२९ आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के अपर्याप्त आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पुं.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	२ औ.मि. वै.मि.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ का. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ५३० आहारक संयतासंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ पुं.	१ सं.प.	६	१०	४	२ ति. म.	१ पुं.	१ पुं.	९ म.४. व.४ औ.१	३	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ देश	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

चत्वारि ज्ञानानि, त्रयः संयमाः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः भव्यसिद्धिकाः, त्रीणि सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५३१।

अत्र प्रमत्तसंयते पर्याप्तापर्याप्ता आलापा वक्तव्याः। एवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

आहारि-अप्रमत्तसंयतानां भण्यमाने तिस्रः संज्ञाः, नव योगाः, शेषाः प्रमत्तगुणस्थानवद् वक्तव्याः\*५३२।

आहारि-अपूर्वकरणानां भण्यमाने तिस्रः संज्ञाः, नव योगाः, द्वौ संयमौ, भावेन शुक्ललेश्याः, द्वे सम्यक्त्वे,

औदारिककाययोग और आहारककाययोगद्विक ये ग्यारहयोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के चार ज्ञान, सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

यहाँ आहारक जीवों के प्रमत्तसंयत गुणस्थान में पर्याप्त और अपर्याप्तकालसंबन्धी आलाप भी कहना चाहिए। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

आहारक अप्रमत्तसंयत जीवों के आलापवर्णन में तीन संज्ञाएँ ( आहार संज्ञा के बिना ) होती हैं, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ) होते हैं तथा शेष सभी प्ररूपणाएँ प्रमत्तसंयत गुणस्थान के समान ही जानना चाहिए।

आहारक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीवों के आलापों में उनके तीन संज्ञाएँ ( आहारसंज्ञा के बिना ) होती हैं, नौ योग ( चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिककाययोग ) होते हैं, दो संयम होते हैं, भाव से शुक्ललेश्या होती है, दो सम्यक्त्व ( औपशमिक और क्षायिक ) होते हैं। शेष सभी प्ररूपणा अप्रमत्त के समान हैं।

नं. ५३१

आहारक प्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र.	२ सं.प. सं.अ.	६ प. ६ अ.	१० ७	४	१ म.	१ पं.	१ पं.	११ म.४ व.४ औ.१ आ.२	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

नं. ५३२

आहारक अप्रमत्तसंयत जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ कुप्र.	१ सं.प.	६	१०	३ विना. आहा.	१ म.	१ पं.	१ पं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः	३ सामा. छेदो. परि.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.३ शुभ	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

शेषा अप्रमत्तगुणस्थानवद् ज्ञातव्याः\*५३३।

आहारि-प्रथमानिवृत्तिकरणानां भण्यमाने द्वे संज्ञे, द्वौ संयमौ, शेषा अपूर्वकरणवद् वक्तव्याः\*५३४।

शेषचतुर्णां अनिवृत्तिकरणानां ओषधवद् भंगाः कथयितव्याः।

आहारि-सूक्ष्मसांपरायिकानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, सूक्ष्मपरिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पंचेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, सूक्ष्मलोभकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा\*५३५।

आहारक अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती प्रथम भागवर्ती जीवों के आलापवर्णन में दो संज्ञाएँ (मैथुन और परिग्रह) होती हैं, दो संयम (सामायिक, छेदोपस्थापना) होते हैं। शेष सभी प्ररूपणा अपूर्वकरण गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के शेष चार भागों के आलाप ओघालाप के समान होते हैं।

आहारक सूक्ष्मसांपरायी जीवों के आलाप कहने पर—एक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान, एक

### नं. ५३३ आहारक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अ. सं.प.	१	६	१०	३ विना. आहा.	१ म.	१ पिं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः.	२ सामा. छेदो.	३ पुं. पुं. पुं.	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ५३४ आहारक अनिवृत्तिकरण के प्रथम भागवर्ती जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ प्र. पुं. पुं.	१ सं.प.	६	१०	२ मै. परि.	१ म.	१ पिं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	३	४	४ मति. श्रुत. अव. मनः.	२ सामा. छेदो.	३ पुं. पुं. पुं.	द्र.६ भा.१ शु.	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

### नं. ५३५ आहारक सूक्ष्मसाम्परायी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सूक्ष्म.	१ सं.प.	६	१०	१ पिं.	१ म.	१ पिं.	१ पुं.	९ म.४ व.४ औ.१	० अप्रा.	१ पुं.	४ मति. श्रुत. अव. मनः.	१ सूक्ष्म.	३ के.द. विना.	द्र.६ भा.१ शुक्ल	१ भ.	२ औप. क्षा.	१ सं.	१ आहार	२ साकार अनाकार

आहारि-उपशान्तकषायाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, उपशान्तपरिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, उपशान्तलोभकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३५३६</sup>।

आहारि-क्षीणकषायाणां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, नव योगाः, अपगतवेदः, अकषायः, चत्वारि ज्ञानानि, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण षड् लेश्याः भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्तवं, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>३५३७</sup>।

संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, सूक्ष्म परिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, अपगतवेद, सूक्ष्मलोभकषाय, आदि के चार ज्ञान, सूक्ष्म साम्परायिक शुद्धिसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

आहारक उपशान्तकषायी जीवों के आलाप कहने पर—एक उपशान्तकषाय गुणस्थान, एक संज्ञी-पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, दशों प्राण, उपशान्त परिग्रहसंज्ञा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, चारों मनोयोग, चारों वचनयोग और औदारिककाययोग ये नौ योग, अपगतवेद, उपशान्तलोभकषाय, आदि के चार ज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ल लेश्या, भव्यसिद्धिक, औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यक्त्व, संज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

आहारक क्षीणकषायी जीवों के आलाप कहने पर—एक क्षीणकषाय गुणस्थान, एक

नं. ५३६

आहारक उपशान्तकषायी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	०	१	१	१	९	०	०	४	१	३	द्र.६	१	२	१	१	२
उ.	सं.प.			पं.प.	म.	पं.	पं.	म.४ व.४ औ.१	अपा.	क.प.	मति. श्रुत. अव. मनः	यथा.	के.द. विना.	भा.१ शुक्ल.	भ.	औप. क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

नं. ५३७

आहारक क्षीणकषायी जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	०	१	१	१	९	०	०	४	१	३	द्र.६	१	१	१	१	२
क्षीण.	सं.प.			क्षीणपं.	म.	पं.	पं.	म.४ व.४ औ.१	अपा.	अकषा.	मति. श्रुत. अव. मनः	यथा.	के.द. विना.	भा.१ शुक्ल.	भ.	क्षा.	सं.	आहार	साकार अनाकार

अनाहारिणां भण्यमाने सन्ति पञ्च गुणस्थानानि, अतीतगुणस्थानमप्यस्ति, अष्टौ जीवसमासाः अतीतजीव-  
समासोऽप्यस्ति, षट् पर्याप्तयः षडपर्याप्तयः, पञ्च पर्याप्तयः, पञ्चापर्याप्तयः, चतस्रः पर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः  
अतीतपर्याप्तिरप्यस्ति, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः, षट् प्राणाः, पञ्च प्राणाः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, द्वौ प्राणौ एकः

अनाहारक जीवों के सामान्य आलाप कहने पर—मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, अविरत-सम्यग्दृष्टि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये पाँच गुणस्थान तथा अतीतगुणस्थान भी

## आहारक सयोगिकेवली जिन के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	हं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सयो.	२ प.अ.	६ प. ६ अ.	४ २	० क्षीणसं.	१ म.	१ पेणं	१ त्रसं.	६ म.२ व.२ औ.२	० अपगं.	० अकषा.	१ केव.	१ यथा.	१ के.द.	६ भा.१ शुक्ल	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	१ आहार	२ साकार अनाकार यु.उ.



अनाहारिमिथ्यादृष्टीना भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, सप्त जीवसमासाः, षडपर्याप्तयः पञ्चापर्याप्तयः चतस्रोऽपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः सप्त प्राणाः षट् प्राणाः पञ्च प्राणाः, चत्वारः प्राणाः त्रयः प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्च जातयः, षट् कायाः, कर्मणकाययोगः, त्रयो वेदाः चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे

अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, सात अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, सात प्राण, छह प्राण, पाँच प्राण, चार प्राण, तीन प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पाँचो जातियाँ, छहों

## अनाहारक जीवों के सामान्य आलाप

[illegible]

दर्शने, द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, मिथ्यात्वं, संज्ञिनोऽसंज्ञिनः, अनाहारिणः साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*५४०</sup>।

अनाहारिसासादनसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रःसंज्ञाः, तिस्रो गतयः, नरकगतिर्नास्ति, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, कर्मणकाययोगः, त्रयो वेदाः, चत्वारः कषायाः, द्वे अज्ञाने, असंयमः, द्वे दर्शने, द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, सासादनसम्यक्त्वं, संज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*५४१</sup>।

अनाहारि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षडपर्याप्तयः, सप्त प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतयः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, कर्मणकाययोगः, स्त्री वेदेन विना द्वौ वेदौ, चत्वारः, कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, असंयमः, त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन षड् लेश्याः, भव्यसिद्धिकाः त्रीणि

काय, कर्मणकाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के दो अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या, भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यात्व, संज्ञिक, असंज्ञिक, आहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर—एक सासादनमिथ्यागुणस्थान, एक संज्ञी-अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, तिर्यच, मनुष्य और देव ये तीन गतियाँ होती हैं, किन्तु यहाँ पर नरकगति नहीं है। पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, कर्मणकाययोग, तीनों वेद, चारों कषाय, आदि के दो अज्ञान, असंयम, आदि के दो दर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या, भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, सासादनसम्यक्त्व, संज्ञिक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

### नं. ५४०

### अनाहारक मिथ्यादृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ मि.	७ अप.	६ अ.	७ ७ ६ ५ ४ अ.	४ ४ ४ ४ ३		५ ६	६	१ कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.१ शु. भा.६	२ भ. अ.	१ मि.	२ सं. असं.	१ अनाहार	२ साकार अनाकार

### नं. ५४१

### अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सा.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	३ ति. म. दे.	१ इं. १ १	१ १ १	१ कर्म.	३	४	२ कुम. कुश्रु.	१ असं.	२ चक्षु. अच.	द्र.१ शु. भा.६	१ भ.	१ १ १	१ सं.	१ अनाहार	२ साकार अनाकार

सम्यक्त्वानि, संज्ञिनः, आहारिणः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोपयुक्ता वा<sup>\*५४२</sup>।

अनाहारि-सयोगिकेवलानां भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एकोजीवसमासः, षडपर्याप्तयः, द्वौ प्राणौ, मनोवचनोच्छ्वासप्राणा न सन्ति, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, कार्मणकाययोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण शुक्ललेश्या षट् लेश्या वा, भावेन शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनः नैवासंज्ञिनः, शरीरनिष्पादनार्थं नोक्तमपुद्गलाभावादानाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्ति<sup>\*५४३</sup>।

अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप कहने पर — एक अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थान एक संज्ञी-अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, सात प्राण, चारों संज्ञाएँ, चारों गतियाँ, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, कार्मणकाययोग, स्त्रीवेद के बिना दो वेद, चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान, असंयम, आदि के तीन दर्शन, द्रव्य से शुक्ललेश्या, भाव से छहों लेश्याएँ, भव्यसिद्धिक, औपशमिकसम्यक्त्व आदि तीन सम्यक्त्व, संज्ञिक, अनाहारक, साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी होते हैं।

अनाहारक सयोगिकेवलीजिन के आलाप कहने पर — एक तेरहवाँ गुणस्थान, एक अपर्याप्त जीवसमास, छहों अपर्याप्तियाँ, दो प्राण (आयु और कायबल) होते हैं, किन्तु यहाँ पर मनोबल, वचन बल और स्वासोच्छ्वास प्राण नहीं हैं। क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, कार्मणकाययोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, केवलदर्शन, द्रव्य से शुक्ल अथवा छहों लेश्याएँ, भाव से शुक्ललेश्या, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित, शरीर निष्पादन के लिए आने वाली नोक्तमवर्गणाओं के अभाव हो जाने से अनाहारक, साकार और अनाकार

नं. ५४२

अनाहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ क्षी.	१ सं.अ.	६ अ.	७	४	४	१ पुं.	१ पुं.	१ कर्म.	२ पु. न.	४	३ मति. श्रुत. अव.	१ असं.	३ के.द. विना.	द्र.१ शु. भा.६	१ भ.	३ औप. क्षा. क्षायो.	१ सं.	१ अना.	२ साकार अनाकार

नं. ५४३

अनाहारक सयोगिकेवली जिन के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ सं.	१ अप.	६ अप.	२	० क्षी.	१ म.	१ पुं.	१ पुं.	१ कर्म.	० अपुं.	० अपुं.	१ केव.	१ यथा.	१ के.द.	द्र.१ शु. अ.६ भा.१ शु.	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	१ अना.	२ साकार अनाकार यु.उ.

अनाहारि-अयोगिकेवलिनं भण्यमानेऽस्त्येकं गुणस्थानं, एको जीवसमासः, षट् पर्याप्तयः, एकः प्राणः, क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, अयोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्येण षड् लेश्याः, भावेन अलेश्या, भव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं, नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा<sup>\*५४४</sup>।

अनाहारि-सिद्धानां भण्यमाने सन्ति अतीतगुणस्थानानि, अतीतजीवसमासाः, अतीतपर्याप्तयः, अतीतप्राणाः, क्षीणसंज्ञा, सिद्धगतिः, अतीतजातिः, अकायः, अयोगः, अपगतवेदः, अकषायः, केवलज्ञानं, नैव संयमो नैवासंयमो नैव संयमासंयमः, केवलदर्शनं, द्रव्यभावाभ्यां अलेश्या, नैव भव्यसिद्धिका नैवाभव्यसिद्धिकाः, क्षायिकसम्यक्त्वं नैव संज्ञिनो नैवासंज्ञिनः, अनाहारिणः, साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा भवन्ति<sup>\*५४५</sup>।

इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

**विशेषार्थ**—ऊपर अनाहारक सयोगकेवलियों के लेश्या आलाप का कथन करते समय सभी प्रतियों में “द्व्येण छ लेस्साओ” इतना ही पाठ पाया जाता है परंतु पूर्व में कार्मणकाययोगी सयोगकेवली के आलाप बतलाते समय द्रव्य से शुक्ललेश्या अथवा छहों लेश्याएँ कहीं गई हैं, इसलिए यहाँ पर भी उसी के अनुसार कथन किया गया है।

अनाहारक अयोगिकेवलीजिन के आलाप कहने पर—एक चौदहवाँ गुणस्थान, एक पर्याप्त जीवसमास, छहों पर्याप्तियाँ, एक प्राण ( आयु ), क्षीणसंज्ञा, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम, केवलदर्शन, द्रव्य से छहों लेश्याएँ, भाव से अलेश्या, भव्यसिद्धिक, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञिक और असंज्ञिक इन दोनों विकल्पों से रहित, अनाहारक, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

नं. ५४४

अनाहारक अयोगिकेवली जिन के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१ अति.	१ प.	६ आयु.	१ आयु.	० क्षीणसं.	१ म.	१ प्रा.	१ प्रा.	० अयोग.	० अपग.	० अकषा.	१ केव.	१ यथा.	१ के.द.	६ भा.० अले.	१ भ.	१ क्षा.	० अनु.	१ अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

नं. ५४५

अनाहारी सिद्ध जीवों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
० अती. नं.	० अती. ज्ञि.	० अती. प.	० अती. प्रा.	० क्षीणसं.	० सिद्धग.	० अती. ज्ञि.	० अकाय.	० अजोग.	० अपग.	० अकषा.	१ केव.	० अनु.	१ के.द.	० अलेश्य.	० अनु.	१ क्षा.	० अनु.	१ अनाहार	२ साकार अनाकार यु.उ.

एवं आहारमार्गणायां एकोनत्रिंशत्कोष्ठकानि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गतालापाधिकारे  
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां आहार-  
मार्गणानाम् चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अनाहारक सिद्ध जीवों के आलाप कहने पर—अतीत गुणस्थान, अतीतजीवसमास, अतीतपर्याप्ति, अतीतप्राण, क्षीणसंज्ञा, सिद्धगति, अतीतजाति, अकाय, अयोग, अपगतवेद, अकषाय, केवलज्ञान, संयम, असंयम और संयमासंयम विकल्पों से रहित, केवलदर्शन, द्रव्य और भाव से अलेश्य, भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक विकल्पों से रहित, क्षायिक सम्यक्त्व, संज्ञिक और असंज्ञिक विकल्पों से अतीत, अनाहारक, साकार और अनाकार इन दोनों उपयोगों से युगपत् समन्वित होते हैं।

इस प्रकार आहारमार्गणा में ३९ कोष्ठक पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत आलाप अधिकार में गणिनी ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।



इतो विस्तरः—आसु विंशतिप्ररूपणासु सिद्धानां केवलज्ञानं, केवलदर्शनं, क्षायिकसम्यक्त्वं, युगपत्साकारानाकारो-  
पयोगौ चेति चतस्रः प्ररूपणाः सन्ति। पञ्चानां गतीनां मन्यमाने सिद्धगतिश्चापि विद्यते। शेषाः प्ररूपणा नञ्समासैरेवेति  
ज्ञातव्या भवन्ति।

यद्यपि संसारिणां जीवानां सर्वाः प्ररूपणाः सन्ति तथापि निश्चयनयेन संसारिणोऽपि सिद्धाः एव।  
उक्तं च श्रीकुन्दकुन्ददेवेन—

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।

जरमरणविप्पमुक्का अट्टगुणालंकिया जेण॥४६॥ नियमसार )

इत्थमेव मया निरञ्जनस्तुतौ लिखितम्—तथाहि—

द्रव्यार्थिकनयात् शश्व-दस्पृष्टः कर्मभिर्मलैः।

सोऽयं सदाशिवः शुद्धः, परमात्मा निरञ्जनः॥५॥

पारिणामिकभावेन, शश्वत्परिणतत्वतः।

सहजज्ञानदृग्वीर्य-सौख्यरूपः निरञ्जनः॥६॥

चतुर्गतिच्युतः पञ्चे-न्द्रियैः शून्योऽप्यकायिकः।

अयोगो वेदनिर्मुक्तः, निष्कषायो निरञ्जनः॥७॥

इसी को विस्तार से कहा जाता है—

इन बीस प्ररूपणाओं में सिद्ध जीवों के केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्वं एवं  
युगपत् साकार और अनाकार उपयोग ये चार प्ररूपणाएँ ही मुख्यरूप से होती हैं। पाँचवीं गति  
की अपेक्षा सिद्धगति भी उनके मानी जा सकती है, किन्तु शेष सभी प्ररूपणाएँ नञ् समास के  
द्वारा जानी जाती हैं अर्थात् अन्य प्ररूपणाएँ उनमें नहीं होती हैं।

यद्यपि संसारी जीवों के सभी प्ररूपणाएँ होती हैं फिर भी निश्चयनय से संसारी जीव भी  
सिद्धों के समान होते हैं।

श्री कुन्दकुन्ददेव ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—सिद्ध भगवान जैसे हैं, भव के आश्रित हुए संसारी जीव भी वैसे ही हैं। जिस हेतु  
से ये जरा, मरण और जन्म से रहित हैं उसी से ये आठ गुणों से अलंकृत हैं॥४७॥ ( नियमसार )

इसी प्रकार के भाव मैंने निरंजनस्तुति में भी लिखे हैं। उसे देखें—

श्लोकार्थ—कर्ममल से सहित संसारी आत्मा भी द्रव्यार्थिक नय से सदा अस्पृष्ट है इसीलिए  
वह सदाशिव, शुद्ध, निरंजन—कर्माञ्जन से रहित परमात्मा है॥५॥

पारिणामिक भाव के द्वारा शुद्ध जीवरूप से परिणत होता हुआ वही आत्मा सहज ज्ञान,  
दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनंतचतुष्टयमयी निरंजन परमात्मा कहलाता है॥६॥

द्रव्यार्थिक नय से आत्मा चतुर्गति के भ्रमण से रहित, पाँचों इन्द्रियों से शून्य, अकायिक—  
काय से रहित, योग से रहित, वेद से रहित, कषाय से रहित निरंजन परमात्मा है॥७॥

यस्त्र्यज्ञानचतुर्ज्ञानैः, शून्यः कैवल्यज्ञानभाक्।  
 सप्तसंयमनिर्मुक्तः, स्वस्मिन् तिष्ठन् निरञ्जनः॥८॥  
 दर्शनत्रयशून्योऽपि, कैवल्यद्वष्टिमानयं।  
 अलेश्यो भव्याभव्यत्व-मुक्तश्चायं निरञ्जनः॥९॥  
 कुट्टकसासनमिश्राद्यैः, शून्यः क्षायिकदृष्टिमान्।  
 संज्ञ्यसंज्ञिद्वयैर्हीनो - ज्ञाहारोऽसौ निरञ्जनः॥१०॥  
 सर्वैतन्मार्गणाभिर्यः, नहि मृग्यः स्वयंस्थितः।  
 गतिशून्यः स्थिरः सिद्धोऽतीन्द्रियोऽयं निरञ्जनः॥११॥  
 पर्याप्तिप्राणसंज्ञाभ्यः, शून्योऽपि चेतनान्वितः।  
 गुणस्थानसमासाद्यैः, गतश्चायं निरञ्जनः॥१२॥  
 अवर्णोऽस्पर्शमानात्मा-रसोऽगंधोऽप्यमूर्तिकः।  
 तथाप्ययं स्वचैतन्य - धातुमूर्तिर्निरञ्जनः॥१३॥  
 अनन्तदर्शनज्ञान-सौख्यवीर्यान्वितः स्वयं।  
 परमानन्दसंतृप्तः, परमाल्हादनिर्वृतः॥१४॥  
 पूर्णज्ञानैकज्योतिर्मान्, स्वात्मसौख्यैकसागरः।  
 तनुमात्रोऽपि सन् सर्व-व्यापी नित्यो निरञ्जनः॥१५॥

इसी प्रकार आत्मा निश्चयनय से तीनों अज्ञान एवं चार ज्ञानों से रहित तथा केवलज्ञानमयी, सातों संयम से रहित, निज आत्मा में स्थित होता हुआ निरंजन परमात्मा है॥८॥

यह आत्मा तीन प्रकार के दर्शनोपयोग से रहित होते हुए भी केवलदर्शन से समन्वित है, लेश्या रहित है, भव्यत्व-अभव्यत्व से मुक्त निरंजन परमात्मा है॥९॥

यह आत्मा मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र आदि भावों से शून्य एवं क्षायिकसम्यक्त्व से सहित है तथा संज्ञी-असंज्ञीपने से रहित एवं अनाहारक निरंजन परमात्मा है॥१०॥

यह आत्मा निश्चयनय से सभी (चौदह) मार्गणाओं के द्वारा खोजा नहीं जाने योग्य होने से स्वयं में स्थित है, गति से शून्य होने से स्थिर, सिद्ध, निरंजन परमात्मा है॥११॥

वह चेतन आत्मा पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा से शून्य होते हुए भी चैतन्यगुण से समन्वित है। गुणस्थान, जीवसमास आदि से रहित वह निरंजन परमात्मा है॥१२॥

वह आत्मा वर्ण, स्पर्श, रस, गंध से रहित अमूर्तिक है फिर भी स्वचैतन्य धातु से निर्मित वह निरंजन परमात्मा है॥१३॥

वह आत्मा अनंतदर्शन, ज्ञान, सौख्य और वीर्य से समन्वित परमानंद से संतृप्त एवं परम आल्हाद से निर्मित निरंजन परमात्मा है॥१४॥

वह आत्मा पूर्णज्ञानमय एक ज्योति से सहित आत्मसुख का सागर है, अपने शरीर प्रमाण रहते हुए भी सर्वव्यापी नित्य निरंजन परमात्मा है॥१५॥

व्यक्तरूपेण लोकाग्रे, तिष्ठन् कर्ममलैश्च्युतः।

शक्तिरूपेण देहेऽस्मिन्, तिष्ठन् देवो निरञ्जनः॥१६॥

भगवन्! त्वत्प्रसादेन, शक्तिर्भूयान्ममेदृशी।

स्वस्य स्वस्मै स्वयं स्वस्मिन्, ध्यायन् स्वं स्वेन स्यां सुखी॥१७॥

यद्यपीदं मनुष्यशरीरं सप्तधातूपधातुभिर्मलिनं नश्वरमपि तथाप्यनेनैव ज्ञानशरीरी निर्मल आत्मा लप्स्यते। तथाहि—

अधिरेण थिरा मलिणेण णिम्मलं, णिग्गुणेण गुणसारं।

काएण जा विढप्पइ, सा किरिया किं ण कायव्वा<sup>१</sup>॥

अतएव स्वशुद्धात्मनां सदैव चिन्तनं मननं ध्यानमभ्यासं च विधातव्यं। यावच्छुद्धात्मध्यानं न लभेत तावत्तस्य भावनां कुर्वन् सन् परमात्मानं प्रति अनुरागो विधेयस्तेनापि कर्माणि विनश्यति।

प्रोक्तं च श्रीयोगीन्द्रदेवेन—

जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ, परमप्पइ अणुराउ।

अग्गिकणी जिम कट्ठगिरी, डहइ असेसु वि पाउ<sup>२</sup>॥११४॥

यह आत्मा व्यक्तरूप से लोक के अग्र भाग पर—सिद्धशिला पर रहता हुआ कर्ममल से पूर्णतः रहित है तथा शक्तिरूप से शरीर में रहता हुआ निरञ्जन देव-परमात्मा है॥१६॥

हे भगवन् ! आपकी कृपा प्रसाद से मुझमें ऐसी शक्ति जागृत होवे कि निज को निज के द्वारा निज के लिए निज में स्थिर होकर परमसुखी हो सकूँ अर्थात् अनन्तसुख को प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होवे॥१७॥

यद्यपि यह मनुष्य शरीर सात प्रकार की धातु-उपधातुओं से मलिन एवं नश्वर है फिर भी इसी शरीर के द्वारा ज्ञानशरीरी निर्मल आत्मा की प्राप्ति होती है। जैसा कि कहा भी है—

**श्लोकार्थ**—इस क्षणभंगुर शरीर से स्थिर मोक्षपद की सिद्धि करनी चाहिए, यह शरीर मलिन है फिर भी इससे निर्मल वीतरागी आत्मा की सिद्धि करना तथा यह शरीर ज्ञानादि गुणों से रहित है किन्तु इसके निमित्त से सारभूत ज्ञानादिगुण सिद्ध करने योग्य हैं। इस शरीर से तप-संयमादि का साधन होता है और तप-संयमादि क्रिया से सारभूत गुणों की सिद्धि होती है। जिस क्रिया से ऐसे गुण सिद्ध हो वह क्रिया क्यों नहीं करनी चाहिए अर्थात् अवश्य करना चाहिए।

इसलिए अपनी शुद्धात्मा का सदैव चिन्तन, मनन, ध्यान एवं उसी का अभ्यास करना चाहिए। जब तक शुद्धात्मध्यान की उपलब्धि नहीं होती है तब तक उसकी भावना—श्रद्धा करते हुए परमात्मा के प्रति अनुराग रखना चाहिए, उससे भी कर्मों का नाश होता है।

जैसा कि श्रीयोगीन्द्रदेव ने कहा भी है—

**श्लोकार्थ**—यदि अर्धनिमिषमात्र के लिए भी कोई भव्य प्राणी आत्मा के प्रति अनुराग करता है तो जिस प्रकार अग्नि की एक चिनगारी भी ईंधन के पर्वत—बड़े भारी लकड़ी के समूह को जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार उनके सम्पूर्ण पाप क्षणमात्र में जलकर नष्ट हो जाते हैं॥११४॥

१. जिनस्तोत्र संग्रह पृ. २९४-२९५ (वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला से प्रकाशित)। २. परमात्म प्रकाश ग्रन्थ में, टीका में पृ. २६३।

३. परमात्म प्रकाश दोहकसूत्र ११४, पृ. १०५-१०६।



तथाहि-ऋद्धिगौरव-रसगौरव-कवित्व-वादित्व-गमकत्व-वाग्मि-चतुर्विधशब्दगौरवस्वरूपप्रभृति-समस्तविकल्पजालत्यागरूपेण महावातेन प्रज्वलिता निजशुद्धात्मध्यानअग्निगणिका स्तोकाग्निकेन्धन-राशि-मिवान्तर्मुहूर्तेनापि चिरसंचितकर्मराशिं दहतीति। अत्रैवं विधं शुद्धात्मध्यानसामर्थ्यं ज्ञात्वा तदेव निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः।

तात्पर्यमेतत्-व्यवहारनयेन सर्वेऽपि संसारिणः चतुर्गतिषु परिभ्राम्यन्ति अशुद्धाः विंशतिप्ररूपणाभिर्मुग्धाः सन्ति, किन्तु निश्चयनयेन द्रव्यार्थिकनयेन शक्तिरूपेण वा शुद्धाः सिद्धा ज्ञानदर्शनमयाः सन्तीति ज्ञात्वा इमं सत्प्ररूपणान्तर्गत-विंशतिप्ररूपणाधिकारग्रन्थं पठित्वात्तरौद्रध्यानं स्वात्मनोऽपसार्य संप्रति दुष्कर्मकाले धर्म्यध्यानमवलम्बनीयं। तथा च शुक्लध्यानरूपं स्वशुद्धपरमात्मध्यानं कदा मे भवेदिति भावनां कारं कारं तस्यापि चिन्तनं मननं निरन्तरं कर्तव्यम्।

अत्र पर्यन्तं द्वितीयमहाधिकारे चतुर्दशमार्गणासु अष्टादशोत्तरशतानि संदृष्ट्यो दर्शिताः सन्ति।

अर्हत्सिद्धमुनींश्चापि, धृत्वा हृदि सरस्वतीम् ।

श्रीऋषभेश्वरं भक्त्या, नौमि ज्ञानमतीश्रियै॥१॥

तीर्थेशां श्रीविहारे या, यात्यग्रेऽग्रे स्वभूतितः।

हस्तधृत्यद्यया लक्ष्म्या, सैषा जयतात् सरस्वती॥२॥

इसी को अन्य रूप से भी कहा है—ऋद्धि गौरव, रस गौरव तथा कवित्व, वादित्व, गमकत्व और वाग्मित्वरूप चार प्रकार के शब्दगौरव आदि समस्त विकल्पजाल के त्यागरूप महावायु से प्रज्वलित निजशुद्धात्मा के ध्यानरूप अग्निगणिका से दहन हुई ईंधनराशि के समान अन्तर्मुहूर्त के द्वारा भी चिरकाल से संचित कर्मराशि को जला देता है—नष्ट कर देता है। यहाँ इस प्रकार के शुद्धात्मध्यान की सामर्थ्य को जानकर निरन्तर उसी की भावना करना चाहिए ऐसा भावार्थ है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि व्यवहारनय से सभी संसारी जीव चारों गतियों में भ्रमण करते रहते हैं, अशुद्ध हैं और बीस प्ररूपणाओं के द्वारा वे मृग्य—अन्वेषण किये जाते हैं किन्तु निश्चयनय से, द्रव्यार्थिक नय से अथवा शक्तिरूप से वे सभी जीव शुद्ध हैं, सिद्ध के समान ज्ञान-दर्शन से समन्वित हैं ऐसा जानकर इस सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत “बीस प्ररूपणाधिकार” ग्रन्थ को पढ़कर अपनी आत्मा के साथ अनादिकाल से लगे हुए आर्त्त-रौद्र ध्यानों (अशुभ ध्यानों को) को दूर करके इस दुष्कर्म पंचमकाल में धर्मध्यान का अवलम्बन लेना चाहिए तथा शुक्लध्यानरूप अपनी शुद्धात्मा—परमात्मा का ध्यान मुझे कब शीघ्र प्राप्त हो ऐसी भावना बारम्बार करते हुए उसका भी निरन्तर चिन्तन-मनन करना चाहिए।

यहाँ तक द्वितीय महाधिकार में चौदह मार्गणाओं में एक सौ अठारह (११८) संदृष्टियाँ (कोष्ठक) प्रदर्शित की गई हैं।

श्लोकार्थ—अर्हन्त, सिद्ध परमेष्ठी को, मुनियों को तथा सरस्वती माता को हृदय में धारण करके मैं ज्ञानमती (केवलज्ञान) लक्ष्मी की प्राप्ति हेतु श्री ऋषभेश्वर भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार करती हूँ॥१॥

तीर्थकर भगवन्तों के श्रीविहार में जो उनके आगे-आगे अपनी विभूति के समान गमन करती हैं तथा जिनके साथ हाथ में कमल धारण करने वाली लक्ष्मी देवी भी हैं ऐसी वे सरस्वती

आदिदेवो महादेवः, कुर्यात् जगति मंगलम्।  
अहिंसा शासनं चापि, जीयात् स्थेयाच्चिरं भुवि॥३॥

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीत-षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डे श्रीपुष्पदन्ताचार्यकृत-  
सत्प्ररूपणान्तर्गत-श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाधारेण विरचिते  
विंशतिप्ररूपणाधिकारे विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यचारित्र-  
चक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथम पट्टाधीशः  
श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्याजम्बूद्वीप-  
रचनाप्रेरिका-गणिनीज्ञानमतीकृत-  
सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां अयं  
चतुर्दशमार्गणाप्ररूपकः  
द्वितीयो महाधिकारः  
समाप्तः।

माता सदा जयशील होवें॥२॥

युग की आदि में जन्म लेने वाले श्री आदिनाथ भगवान् जो आदिदेव और महादेव — सबसे महान् कहे जाते हैं वे तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जगत में मंगल करें तथा उनका अहिंसामयी जैनशासन चिरकाल तक पृथ्वीतल पर स्थिर रहे, यही इस ग्रंथ को पूर्ण करते हुए मेरी हार्दिक भावना है एवं भगवान् आदिनाथ के श्रीचरणों में अनन्तशः नमन है॥३॥

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदन्त और भूतबली आचार्य प्रणीत  
श्री षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रथमखण्ड में श्रीपुष्पदन्ताचार्यकृत  
सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा विरचित धवला  
टीका के आधार से रचित बीस प्ररूपणा नामक अधिकार  
में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती  
श्रीशांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टाधीश आचार्य  
श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप  
रचना निर्माण की प्रेरिका गणिनी  
ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिन्तामणि  
टीका में यह चौदहमार्गणा का  
प्ररूपण करने वाला  
द्वितीय महाधिकार  
समाप्त हुआ।



एवं गुणस्थानमार्गणयोर्द्वयोर्महाधिकारयोर्मिलित्वा अस्यां विंशतिप्ररूपणायां ग्रन्थे पञ्चचत्वारिंशदधिकपञ्चशतसंदृष्टः संपूर्ण जाताः।

षट् खण्डागमग्रन्थेऽस्मिन् सत्प्ररूपणान्तर्गता।  
 विंशप्ररूपणायास्तु, टीका चिन्तामणिर्मता॥१॥  
 पञ्चद्विपञ्चद्वयङ्केऽस्मिन्, वीराब्दे माघशुक्लके।  
 तिथौ बसंतपञ्चम्यां, टीकेयं पूर्णतामगात्॥२॥  
 हस्तिनागपुरं तीर्थं, शान्तिकुन्ध्वरजन्मभूः।  
 तांस्तां च संस्तुमो भक्त्या, श्रुतज्ञानवर्द्धिसिद्धये॥३॥

इस प्रकार गुणस्थान और मार्गणा इन दोनों महाधिकारों में मिलकर उसकी बीस प्ररूपणाओं के द्वारा ग्रंथ में पाँच सौ पैतालिस ( ५४५ ) संदृष्टियाँ पूर्ण हुई हैं।

**श्लोकार्थ** — इस षट्खण्डागम ग्रंथ में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत बीस प्ररूपणाओं से समन्वित यह चिन्तामणि टीका — सिद्धान्तचिन्तामणि नामक संस्कृत टीका है॥१॥ वीर निर्वाण संवत् २५२५ की माघ शुक्ला पंचमी — बसंतपंचमी तिथि के दिन यह टीका पूर्ण हुई है॥२॥

तीर्थकर श्री शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ भगवान की जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थ को अपने श्रुतज्ञान की सिद्धि हेतु भक्तिपूर्वक मेरा नमस्कार है॥३॥

**भावार्थ** — ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर जो तीन तीर्थकरों के चार-चार कल्याणकों से पवित्र है वहीं जम्बूद्वीप रचना निर्माण के कारण वह विश्वप्रसिद्ध तीर्थ के रूप में प्रख्यात हो चुका है। उसी जम्बूद्वीपस्थल की रत्नत्रयनिलय वसतिका में अपने संघ के साथ प्रवास के मध्य पूज्य गणिनीप्रमुखश्री ज्ञानमती मातजी ने षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका लेखन की श्रृंखला में सत्प्ररूपणा के आलाप अधिकार वाले इस ग्रंथ ( षट्खण्डागम भाग-२ ) को परिपूर्ण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक हस्तिनापुर तीर्थ की वंदना करके श्रुतज्ञान की वृद्धि के साथ केवलज्ञान प्राप्ति की भावना को व्यक्त किया है।

वीर निर्वाण संवत् २५२२ ई. सन् १९९५ की शरदपूर्णिमा तिथि को पूज्य माताजी ने मेरे नम्र निवेदन पर षट्खण्डागम ग्रंथ के सूत्रों पर संस्कृत टीका लेखन का कार्य प्रारंभ किया था। प्रथम खण्ड की प्रथम पुस्तक “सत्प्ररूपणा” के १७७ सूत्रों की टीका लिखकर दिनांक २५ फरवरी १९९६ फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को पिड़ावा ( राजस्थान ) में पूर्ण किया था और आगे उन्होंने तब से लेकर अब तक चार खण्डों में निबद्ध १२ पुस्तकों की टीका लिख कर पूर्ण कर दी है किन्तु मेरे द्वारा इन ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद का कार्य अत्यन्त मन्दगति से होने के कारण पाठकों तक अभी मात्र प्रथम पुस्तक ही पहुँच सकी है जो कि अक्टूबर सन् १९९८ में प्रकाशित हुई थी।

उसके बाद अन्य कार्यकलापों में मेरा उपयोग लग गया किन्तु बार-बार गुरुप्रेरणा से पुनः सन् २००३ में भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर में संघ प्रवास के मध्य मैंने इस द्वितीय पुस्तक का अनुवाद करना शुरू किया और मुझे प्रसन्नता है कि २००३ का वर्ष समाप्त होते-होते यह अनुवाद कार्य पूर्ण करने में मुझे सफलता प्राप्त हुई है। तीर्थकर भगवान महावीर से मेरी यही

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थस्य प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणान्तर्गते श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाधारेण गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिन्तामणिटीकायां विंशतिप्ररूपणानामायं ग्रन्थः समाप्तः।

जैनं जयतु शासनम्

प्रार्थना है कि पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की अविरल लेखनी से शीघ्र ही षट्खंडागम के पाँचों खण्ड की १६ पुस्तकों की संस्कृत टीका निर्विघ्न पूर्ण हो तथा मुझे उन सभी ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की शक्ति प्राप्त हो ताकि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मेरे अत्यल्प श्रुतज्ञान में कुछ वृद्धि होवे।

इस प्रकार श्रीषट्खंडागम ग्रंथ के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा के अन्तर्गत श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका के आधार से गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में विंशतिप्ररूपणा नामक यह ग्रंथ समाप्त हुआ।

“जैनशासन सदा जयशील होवे”



## हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

दोहा

सरस्वती लक्ष्मी जहाँ, नितप्रति करें प्रणाम।  
 पुण्यमयी उस धाम का, समवसरण है नाम॥१॥  
 ऋषभदेव भगवान का, ज्ञानकल्याण महान।  
 इसीलिए सुमिरन हुआ, प्रभु का पावन धाम॥२॥  
 कुण्डलपुर तीरथ मिला, वीर जन्मस्थान।  
 जहाँ बैठ पूरण किया, मैंने यह शुभ काम॥३॥  
 फाल्गुन यदि ग्यारस तिथी, सोमवार दिन नाम।  
 वीर संवत् पच्चीस सौ, तीस का वर्ष महान॥४॥  
 चैत्यालय वृषभेश का, जहाँ मिली प्रभु छांव।  
 गुरु सन्निधि से मिल गया, मुझ मन को उत्साह॥५॥  
 गणिनी माता ज्ञानमति, हैं जग में विख्यात।  
 उनकी शिष्या चन्दनामति कृत यह अनुवाद॥६॥  
 मुझ मन की शुद्धि करे, करे ज्ञान की वृद्धि।  
 गुरु को अर्पण कर चहुँ, निज आत्म की शुद्धि॥७॥  
 आगे भी मिलती रहे, मुझको ऐसी शक्ति।  
 गुरु आज्ञा को पूर्ण कर, करूँ ज्ञान की भक्ति॥८॥  
 ज्ञानाराधन से रहे, जीवन मम परिपूर्ण।  
 चारित्राराधन करे, लक्ष्य स्वयं सम्पूर्ण॥९॥  
 मंगलमय यह ग्रंथ है, मंगलमय अनुवाद।  
 मंगलमय इसका पठन, देता अमृत स्वाद॥१०॥  
 ज्ञानामृत सम है नहीं, भोजन जग में अन्य।  
 इससे अक्षय तृप्ति हो, मिलता सौख्य अनन्य॥११॥



परिशिष्ट

## षट्खण्डागम-सक अनुशीलन

—गणिनी ज्ञानमती

सिद्धान् सिद्ध्यर्थमानम्य, सर्वास्त्रैलोक्यमूर्धगान् ।

इष्टः सर्वक्रियान्तेऽसौ, शान्तीशो हृदि धार्यते॥१॥

संपूर्ण अंग और पूर्वी के एक देश ज्ञाता, श्रुतज्ञान को अविच्छिन्न बनाने की इच्छा रखने वाले, महाकारुणिक भगवान् श्रीधरसेनाचार्य हुए हैं। उनके मुखकमल से पढ़कर सिद्धान्तज्ञानी श्री पुष्पदंत और श्रीभूतबलि आचार्य हुए हैं। उन्होंने 'अग्रायणीय पूर्व' नामक द्वितीय पूर्व के 'चयनलब्धि' नामक पांचवीं वस्तु के 'कर्मप्रकृति प्राभृत' नामक चौथे अधिकार से निकले हुए जिनागम को छह खण्डों में विभाजित करके 'षट्खण्डागम' यह सार्थक नाम देकर सिद्धान्त सूत्रों को लिपिबद्ध किया है।

**छह खंड के नाम**—१. जीवस्थान २. क्षुद्रकबंध ३. बंधस्वामित्वविचय ४. वेदनाखण्ड ५. वर्गणाखण्ड ६. महाबंध ये नाम हैं।

इनमें से पाँच खण्डों में छह हजार सूत्र हैं और छठे खण्ड में तीस हजार सूत्र हैं, ऐसा 'श्रुतावतार' ग्रंथ में लिखा है।

वर्तमान में मुद्रित सोलह पुस्तक — वर्तमान में छपी हुई सोलह पुस्तकों में पाँच खण्ड माने हैं। उनके सूत्रों की गणना छह हजार, आठ सौ, तीस हैं (६८३०)।

प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पचहत्तर सूत्र हैं। दूसरे खण्ड में पंद्रह सौ चौरानवे, तृतीय खण्ड में तीन सौ चौबीस, चतुर्थ खंड में पंद्रह सौ चौदह और पांचवें खण्ड में एक हजार तेईस हैं।  
 $२३७५+१५९४+३२४+१५१४+१०२३=६८३०$  हैं।

**मुद्रित सोलह पुस्तकों में पाँच खण्डों का विभाजन**—छपी हुई प्रथम पुस्तक से लेकर छह पुस्तकों तक प्रथम खण्ड है। सातवीं पुस्तक में द्वितीय खण्ड है। आठवीं पुस्तक में तृतीय खण्ड है। नवमी से लेकर बारहवीं ऐसे चार पुस्तकों में चतुर्थ खण्ड है और तेरहवीं से लेकर सोलहवीं तक चार पुस्तकों में पाँचवां खंड है।

**प्रथम खण्ड के विषय**—प्रथम खण्ड में आठ अनुयोगद्वार हैं एवं अंत में एक चूलिका अधिकार है, इस चूलिका के भी नव भेद हैं। **आठ अनुयोगद्वार के नाम**—१. सत्प्ररूपणा, २. द्रव्यप्रमाणानुगम, ३. क्षेत्रानुगम ४. स्पर्शनानुगम ५. कालानुगम ६. अन्तरानुगम ७. भावानुगम और ८. अल्पबहुत्वानुगम।

**चूलिका के नाम और भेद**—१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन चूलिका २. स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका ३. प्रथम महादण्डक ४. द्वितीय महादण्डक ५. तृतीय महादण्डक ६. उत्कृष्टस्थितिबंध ७. जघन्यस्थितिबंध ८. सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका और ९. गत्यागती चूलिका।

**छह पुस्तकों में प्रथम खण्ड का विभाजन**—प्रथम पुस्तक में सत्प्ररूपणा है, द्वितीय पुस्तक में

‘आलाप अधिकार’ नाम से इसी सत्प्ररूपणा का विस्तार है। तृतीय पुस्तक में द्रव्यप्रमाणानुगम है। चतुर्थ पुस्तक में क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम और कालानुगम का वर्णन है। पंचम पुस्तक में अंतरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम है। छठी पुस्तक में नव चूलिकायें हैं।

सातवीं पुस्तक में ‘क्षुद्रकबंध’ नाम से द्वितीय खण्ड है। आठवीं पुस्तक में ‘बंध स्वामित्वविचय’ नाम से तृतीय खण्ड है।

**चतुर्थ-पंचम खण्ड का विभाजन**—अग्रायणीय पूर्व के अर्थाधिकार चौदह हैं—१. पूर्वान्त २. अपरान्त ३. ध्रुव ४. अध्रुव ५. चयनलब्धि ६. अध्रुवसंप्रणिधान ७. कल्प ८. अर्थ ९. भौमावयाद्य १०. कल्पनिर्याण ११. अतीतकाल १२. अनागतकाल १३. सिद्ध और १४. बुद्ध<sup>१</sup>।

यहाँ ‘चयनलब्धि’ के अधिकार में ‘महाकर्म प्रकृतिप्राभृत’ संगृहीत है। उसमें चौबीस अनुयोगद्वार हैं—

१. कृति २. वेदना ३. स्पर्श ४. कर्म ५. प्रकृति ६. बंधन ७. निबंधन ८. प्रक्रम ९. उपक्रम १०. उदय ११. मोक्ष १२. संक्रम १३. लेश्या १४. लेश्याकर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ ह्रस्व १८. भवधारणीय १९. पुद्गलात् २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध २४. अल्पबहुत्व<sup>२</sup>।

### वेदनाखण्ड —

चतुर्थ वेदनाखण्ड में ९, १०, ११, १२ ऐसी ४ पुस्तकें हैं।

नवमी पुस्तक में उपर्युक्त २४ अनुयोगद्वारों में से प्रथम ‘कृति’ नाम का अनुयोग द्वार है।

दशवीं पुस्तक में वेदना अनुयोगद्वार का वर्णन करते हुए वेदना के १६ भेद किये हैं—

१. वेदानिक्षेप २. वेदानानयविभाषणता ३. वेदानानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान।

दसवीं पुस्तक में—आदि के चार अनुयोग द्वार हैं—

१. वेदानिक्षेप २. वेदानानयविभाषणता ३. वेदानानामविधान और ४. वेदनाद्रव्यविधान।

ग्यारहवीं पुस्तक में—वेदनाक्षेत्र विधान और वेदनाकाल विधान ये ५वें, छठे दो अनुयोग द्वार हैं।

बारहवीं पुस्तक में—‘वेदनाभाव विधान’ नाम के सातवें अनुयोग द्वार से ‘वेदना अल्पबहुत्व विधान’ तक ये १० अनुयोगद्वार हैं। इस प्रकार इन तीन ग्रंथों में ‘वेदना अनुयोगद्वार’ का ही वर्णन होने से यह चौथा खण्ड ‘वेदनाखण्ड’ नाम से विभक्त है।

**वर्गणाखण्ड**—तेरहवीं पुस्तक में—चौबीस अनुयोगद्वार में से स्पर्श, कर्म और प्रकृति इन तीसरे, चौथे और पाँचवें अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

चौदहवीं पुस्तक में—‘बंधन’ नाम के छठे अनुयोगद्वार का कथन है।

पंद्रहवीं पुस्तक में—निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय इन ७वें, ८वें, ९वें और १०वें अनुयोगद्वारा का कथन है।

सोलहवीं पुस्तक में—मोक्ष, संक्रम, लेश्या आदि से लेकर अल्पबहुत्व पर्यंत ११वें से २४वें तक १४ अनुयोगद्वारा वर्णित हैं।

इन चार ग्रंथों में वर्णित विषय 'वर्गणाखण्ड' नाम से कहा गया है।

संक्षेप में षट्खण्डागम के इन पांच खण्डों का १६ पुस्तकों में विभाजन एवं सूत्रसंख्या दी जा रही है।

### षट्खण्डागम ( १६ ग्रंथों-पुस्तकों में )

पुस्तक संख्या	विषय	सूत्र संख्या
<b>प्रथम खण्ड — जीवस्थान ( इसमें छह पुस्तकें हैं )</b>		
पुस्तक १	सत्प्ररूपणा ( १४ गुणस्थान, १४ मार्गणा )	१७७
पुस्तक २	आलाप अधिकार	०
पुस्तक ३	द्रव्यप्रमाणानुगम ( संख्या )	१९२
पुस्तक ४	क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम	६१९
पुस्तक ५	अंतर-भाव-अल्पबहुत्वानुगम	८७२
पुस्तक ६	जीवस्थान चूलिका ( नव चूलिकायें )	५१२
<b>द्वितीय खण्ड — क्षुद्रकबंध</b>		
पुस्तक ७	क्षुद्रकबंध	१५९४
<b>तृतीय खण्ड — बंधस्वामित्वविचय</b>		
पुस्तक ८	बंधस्वामित्वविचय	३२४
<b>चतुर्थ खण्ड — वेदना खण्ड</b>		
पुस्तक ९	'कृति' अनुयोगद्वारा ( वेदनाखंड )	७६
पुस्तक १०	'वेदना' के १६ भेदों में ४ भेद	२२४
पुस्तक ११	वेदना क्षेत्रविधान, वेदनाकालविधान	३७८
पुस्तक १२	वेदना के ७वें भेद से १६ तक वर्णन	५३३
<b>पंचम खण्ड — वर्गणा खण्ड</b>		
पुस्तक १३	स्पर्श, कर्म, प्रकृति अनुयोगद्वारा	२०६
पुस्तक १४	बंधन अनुयोग द्वारा	७९७
पुस्तक १५	निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय अनुयोगद्वारा	२०
पुस्तक १६	'मोक्ष' नाम के ११वें अनुयोगद्वारा से २४वें तक सूत्र नहीं है	०



### षट्खण्डागम की टीकायें

इस 'षट्खण्डागम' ग्रंथराज पर छह टीकायें लिखी गई हैं। ऐसा आगम में उल्लेख है। उनके नाम —

१. श्री कुन्दकुन्ददेव ने तीन खण्डों पर 'परिकर्म' नाम से टीका लिखी है जो कि १२ हजार श्लोक प्रमाण थी।

२. श्री शामकुंडाचार्य ने 'पद्धति' नाम से टीका लिखी है जो कि संस्कृत, प्राकृत और कन्नड़ मिश्र थी, ये पांच खण्डों पर थी और १२ हजार श्लोक प्रमाण थी।

३. श्री तुंबूलूर आचार्य ने 'चूड़ामणि' नाम से टीका लिखी। छठा खण्ड छोड़कर षट्खण्डागम और कषायप्राभृत दोनों सिद्धान्त ग्रंथों पर यह ८४ हजार श्लोक प्रमाण थी।

४. श्री समंतभद्रस्वामी ने संस्कृत में पांच खण्डों पर ४८ हजार श्लोक टीका लिखी।

५. श्री वप्पदेवसूरि ने 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नाम से टीका लिखी, यह पांच खण्डों पर और कषायप्राभृत पर थी एवं ६० हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत भाषा में थी।

६. श्री वीरसेनाचार्य ने छहों खण्डों पर प्राकृत-संस्कृत मिश्र टीका लिखी, यह 'धवला' नाम से टीका है एवं ७२ हजार श्लोक प्रमाण है।

वर्तमान में ऊपर कही हुई पांच टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं, मात्र श्री वीरसेनाचार्य कृत 'धवला' टीका ही उपलब्ध है जिसका हिंदी अनुवाद होकर छप चुका है। इस ग्रंथ को ताड़पत्र से लिखाकर और हिंदी अनुवाद कराकर छपवाने का श्रेय इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज को है। उनकी कृपा प्रसाद से हम सभी इन ग्रंथों के मर्म को समझने में सफल हुये हैं।

### सिद्धान्तचिन्तामणि टीका —

मैंने सरल संस्कृत भाषा में यह 'सिद्धान्तचिन्तामणि' नाम से टीका लिखी है। भगवान शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर 'जंबूद्वीप' तीर्थ पर आश्विन शुक्ला पूर्णिमा वीर नि. सं. २५२१ दिनांक ८-१०-१९९५ को मैंने यह टीका लिखना प्रारंभ किया था। अभी श्रावण शुक्ला सप्तमी वीर नि. सं. २५३०, दिनांक २२-८-२००४ को मैंने भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर 'नंदावर्त महल' तीर्थ पर तेरहवीं पुस्तक 'वर्गणाखण्ड' की टीका पूर्ण की है।

इस टीका को लिखने का मेरा भाव केवल 'षट्खण्डागम' महाग्रन्थराज के रहस्य को समझने का, अपने ज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि का एवं परिणामों की विशुद्धि का ही है।

यह 'षट्खण्डागम' कितना प्रामाणिक है, देखिए श्रीवीरसेनस्वामी के शब्दों में —

लोहाइरिये सगलोगं गदे आया-दिवायरो अत्थमिओ। एवं बारससु दिणयरेसु भरहखेत्तम्मि अत्थमिएसु सेसाइरिया सब्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसभूद-पेज्जदोस-महाकम्मपयडिपाहुडादीणं धारया जादा। एवं पमाणीभूदमहारिसिपणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए भूदबलि-पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारएण सुदणईपवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्टं महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। तदो तिकालगोयरासेसपयत्थवि-

सयपच्चक्खाणंतकेवलणाणप्पभावादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागदत्तादो दिट्ठिद्विरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो। तम्हा मोक्खकंखिणा भवियलोएण अब्भसेयव्वो। ण एसो गंथो थोवो त्ति मोक्खकज्जजणणं पडि असमत्थो, अमियघडसयवाणफलस्स चुलुवामियवाणे वि उवलंभादो<sup>१</sup>।

लोहाचार्य के स्वर्गलोक को प्राप्त होने पर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इस प्रकार भरतक्षेत्र में बारह सूर्यों के अस्तमित हो जाने पर शेष आचार्य सब अंग-पूर्वों के एकदेशभूत 'पेज्जदोस' और 'महाकम्मपयडिपाहुड' आदिकों के धारक हुए। इस प्रकार प्रभाणीभूत, महर्षि रूप प्रणाली से आकर महाकम्मपयडिपाहुड रूप अमृत जल-प्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ। उन्होंने भी गिरिनगर की चन्द्र गुफा में सम्पूर्ण महाकम्मपयडिपाहुड भूतबलि और पुष्पदन्त को अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी नदी प्रवाह के व्युच्छेद से भयभीत हुए भूतबलि भट्टारक ने भव्यजनों के अनुग्रहार्थ महाकम्मपयडिपाहुड का उपसंहार कर छह खण्ड (षट्खण्डागम) किये। अतएव त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाले प्रत्यक्ष अनन्त केवलज्ञान के प्रभाव से प्रमाणीभूत आचार्यरूप प्रणाली से आने के कारण प्रत्यक्ष व अनुमान से चूँकि विरोध से रहित है अतः यह ग्रंथ प्रमाण है। इस कारण मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इसका अभ्यास करना चाहिए। चूँकि यह ग्रंथ स्तोक है अतः वह मोक्षरूप कार्य को उत्पन्न करने के लिए असमर्थ है, ऐसा विचार नहीं करना चाहिए; क्योंकि अमृत के सौ घड़ों के पीने का फल चुल्लु प्रमाण अमृत के पीने में भी पाया जाता है।

अतः यह ग्रंथराज बहुत ही महान है, इसका सीधा संबंध भगवान महावीर स्वामी की वाणी से एवं श्री गौतम स्वामी के मुखकमल से निकले 'गणधरवल्लय' आदि मंत्रों से है। इस ग्रंथ में एक-एक सूत्र अनन्त अर्थों को अपने में गर्भित किये हुए हैं। अतः हम जैसे अल्पज्ञ इन सूत्रों के रहस्य को, मर्म को समझने में अक्षम ही हैं। फिर भी श्रीवीरसेनाचार्य ने 'धवला' टीका को लिखकर हम जैसे अल्पज्ञों पर महान् उपकार किया है।

इस धवला टीका को आधार बनाकर मैंने टीका लिखी है। इसमें कहीं-कहीं धवला टीका की पंक्तियों को ज्यों का त्यों ले लिया है। कहीं पर उनकी संस्कृत (छाया) कर दी है। कहीं-कहीं उन प्रकरणों से संबंधित अन्य ग्रंथों के उद्धरण भी दिये हैं। श्रीवीरसेनाचार्य के द्वारा रचित टीका में जो अतीव गूढ़ एवं क्लिष्ट सैद्धांतिक विषय हैं अथवा जो गणित के विषय हैं उनको मैंने छोड़ दिया है एवं 'धवला टीकायां दृष्टव्यं' धवला टीका में देखना चाहिए, ऐसा लिख दिया है। अर्थात् इस धवला टीका के सरल एवं सारभूत अंश को ही मैंने लिया है। चूँकि यह श्रुतज्ञान ही 'केवलज्ञान' की प्राप्ति के लिए 'बीजभूत' है।

जैसे कि मैंने लिखा है —

सिद्धांतचिन्तामणिनामधेया, सिद्धान्तबोधाभूतदानदक्षा।

टीका भवेत्स्वात्मपरात्मनोर्हि, कैवल्यलब्धयै खलु बीजभूता<sup>२</sup>॥१७॥

'षट्खण्डागम' में — पाँच खण्डों में सूत्र संख्या छह हजार आठ सौ तीस (६८३०) है। तेरह पुस्तकों तक सूत्रों की संख्या ५६३० है। इतने — पाँच हजार छह सौ तीस सूत्रों की मेरी टीका हो चुकी है। अब मात्र १४वीं, १५वीं और १६वीं पुस्तकों की, उनमें आये १२०० सूत्रों की टीका शेष है। मैं भगवान श्री महावीर स्वामी के चरणकमलों में यही प्रार्थना करती हूँ कि इन तीनों ग्रंथों की टीका लिखने का भी सुयोग मुझे प्राप्त हो और निर्विघ्न संपन्न हो।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित), पुस्तक ९, पृ. १३३-१३४।

२. षट्खण्डागम, सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वित, पुस्तक १, पृ. ४।

## षट्खण्डागम का विषय

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सब्ब साहूणं॥१॥

षट्खण्डागम की प्रथम पुस्तक सत्प्ररूपणा में सर्वप्रथम 'णमोकार महामंत्र' से मंगलाचरण किया है। इसमें १७७ सूत्र हैं। इस ग्रंथ की रचना श्रीमत्पुष्पदंत आचार्य ने की है। इसके आगे के संपूर्ण सूत्र श्रीमद् भूतबलि आचार्य प्रणीत हैं।

इस मंगलाचरण की धवला टीका में पांचों परमेश्वी के लक्षण बताये हैं।

यह मंत्र अनादि है या श्री पुष्पदन्ताचार्य द्वारा रचित सादि है?

मैंने 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका में इसका स्पष्टीकरण किया है। धवला टीका में इसे 'निबद्धमंगल' कहकर आचार्यदेव रचित 'सादि' स्वीकार किया है। इसी मुद्रित प्रथम पुस्तक के टिप्पण में जो पाठ का अंश उद्धृत है वह धवलाटीका का ही अंश माना गया है। उसके आधार से यह मंगलाचरण 'अनादि' है। आचार्य श्री पुष्पदंत द्वारा रचित नहीं है, ऐसा स्पष्ट होता है। इस प्रकरण को मैंने दिया है। यथा—

अयं महामंत्र सादिरनादिर्वा?

अथवा षट्खण्डागमस्य मु प्रतौ पाठांतरं। यथा—( मुद्रितमूलग्रन्थस्य प्रथमावृत्तौ )

“जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्धदेवदाणमोक्कारो तं णिबद्धमंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कयदेवदाणमोक्कारो तमणिबद्धमंगलं”<sup>१</sup>।

अस्यायमर्थः—यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा निबद्धः—संग्रहीतः न च ग्रथितः देवतानमस्कारः स निबद्धः मंगलं। यः सूत्रस्यादौ सूत्रकर्त्रा कृतः—ग्रथितः देवतानमस्कारः स अनिबद्धमंगलं। अनेन एतज्ज्ञायते—अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः —

महापंच गुरोर्नाम नमस्कारसुसम्भवम्। महामंत्रं जगज्जेषु-मनादिसिद्धमादिदम्<sup>२</sup>॥६३॥

महापंचगुरुणां पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्। उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये<sup>३</sup>॥६८॥

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम्—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः<sup>४</sup>॥३॥

यह महामंत्र सादि है अथवा अनादि?

अथवा, मुद्रितमूल प्रति में (प्रथम आवृत्ति में) पाठान्तर है। जैसे—

जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्ता के द्वारा देवता नमस्कार निबद्ध किया जाता है, वह निबद्धमंगल है और जो सूत्र की आदि में सूत्रकर्ता के द्वारा देवता नमस्कार किया जाता है—रचा जाता है वह अनिबद्धमंगल है। इसका अर्थ यह है—सूत्र ग्रंथ के प्रारंभ में ग्रंथकार जो देवता नमस्कार रूप मंगल कहीं से संग्रहीत

करते हैं, स्वयं नहीं रचते हैं वह तो निबद्धमंगल है और सूत्र के प्रारंभ में ग्रंथकर्ता के द्वारा जो देवतानमस्कार स्वयं रचा जाता है वह अनिबद्धमंगल है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह णमोकार महामंत्र मंगलाचरण रूप से यहाँ संग्रहीत होते हुए भी अनादिनिधन है वह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

“णमोकार मंत्रकल्प” में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है —

**श्लोकार्थ** — नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत् में ज्येष्ठ — सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है॥६३॥

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए॥६८॥

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है —

**श्लोकार्थ** — उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ॥३॥

मैंने ‘सिद्धान्तचिन्तामणि टीका’ में सर्वत्र सूत्रों का विभाजन एवं समुदायपातनिका आदि बनाई हैं। यहाँ मैंने ‘समयसार’ ‘प्रवचनसार’ ‘पंचास्तिकाय’ ग्रंथों की ‘तात्पर्यवृत्ति’ टीका का अनुसरण किया है। श्री जयसेनाचार्य की टीका के सर्वत्र गाथासूत्रों की संख्या एवं विषयविभाजन से स्थल-अन्तरस्थल बने हुए हैं। उनकी टीका के अनुसार ही मैंने यहाँ स्थल-अन्तरस्थल विभाजित किये हैं।

सर्वत्र अधिकारों मंगलाचरणरूप में मैंने कहीं पद्य कहीं गद्य का प्रयोग किया है। तीर्थ और विशेष स्थान की अपेक्षा से प्रायः वहाँ-वहाँ के तीर्थकरों को नमस्कार किया है।

यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

जिनेन्द्रदेवमुखकमलविनिर्गत-गौतमस्वामिमुखकुण्डावतरित-पुष्पदंताचार्यादिविस्तारितगंगायाः जलसदृशं “नद्या नवघटे भृतं जलमिव” इयं टीका सर्वजनमनांसि संतर्पिष्यत्येवेतिमया विश्वस्यते।

अथाधुना श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्यदेवविनिर्मिते गुणस्थानादिविंशतिप्ररूपणान्तर्गर्भितसत्प्ररूपणा — नाम ग्रंथे अधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन पातनिका व्याख्यानं विधीयते। तत्रादौ ‘णमो अरिहंताणं’ इति पंचनमस्कारगाथामादिं कृत्वा सूत्रपाठक्रमेण गुणस्थानमार्गणा-प्रतिपादनसूचकत्वेन ‘एत्तो इमेसिं’ इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः चतुर्दशगुणस्थाननिरूपणपरत्वेन “संतपरूवणदाए” इत्यादि-षोडशसूत्राणि। ततः परं चतुर्दशमार्गणासु गुणस्थानव्यवस्था-व्यवस्थापन-मुख्यत्वेन “आदेसेण गदियाणुवादेण” इत्यादिना चतुःपञ्चाशदधिक-एकशतसूत्राणि सन्ति। एवं अनेकान्तरस्थलगर्भित-सप्त-सप्तत्यधिकएकशतसूत्रैः एते त्रयो महाधकारा भवन्तीति सत्प्ररूपणायाः व्याख्याने समुदायपातनिका भवति।

अत्रापि प्रथममहाधकारे ‘णमो’ इत्यादि मंगलाचरणरूपेण प्रथमस्थले गाथासूत्रमेकं। ततो गुणस्थानमार्गणा-कथनप्रतिज्ञारूपेण द्वितीयस्थले ‘एत्तो’ इत्यादि सूत्रमेकम्। ततश्च चतुर्दशमार्गणानां नामनिरूपणरूपेण तृतीयस्थले सूत्रद्वयं। ततः परं गुणस्थानप्रतिपादनार्थं अष्टानुयोगनामसूचनपरत्वेन चतुर्थस्थले ‘एदेसिं’ इत्यादिसूत्रत्रयं। एवं षट्खण्डागमग्रन्थराजस्य, सत्प्ररूपणायाः पीठिकाधकारे

चतुर्भिर्न्तरस्थलैः सप्तसूत्रैः समुदायपातनिका सूचितास्ति।

अथ श्रीमद्भगवद्धरसेनगुरुमुखादुपलब्धज्ञानभव्यजनानां वितरणार्थं पंचमकालान्त्य-वीरांगजमुनिपर्यन्तं गमयितुकामेन पूर्वाचार्यव्यवहारपरंपरानुसारेण शिष्टाचारपरिपालनार्थं निर्विघ्नसिद्धान्तशास्त्रपरिसमाप्त्यादिहेतोः श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्येण णमोकारमहामन्त्रमंगलगाथा-सूत्रावतारः क्रियते —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥१॥

जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से निकलकर जो गौतमस्वामी के मुखरूपी कुण्ड में अवतरित गिरी है तथा पुष्पदन्त आचार्य आदि के द्वारा विस्तारित गंगाजल के समान “नदी से भरे हुए नये घड़े के जल सदृश” यह टीका सभी प्राणियों के मन को संतुष्ट करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अब यहाँ श्रीमान् पुष्पदन्त आचार्यदेव द्वारा रचित गुणस्थान आदि बीस प्ररूपणाओं में अन्तर्गर्भित इस सत्प्ररूपणा नामक ग्रंथ में अधिकार शुद्धिपूर्वक पातनिका का व्याख्यान किया जाता है। उसमें सबसे पहले “णमो अरिहंताणं” इत्यादि इस पञ्चनमस्कार गाथा को आदि में करके सूत्र पाठ के क्रम से गुणस्थान, मार्गणा के प्रतिपादन की सूचना देने वाले “एत्तो इमेसिं” इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद चौदह गुणस्थानों के निरूपण की मुख्यता से “ओघेण अत्थि” इत्यादि सोलह सूत्र हैं। पुनः आगे चौदह मार्गणाओं में गुणस्थान व्यवस्था की मुख्यता से “आदेसेण गदियाणुवादेण” इत्यादि एक सौ चौव्वन (१५४) सूत्र हैं। इस प्रकार अनेक अन्तर्स्थलों से गर्भित एक सौ सत्तर (१७७) सूत्रों के द्वारा ये तीन महाधिकार हो गए हैं। सत्प्ररूपणा के व्याख्यान में यह समुदायपातनिका हुई।

यहाँ भी प्रथम महाधिकार में “णमो” इत्यादि मंगलाचरण रूप से प्रथम स्थल में एक गाथ सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में गुणस्थान-मार्गणा के कथन की प्रतिज्ञारूप से “एत्तो” इत्यादि एक सूत्र है और उसके बाद चौदह मार्गणाओं के नाम निरूपण रूप से तृतीय स्थल में दो सूत्र हैं। उसके आगे गुणस्थानों के प्रतिपादन हेतु आठ अनुयोग के नाम सूचना की मुख्यता से चतुर्थ स्थल के ‘एदेसिं’ इत्यादि तीन सूत्र हैं।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथराज की सत्प्ररूपणा के पीठिका अधिकार में चार अन्तरस्थलों के द्वारा सूत्रों में समुदायपातनिका सूचित-प्रदर्शित की गई है।

अब श्रीमत् भगवान् धरसेनाचार्य गुरु के मुख से उपलब्ध ज्ञान को भव्यजनों में वितरित करने के लिए पंचमकाल के अन्त में वीरांगज मुनि पर्यन्त इस ज्ञान को ले जाने की इच्छा से, पूर्वाचार्यों की व्यवहार परम्परा के अनुसार, शिष्टाचार का परिपालन करने के लिए, निर्विघ्न सिद्धान्त शास्त्र की परिसमाप्ति आदि हेतु को लक्ष्य में रखते हुए श्रीमत्पुष्पदन्ताचार्य के द्वारा णमोकार महामन्त्र मंगल गाथा सूत्र का अवतार किया जाता है —

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥१॥

अतिशय क्षेत्र महावीर जी में मैंने ‘तृतीय महाधिकार’ प्रारंभ किया था अतः श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। यथा —

महावीर जगत्स्वामी, सातिशायीति विश्रुतः।

तस्मै नमोऽस्तु मे भक्त्या, पूर्णसंयमलब्धये॥१॥

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

“सुत्तमोदिण्णं अत्थदो तित्थयरादो, गंथदो गणहरदेवादोत्ति॥”

ये सूत्र अर्थप्ररूपणा की अपेक्षा से तीर्थकर भगवान से अवतीर्ण हुए हैं और ग्रंथ की अपेक्षा श्री गणधर देव से अवतीर्ण हुए हैं।

अथाव ‘जिनपालित’ शिष्य को निमित्त कहा है।

श्री पुष्पदंताचार्य अपने भानजे ‘जिनपालित’ दीक्षा लेकर प्रारंभिक १७७ सूत्रों की रचना करके भूतबलि आचार्य के पास भेजा था। ऐसा ‘धवलाटीका’ में एवं श्रुतावतार में वर्णित है।

इस मंगलाचरण को सूत्र १ संज्ञा दी है। आगे द्वितीय सूत्र का अवतार हुआ है—

एत्तो इमेसिं चोदसण्हं चोदसण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्टुदाए तत्थ इमाणि चोदस चेवट्टाणाणि णादव्वाणि भवन्ति॥२॥

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरूप प्रमाण से इन चौदह गुणस्थानों के अन्वेषण रूप प्रयोजन के लिए यहाँ से चौदह ही मार्गणा स्थान जानने योग्य हैं।

ऐसा कहकर पहले चौदह मार्गणाओं के नाम बतायें हैं। यथा — गति, इंद्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणा हैं।

पुनः पांचवें सूत्र में कहा है—

इन्हीं चौदह गुणस्थानों का निरूपण करने के लिए आगे कहे जाने वाले आठ अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं॥६॥

इन आठों के नाम — १. सत्प्ररूपणा २. द्रव्यप्रमाणानुगम ३. क्षेत्रानुगम ४. स्पर्शनानुगम ५. कालानुगम ६. अन्तरानुगम ७. भावानुगम और ८. अल्पबहुत्वानुगम।

आगे प्रथम ‘सत्प्ररूपणा’ का वर्णन करते हुए ओघ और आदेश की अपेक्षा निरूपण करने को कहा है।

इसी में ओघ की अपेक्षा चौदह गुणस्थानों का वर्णन है और आगे चौदह मार्गणाओं का वर्णन करके उनमें गुणस्थानों को भी घटित किया है। मार्गणाओं के नाम ऊपर लिखे गये हैं। गुणस्थानों के नाम —

१. मिथ्यात्व २. सासादन ३. मिश्र ४. असंयतसम्यग्दृष्टि ५. देशसंयत ६. प्रमत्तसंयत ७. अप्रमत्तसंयत ८. अपूर्वकरण ९. अनिवृत्तिकरण १०. सूक्ष्मसांपराय ११. उपशांतकषाय १२. क्षीणकषाय १३. सयोगिकेवली और १४. अयोगिकेवली ये चौदह गुणस्थान हैं।

इस ग्रंथ में मैंने तीन महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में सात सूत्र हैं जो कि ग्रंथ की पीठिका-भूमिकारूप हैं। दूसरे महाधिकार सत्प्ररूपणा के अंतर्गत १६ सूत्रों में चौदह गुणस्थानों का वर्णन है एवं तृतीय महाधिकार में मार्गणाओं में गुणस्थानों की व्यवस्था करते हुए विस्तार से १५४ सूत्र लिए हैं।

इस प्रथम ग्रंथ में प्रारंभ में पंच परमेष्ठियों के वर्णन में एक सुन्दर प्रश्नोत्तर धवला टीका में आया है जिसे मैंने जैसे का तैसा लिया है। यथा —

“संपूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेत् ?

१. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीका समन्वित) पु. १, पृ. ६०।

न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदसत्त्वापत्तेः.....। इत्यादि।

शंका — संपूर्णरत्न — पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव है, रत्नों का एकदेश देव नहीं हो सकता है?

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि रत्नत्रय के एकदेश में देवपने का अभाव होने पर उसकी संपूर्णता में भी देवपना नहीं बन सकता है।

शंका — आचार्य आदि में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें एकदेशपना ही है पूर्णता नहीं है?

समाधान — यह कथन समुचित नहीं है, क्योंकि पलालराशि — घास की राशि को जलाने का कार्य अग्नि के एक कण में भी देखा जाता है इसलिए आचार्य, उपाध्याय और साधु भी देव हैं।”

यह समाधान श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही उत्तम बताया है।

प्रथम पुस्तक ‘सत्प्ररूपणाग्रंथ’ की टीका को पूर्ण करते समय मैंने उस स्थान का विवरण दे दिया है। यथा —

“वीराब्दे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां ख्रिष्टाब्दे षण्णवत्यधि-  
कैकोनविंशतिशततमे पंचविंशे दिनांके द्वितीयमासि ( २५-२-१९९६ ) राजस्थान प्रान्ते  
‘पिडावानामग्रामे’ श्री पार्श्वनाथसमवसरणमंदिरशिलान्यासस्य मंगलावसरे एतत्सत्प्ररूपणाग्रन्थस्य  
‘सिद्धान्तचिन्तामणिटीकां’ पूरयन्त्या मया महान् हर्षोऽनुभूयते। टीकासहितोऽयं ग्रन्थो मम श्रुतज्ञानस्य  
पूर्वै भूयात्।”

पुनः वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईसवें वर्ष में ही फाल्गुन शुक्ला सप्तमी तिथि को ईसवी सन् १९९६ के द्वितीय मास की २५ तारीख को राजस्थान प्रान्त के पिडावा ग्राम में श्रीपार्श्वनाथ समवसरण मंदिर के शिलान्यास के मंगल अवसर पर इस ‘सत्प्ररूपणा’ ग्रंथ की ‘सिद्धान्तचिन्तामणिटीका’ को पूर्ण करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। टीका सहित यह सत्प्ररूपणा नामक ‘षट्खण्डागम’ ग्रंथ मेरे श्रुतज्ञान की पूर्ति के लिए होवे, यही मेरी प्रार्थना है।

### पुस्तक २ — आलाप अधिकार

यह द्वितीय ग्रंथ सत्प्ररूपणा के ही अंतर्गत है। इसमें सूत्र नहीं है।

“संपहि संत-सुतविवरण-समत्ताणंतरं तेसिं परुवणं भणिस्सामो।”

सत्प्ररूपणा के सूत्रों का विवरण समाप्त हो जाने पर अनंतर अब उनकी प्ररूपणा का वर्णन करते हैं —

शंका — प्ररूपणा किसे कहते हैं?

समाधान — सामान्य और विशेष की अपेक्षा गुणस्थानों में, जीवसमासों में, पर्याप्तियों में, प्राणों में, संज्ञाओं में, गतियों में, इन्द्रियों में, कार्यों में, योगों में, वेदों में, कषायों में, ज्ञानों में, संयमों में, दर्शनों में, लेश्याओं में, भव्यों में, अभव्यों में, संज्ञी-असंज्ञियों में, आहारी-अनाहारियों में और उपयोगों में पर्याप्त और अपर्याप्त विशेषणों से विशेषित करके जो जीवों की परीक्षा की जाती है, उसे प्ररूपणा कहते हैं। कहा भी है —

गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणां और उपयोग, इस प्रकार क्रम से बीस प्ररूपणाएं कही गई हैं।

इनके कोष्ठक गुणस्थानों के एवं मार्गणाओं के बनाये गये हैं।

गुणस्थान १४ हैं, जीवसमास १४ हैं — एकेन्द्रिय के बादर-सूक्ष्म ऐसे २, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ऐसे ३, पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी ऐसे २, ये ७ हुए इन्हें पर्याप्त-अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ हुए। पर्याप्ति ६ — आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन। प्राण १० हैं — पांच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास। संज्ञा ४ हैं — आहार, भय, मैथून और परिग्रह। गति ४ हैं — नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति। इन्द्रियां ५ हैं — एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियजाति। काय ६ हैं — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय। योग १५ हैं — सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग। वेद ३ हैं — स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। कषाय ४ हैं — क्रोध, मान, माया, लोभ। ज्ञान ८ हैं — मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि। संयम ७ हैं — सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, देशसंयम और असंयम। दर्शन ४ हैं — चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। लेश्या ६ हैं — कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल। भव्य मार्गणा २ हैं — भव्यत्व और अभव्यत्व। सम्यक्त्व ६ हैं — औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र। संज्ञी मार्गणा के २ भेद हैं — संज्ञी, असंज्ञी। आहार मार्गणा २ हैं — आहार, अनाहार। उपयोग के २ भेद हैं — साकार और अनाकार।

इस ग्रंथ को मैंने दो महाधिकारों में विभक्त किया है। इसमें कुल ५४५ कोष्ठक — चार्ट हैं। उदाहरण के लिए पांचवे गुणस्थान का एक चार्ट दिया जा रहा है —

नं. १३

संयतासंयतों के आलाप

गु.	जी.	प.	प्रा.	सं.	ग.	इं.	का.	यो.	वे.	क.	ज्ञा.	संय.	द.	ले.	भ.	स.	संज्ञि.	आ.	उ.
१	१	६	१०	४	२	१	१	९	३	४	३	१	३	द्र.३	१	३	१	१	२
हिं.	सं.प.				म.	पंचे.	त्रस.	म.४			मति.	मि.	के.द.	भा.३	भ.	औ.	सं.	आहार	साकार
					ति.			व. ४			श्रुत.	विना.	विना.	शुभ.		क्षा.			अनाकार
								औ.१			अव.					क्षायो.			

इनमें से संयतासंयत के कोष्ठक में —

गुणस्थान १ है — पाँचवां देशसंयत। जीवसमास १ है — संज्ञीपर्याप्त। पर्याप्तियाँ छहों हैं, अपर्याप्तियाँ नहीं हैं। प्राण १० हैं। संज्ञायें ४ हैं। गति २ हैं — मनुष्य, तिर्यच। इन्द्रिय १ है — पंचेन्द्रिय। काय १ है — त्रसकाय। योग ९ हैं — ४ मनोयोग, ४ वचनयोग १ औदारिक काययोग। वेद ३ हैं। कषाय ४ हैं। ज्ञान ३ हैं — मति, श्रुत, अवधि। संयम १ है — संयमासंयम। दर्शन ३ हैं — केवलदर्शन के बिना। लेश्या द्रव्य से — वर्ण से छहों हैं, भावलेश्या शुभ ३ हैं। भव्यत्व १ है। सम्यक्त्व ३ हैं — औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। संज्ञीमार्गणा १ है — संज्ञी। आहार मार्गणा १ है — आहारक। उपयोग २ हैं — साकार और अनाकार। यही सब चार्ट में दिखाया गया है।

इस प्रकार यह दूसरी पुस्तक का सार अतिसंक्षेप में बताया गया है।



## पुस्तक ३ — द्रव्यप्रमाणानुगम

इस ग्रंथ में श्री भूतबलि आचार्य वर्णित सूत्र हैं अब यहाँ से संपूर्ण 'षट्खण्डागम' सूत्रों की रचना इन्हीं श्रीभूतबलि आचार्य द्वारा लिखित है। कहा भी है—

“संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव पदिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह” — ”

जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं के चौदहों गुणस्थानों के — चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण — संख्या के ज्ञान को कराने के लिए श्रीभूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं —

इसमें प्रथम सूत्र —

“द्रव्यप्रमाणानुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।।१।।

द्रव्यप्रमाणानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है, ओघ निर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ — गुणस्थान और आदेश — मार्गणा इन दोनों की अपेक्षा से उन-उन में जीवों का वर्णन किया गया है।

इस ग्रंथ में भी मैंने दो महाधिकार किये हैं। प्रथम महाधिकार में चौदह सूत्र हैं एवं द्वितीय १७८ हैं, ऐसे कुल सूत्र १९२ हैं।

चौदह गुणस्थानों में जीवों की संख्या बतलाते हैं —

प्रथम गुणस्थान में जीव अनंतानंत हैं। द्वितीय गुणस्थान में ५२ करोड़ हैं। तृतीय गुणस्थान में १०४ करोड़ हैं। चतुर्थ गुणस्थान में सात सौ करोड़ हैं। पाँचवे गुणस्थान में १३ करोड़ हैं।

प्रमत्तसंयत नाम के छठे गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान के महामुनि एवं अरहंत भगवान 'संयत' कहलाते हैं। उन सबकी संख्या मिलाकर 'तीन कम नव करोड़' है। धवला टीका में कहा है —

“एवं परुविदसव्वसंजदरासिमेकट्ठे कदे अट्ठकोडीओ णवणउदिलक्खा णवणउदिसहस्स-णवसद-सत्ताणउदिमेत्तो होदि”।”

इसी तृतीय पुस्तक में दूसरा एक और मत प्राप्त हुआ है —

“एदे सव्वसंजदे एयट्ठे कदे सत्तरसद-कम्मभूमिगद-सव्वरिसओ भवंति। तेसिं पमाणं छक्कोडीओ णवणउडिलक्खा णवणउदिसहस्सा णवसयछण्णउदिमेत्तं हवदि”।” सर्व संयतों की संख्या — छह करोड़, नित्यानवे लाख, नित्यानवे हजार, नव सौ छ्यानवे है।

इन दोनों मतों को श्री वीरसेनाचार्य ने उद्धृत किया है।

वर्तमान में प्रसिद्धि में 'तीन कम नव करोड़' संख्या ही है।

इस सर्वमुनियों को नमस्कार करके यहाँ इस ग्रंथ का किंचित् सार दिया है। इसकी सिद्धान्तचिंतामणि टीका में मैंने अधिकांश गणित प्रकरण छोड़ दिया है, जो कि धवलाटीका में द्रष्टव्य है।

## पुस्तक ४ — क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम

इस चतुर्थ ग्रंथ — पुस्तक में क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम एवं कालानुगम इन तीन अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इन तीनों की सूत्र संख्या ९२+१८५+३४२=६१९ है।

**क्षेत्रानुगम**—‘सिद्धान्तचिन्तामणि टीका’ में मैंने क्षेत्रानुगम में दो महाधिकार किये हैं। प्रथम गुणस्थान की अपेक्षा से है और द्वितीय में मार्गणाओं की अपेक्षा से जीवों के क्षेत्र का वर्णन किया गया है।

श्री वीरसेनाचार्य ने आकाश को क्षेत्र कहा है। आकाश का कोई स्वामी नहीं है, इस क्षेत्र की उत्पत्ति में कोई निमित्त भी नहीं है यह स्वयं में ही आधार-आधेयरूप है। यह क्षेत्र अनादिनिधन है और भेद की अपेक्षा लोकाकाश-अलोकाकाश ऐसे दो भेद हैं। इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से क्षेत्र का वर्णन किया है।

क्षेत्र में गुणस्थानवर्ती जीवों को घटित करते हुए कहा है—

“ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडिखेत्ते? सव्वलोगे॥२॥

मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्र में हैं? सर्वलोक में हैं॥२॥

सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति केवडिखेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभाए॥३॥

सासादनसम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगिकेवली पर्यंत कितने क्षेत्र में हैं? लोक के असंख्यातवें भाग में हैं॥३॥

इसमें एक प्रश्न हुआ है—

लोकाकाश असंख्यातप्रदेशी है उसमें अनंतानंत जीव कैसे समायेंगे?

यद्यपि लोक ‘असंख्यात प्रदेशी’ है फिर भी उसमें अवगाहन शक्ति विशेष है जिससे उसमें अनंतानंत जीव एवं अनंतानंत पुद्गल समाविष्ट हैं। जैसे मधु से भरे हुए घड़े में उतना ही दूध भर दो उसी में समा जायेगा<sup>१</sup>।

इस अनुयोगद्वार में स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद ऐसे तीन भेदों द्वारा जीवों के क्षेत्र का वर्णन किया है।

**स्पर्शानुगम**—इसमें भी मैंने गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार किये हैं। यह स्पर्शन भूतकाल एवं वर्तमानकाल के स्पर्श की अपेक्षा रखता है। पूर्व में जिसका स्पर्श किया था और वर्तमान में जिसका स्पर्श कर रहे हैं इन दोनों की अपेक्षा से स्पर्शन का कथन किया जाता है।

स्पर्शन में छह प्रकार के निक्षेप घटित किये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावस्पर्शन।

‘तत्र स्पर्शनशब्दः’ नाम स्पर्शनं निक्षेपः, अयं द्रव्यार्थिकनयविषयः।

सोऽयं इति बुद्ध्या अन्यद्रव्येण सह अन्यद्रव्यस्य एकत्वकरणं स्थापनास्पर्शनं यथा घटपिठरादिषु अयं ऋषभोऽजितः संभवोऽभिनन्दनः इति। एषोऽपि द्रव्यार्थिकनयविषयः<sup>२</sup>।”

स्पर्शन शब्द नामस्पर्शन है। यह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। यह वही है ऐसी बुद्धि से अन्य द्रव्य के साथ अन्यद्रव्य का एकत्व करना स्थापनास्पर्शन निक्षेप है जैसे घट आदि में ये ऋषभदेव हैं, अजितनाथ हैं, संभवनाथ हैं, अभिनन्दननाथ हैं इत्यादि। यह भी द्रव्यार्थिक नय का विषय है। इत्यादि निक्षेपों का वर्णन है।

पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से प्ररूपणा करते हुए कहा है—

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणांतिक-उपपादगतमिथ्यादृष्टियों ने भूतकाल एवं वर्तमानकाल से सर्वलोक को स्पर्श किया है।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. २३। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ४, पृ. १४२।

इसी प्रकार गुणस्थान और मार्गणाओं में जीवों के भूतकालीन, वर्तमानकालीन स्पर्शन का वर्णन किया है।

**कालानुगम**—इसमें भी गुणस्थान और मार्गणा की अपेक्षा दो महाधिकार कहे हैं। काल को नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव ऐसे चार भेद रूप से कहा है पुनश्च—‘नो आगमभावकाल’ से इस ग्रंथ में वर्णन किया है।

यह काल अनादि अनंत है, एक विध है यह सामान्य कथन है। काल के भूत, वर्तमान और भविष्यत् की अपेक्षा तीन भेद हैं।

एक प्रश्न आया है—

स्वर्गलोक में सूर्य के गति की अपेक्षा नहीं होने से वहां मास, वर्ष आदि का व्यवहार कैसे होगा?

तब आचार्यदेव ने समाधान दिया है—

यहाँ के व्यवहार की अपेक्षा ही वहाँ पर ‘काल’ का व्यवहार है। जैसे जब यहाँ ‘कार्तिक’ आदि मास में आष्टान्हिक पर्व आते हैं तब देवगण नंदीश्वर द्वीप आदि में पूजा करने पहुँच जाते हैं इत्यादि।

नाना जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि का सर्वकाल है॥२॥

एकजीव की अपेक्षा किसी का अनादिअनंत है, किसी का अनादिसांत है, किसी का सादिसांत है। इनमें से जो सादि और सांत काल है उसका निर्देश इस प्रकार है। एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव का सादिसांत काल जघन्य से अंतर्मुहूर्त है<sup>१</sup>॥३॥

वह इस प्रकार है—

कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि, अथवा संयतासंयत, अथवा प्रमत्तसंयतजीव, परिणामों के निमित्त से मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त काल रह करके, फिर भी सम्यक्त्वमिथ्यात्व को, अथवा असंयम के साथ सम्यक्त्व को, अथवा संयमासंयम को, अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से प्राप्त होने वाले जीव के मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है<sup>१</sup>।

इस प्रकार यह कालानुगम का संक्षिप्त सार या नमूना दिखाया है।

#### पुस्तक ५ — अन्तर-भाव-अल्पबहुत्वानुगम

इस ग्रंथ में अन्तरानुगम में ३९७ सूत्र हैं। भावानुगम में ९३ सूत्र हैं एवं अल्पबहुत्वानुगम में ३८२ सूत्र हैं। इस प्रकार ३९७+९३+३८२=८७२ सूत्र हैं।

**अन्तरानुगम**—इस ग्रंथ में सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में मैंने दो महाधिकार विभक्त किये हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में अंतर का निरूपण है। द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में अंतर दिखाया गया है।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छहविध निक्षेप हैं। अंतर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची हैं। इस प्रकार के अन्तर के अनुगम को अन्तरानुगम कहते हैं।

एक जीव की अपेक्षा जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है॥३॥

जैसे एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम में बहुत बार परिवर्तित होता हुआ परिणामों के निमित्त से सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अंतर्मुहूर्त काल

तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। इस प्रकार सर्वजघन्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वगुणस्थान का अंतर प्राप्त हो गया।

मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम काल है॥४॥

इन ग्रंथों के स्वाध्याय में जो आल्हाद उत्पन्न होता है वह असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा का कारण है। यहाँ तो मात्र नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

**भावानुगम**— इसमें भी महाधिकार दो हैं। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इनकी अपेक्षा यह भाव चार प्रकार का है। इसमें भी भावनिक्षेप के आगमभाव एवं नोआगमभाव ऐसे दो भेद हैं। नोआगमभाव नामक भावनिक्षेप के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पाँच भेद हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि में कौन सा भाव है?

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है॥५॥

यहाँ सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से ये भाव कहे हैं। यद्यपि यहाँ औदयिक भावों में से गति, कषाय आदि भी हैं। किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता इसलिए उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

**अल्पबहुत्वानुगम**— इस अनुयोगद्वार के प्रारंभ में मैंने गद्यरूप में श्री महावीर स्वामी को नमस्कार किया है। इसमें भी दो महाधिकार विभक्त किये हैं।

इस अल्पबहुत्व में गुणस्थान और मार्गणाओं में सबसे अल्प कौन हैं? और अधिक कौन हैं? यही दिखाया गया है। यथा—

**सामान्यतया**— गुणस्थान की अपेक्षा से अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं तथा अन्य सब गुणस्थानों के प्रमाण से अल्प हैं॥२॥

और 'मिथ्यादृष्टि सबसे अधिक अनंतगुणे हैं'॥१४॥

इस ग्रंथ में भी बहुत से महत्वपूर्ण विषय ज्ञातव्य हैं। जैसे कि—“दर्शन मोहनीय का क्षपण करने वाले—क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट करने वाले जीव नियम से मनुष्यगति में होते हैं।”

जिन्होंने पहले तिर्यचायु का बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक सम्यक्त्व के साथ तिर्यचों में उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि भोगभूमि को छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है।”

यह सभी साररूप अंश मैंने यहाँ दिये हैं। अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार इन-इन ग्रंथों का स्वाध्याय श्रुतज्ञान की वृद्धि एवं आत्मा में आनंद की अनुभूति के लिए करना चाहिए।

### पुस्तक ६—जीवस्थान चूलिका

इस ग्रंथ में चूलिका के नौ भेद हैं—१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन, २. स्थान समुत्कीर्तन ३. प्रथम महादण्डक ४. द्वितीय महादण्डक ५. तृतीय महादण्डक ६. उत्कृष्टस्थिति ७. जघन्यस्थिति ८. सम्यक्त्वोत्पत्ति एवं ९. गत्यागती चूलिका।

इसमें क्रमशः सूत्रों की संख्या—४६+११७+२+२+४४+४३+१६+२४३=५१५ है।

**चूलिका**—पूर्वोक्त आठों अनुयोगद्वारों के विषय—स्थलों के विवरण के लिए यह चूलिका नामक

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २४३-२५२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ५, पृ. २५६।

अधिकार आया है।

१. प्रकृतिसमुत्कीर्तन — इस चूलिका में ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकृतियों का वर्णन करके उनके १४८ भेदों का भी निरूपण किया है।

२. स्थानसमुत्कीर्तन — स्थान, स्थिति और अवस्थान ये तीनों एकार्थक हैं। समुत्कीर्तन, वर्णन और प्ररूपण इनका भी अर्थ एक ही है। स्थान की समुत्कीर्तना — स्थान समुत्कीर्तन है।

पहले प्रकृति समुत्कीर्तन में जिन प्रकृतियों का निरूपण कर आये हैं, उन प्रकृतियों का क्या एक होता है? अथवा क्रम से होता है? ऐसा पूछने पर इस प्रकार होता है। यह बात बतलाने के लिए यह स्थान समुत्कीर्तन है।

वह प्रकृतिस्थान मिथ्यादृष्टि के अथवा सासादन के, सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, असंयतसम्यग्दृष्टि के, संयतासंयत के और संयत के होता है। ऐसे यहाँ छह स्थान ही विवक्षित हैं। क्योंकि 'संयत' पद से छठे, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती संयतों को लिया है। अयोगकेवली गुणस्थान में बंध का ही अभाव है अतः उन्हें नहीं लिया है।

जैसे ज्ञानावरण की पाँचों प्रकृतियों का बंध छहों स्थानों में अर्थात् दशवें गुणस्थान तक संयतों में बंध होता है इत्यादि।

३. प्रथम महादण्डक — प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करने के लिए अभिमुख मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा बंधने वाली प्रकृतियों का ज्ञान कराने के लिए यहाँ तीन महादण्डकों की प्ररूपणा आई है।

इसमें प्रथम महादण्डक का कथन सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने के लिए हुआ है। विशेषता यह है कि —

“एदस्सवगमेण महापावक्खयस्सुवलंभादो१।”

क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

४. द्वितीय महादण्डक — प्रकृतियों के भेद से और स्वामित्व के भेद से इन दोनों दण्डकों में भेद कहा गया है।

५. तृतीय महादण्डक — प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख ऐसा नीचे सातवीं पृथ्वी का नारकी मिथ्यादृष्टि जीव, पाँचों ज्ञानावरण, नवों दर्शनावरण, साता वेदनीय, मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि १६ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा इन प्रकृतियों को बांधता है इत्यादि।

६. उत्कृष्ट कर्मस्थिति — कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को बांधने वाला जीव प्रथमोपशमसम्यक्त्व को नहीं प्राप्त करता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया जा रहा है।

७. जघन्यस्थिति — उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा जो स्थिति बंधती है, वह जघन्य होती है। इत्यादि का विस्तार से कथन है।

८. सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका — जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों को बाँधता हुआ, जिन प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के द्वारा सत्त्वस्वरूप होते हुए और उदीरणा को प्राप्त होते हुए यह जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, उनकी प्ररूपणा की गई है।

“प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाला जीव पंचेन्द्रिय, संज्ञी, मिथ्यादृष्टि, पर्याप्त और सर्वविशुद्ध होता है<sup>१</sup>॥४॥”

आगे — “दर्शनमोहनीय कर्म का क्षपण करने के लिए आरंभ करता हुआ यह जीव कहाँ पर आरंभ करता है? अढ़ाई द्वीप समुद्रों में स्थित पंद्रह कर्मभूमियों में जहाँ जिस काल में जिनकेवली और तीर्थकर होते हैं, वहाँ उस काल में आरंभ करता है<sup>२</sup>॥११॥”

ऐसे दो नमूने प्रस्तुत किये हैं।

**९. गत्यागती चूलिका** — इसमें सम्यक्त्वोत्पत्ति के बाह्य कारणों को विशेषरूप से वर्णित किया है —

प्रश्न हुआ — “तिर्यच मिथ्यादृष्टि कितने कारणों से सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं? ॥२१॥

तीन कारणों से — कोई जातिस्मरण से, कितने ही धर्मोपदेश सुनकर, कितने ही जिनबिंबों के दर्शन से ॥२२॥

पुनः प्रश्न होता है — जिनबिंब दर्शन प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्ति में कारण कैसे हैं? उत्तर देते हैं —

“जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो। तथा चोक्तं —

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा<sup>३</sup>॥१॥”

जिनप्रतिमाओं के दर्शन से निधत्त और निकाचितरूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिंब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण देखा जाता है। कहा भी है — जिनेन्द्रदेवों के दर्शन से पापसंघातरूपी कुंजरपर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं।

२१६ सूत्र की टीका में अन्य ग्रंथों के उद्धरण भी दिये गये हैं। नमूने के लिए प्रस्तुत हैं —

आत्मज्ञातृतया ज्ञानं, सम्यक्त्वं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः<sup>४</sup>॥

इस प्रथमखण्ड ‘जीवस्थान’ की छठी पुस्तक की टीका मैंने अपनी दीक्षाभूमि “माधोराजपुरा” राजस्थान में पूर्ण की है। उसमें मैंने संक्षेप में तीन श्लोक दिये हैं —

देवशास्त्रगुरुन् नत्वा, नित्य भक्त्या त्रिशुद्धितः। षट्खण्डागमग्रंथोऽयं, वन्द्यते ज्ञानवृद्धये॥१॥

द्वित्रिपंचद्विवीराब्दे, फाल्गुनेऽसितपक्षाके। माधोराजपुराग्रामे, त्रयोदश्यां जिनालये॥२॥

नमः श्रीशांतिनाथाय, सर्वसिद्धिप्रदायिने। यस्य पादप्रसादेन, टीकेयं पर्यपूर्यत॥३॥

मैंने शरदपूर्णिमा को वी.सं. २५२१ में हस्तिनापुर में यह टीका लिखना प्रारंभ किया था। मुझे प्रसन्नता है कि फाल्गुन कृष्णा १३, वी. नि. सं. २५२३, दि. ७-३-१९९७ को माधोराजपुरा में मैंने यह प्रथम खंड की टीका पूर्ण की है। यह टीका मांगीतुंगी यात्रा विहार के मध्य आते-जाते लगभग ३६ सौ किमी. के मध्य में मार्ग में अधिकरूप में लिखी गई है।

मैंने इसे सरस्वती देवी की अनुकंपा एवं माहात्म्य ही माना है। इसमें स्वयं में मुझे ‘आश्चर्य’ हुआ है। जैसा कि मैंने लिखा है —

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २०६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. २४२।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ६, पृ. ४२८। ४. तत्त्वार्थसार का उद्धरण।

“पुनश्च हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे विनिर्मितकृत्रिमजंबूद्वीपस्य सुदर्शनमेवादिपर्वतामुपरि विराजमानसर्वजिनबिंबानि मुहुर्मुहुः प्रणम्य यत् सिद्धान्तचिंतामणिटीकालेखनकार्यं एकविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे मया प्रारब्धं, तदधुना मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्रस्य यात्रायाः मंगलविहारकाले त्रयोविंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गे एव निर्विघ्नतया जिनदेवकृपाप्रसादेन महद्दुर्घोल्लासेन समाप्यते। एतत् सरस्वत्या देव्यः अनुकंपामाहात्म्यमेव विज्ञायते, मयैव महदाश्चर्यं प्रतीयते।”

इस खंड में कुल सूत्र संख्या १७७+१९२+६१९+८७२+५१५=२३७५ है।

मेरे द्वारा लिखित पेजों की संख्या १६१+८८+८३+२३५+१९३+१८७=९४७ है।

इस प्रकार ‘जीवस्थान’ नामक प्रथम खण्ड (अंतर्गत छह पुस्तकों) का यह संक्षिप्त सार मैंने लिखा है।

### द्वितीय खण्ड — क्षुद्रकबंध

इसे प्राकृत भाषा में ‘खुद्दाबंध’ कहते हैं एवं संस्कृत भाषा में ‘क्षुद्रकबंध’ नाम है।

इसे क्षुद्रक बंध कहने का अभिप्राय यह है कि —

आगे स्वयं भूतबलि आचार्य ने ‘तीस हजार’ सूत्रों में ‘महाबंध’ नाम से छठा खण्ड स्वतंत्र बनाया है। इसीलिए १५८९ सूत्रों में रचित यह ग्रंथ ‘क्षुद्रकबंध’ नाम से सार्थक है।

इस ग्रंथ की टीका को मैंने ‘पद्मपुरा’ तीर्थ पर प्रारंभ किया था अतः मंगलाचरण में श्रीपद्मप्रभ भगवान् को नमस्कार किया है। यथा —

श्रीपद्मप्रभदेवस्य, विश्वातिशयकारिणे।

नमोऽभीप्सितसिद्ध्यर्थ, ते च दिव्यध्वनिं नुमः॥१॥

इस खण्ड में जीवों की प्ररूपणा स्वामित्वादि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोड़कर मार्गणा स्थानों में की गई है। इन ग्यारह अनुयोग द्वारों के नाम — १. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व २. एक जीव की अपेक्षा काल ३. एक जीव की अपेक्षा अन्तर ४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा काल ९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम। अंत में ग्यारहों अनुयोगद्वारों की चूलिका रूप से ‘महादण्डक’ दिया गया है। यद्यपि इसमें अनुयोग द्वारों की अपेक्षा ११ अधिकार ही हैं फिर भी प्रारंभ में प्रस्तावनारूप में ‘बंधक सत्त्वप्ररूपणा’ और अंत में चूलिकारूप में महादण्डक ऐसे १३ अधिकार भी कहे जा सकते हैं।

**बंधक सत्त्वप्ररूपणा** — इसमें ४३ सूत्र हैं। जिनमें चौदह मार्गणाओं के भीतर कौन जीव कर्मबंध करते हैं और कौन नहीं करते यह बतलाया गया है।

**१. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व** — इस अधिकार में मार्गणाओं संबंधी गुण व पर्याय कौन से भावों से प्रगट होते हैं इत्यादि विवेचन है।

**२. एक जीव की अपेक्षा काल** — इस अनुयोगद्वार में प्रत्येकगति आदि मार्गणा में जीव की जघन्य और उत्कृष्ट कालस्थिति का निरूपण किया गया है।

**३. एक जीव की अपेक्षा अंतर** — एक जीव का गति आदि मार्गणाओं के प्रत्येक अवान्तर भेद से

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल-विरहकाल कितने समय का होता है?

४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय — भंग-प्रभेद, विचय-विचारणा, इस अधिकार में भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीव नियम से रहते हैं या कभी रहते हैं या कभी नहीं भी रहते हैं, इत्यादि विवेचना है।

५. द्रव्यप्रमाणानुगम — भिन्न-भिन्न मार्गणाओं में जीवों का संख्यात, असंख्यात और अनंतरूप से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी आदि काल प्रमाणों की अपेक्षा वर्णन है।

६. क्षेत्रानुगम — सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक, इन पाँचों लोकों के आश्रय से स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, सात समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र की प्ररूपणा की गई है।

७. स्पर्शनानुगम — चौदह मार्गणाओं में सामान्य आदि पाँचों लोकों की अपेक्षा वर्तमान और अतीतकाल के निवास को दिखाया है।

८. नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम — नाना जीवों की अपेक्षा अनादि अनंत, अनादिसांत, सादि अनंत और सादि सान्त काल भेदों को लक्ष्य करके जीवों की काल प्ररूपणा की गई है।

९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम — मार्गणाओं में नाना जीवों की अपेक्षा बंधकों के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल का निरूपण किया गया है।

१०. भागाभागानुगम — इसमें मार्गणाओं के अनुसार सर्वजीवों की अपेक्षा बंधकों के भागाभाग का वर्णन है।

११. अल्पबहुत्वानुगम — चौदह मार्गणाओं के आश्रय से जीवसमासों का तुलनात्मक प्रमाण प्ररूपित किया है।

अनन्तर चूलिकारूप 'महादण्डक' अधिकार में गर्भोपक्रांतिक मनुष्य पर्याप्त से लेकर निगोद जीवों तक के जीवसमासों का 'अल्पबहुत्व' निरूपित है।

इस प्रकार क्रमशः इस द्वितीय खण्ड में सूत्रों की संख्या —

४३+९१+२१६+१५१+२२+१७१+१२४+२७४+५५+६८+८८+२०५+७९=१५९४ है।

मेरे द्वारा सिद्धांतचिंतामणि टीका में पृष्ठ संख्या — २८१ है।

महत्वपूर्ण विषय — इस ग्रंथ में एक महत्वपूर्ण विषय आया है, जिसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —

“बादरणिगोदपदिद्विदअपदिद्विदाणमेत्थ सुत्ते वणप्फदिसण्णा किण्ण णिहिट्ठा?

गोदमो एत्थ पुच्छेयत्त्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिद्विदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ।”

शंका — वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त जीवों के वनस्पति संज्ञा देखी जाती है। बादरनिगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में 'वनस्पतिसंज्ञा' क्यों नहीं निर्दिष्ट की?

समाधान — 'गौतम गणधर से पूछना चाहिए।' गौतम गणधरदेव बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों की वनस्पति संज्ञा नहीं मानते। हमने यहाँ उनका अभिप्राय व्यक्त किया है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सूत्रों में जैन ग्रंथों में दो मत आये हैं वहाँ टीकाकारों ने अपना अभिमत न देकर दोनों ही रख दिये हैं।



इस ग्रंथ की टीका का समापन मैंने हस्तिनापुर में 'रत्नत्रयनिलयवसतिका' में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी, वीर नि. संवत् २५२४, दिनांक-१२-१२-१९९७ को पूर्ण की है।

उसकी संक्षिप्त प्रशस्ति इस प्रकार है —

वीराब्दे दिग्द्विखट्वयंके, शांतिनाथस्य सन्मुखे। रत्नत्रयनिलयेऽस्मिन्, हस्तिनागपुराभिधे ॥१॥

षट्खण्डागमग्रंथेऽस्मिन्, खण्डद्वितीयकस्य हि। क्षुद्रकबंधनाम्नोऽस्य, टीकेयं पर्यपूर्णत ॥२॥

गणिन्या ज्ञानमत्येयं, टीकाग्रन्थश्च भूतले। जीयात् ज्ञानर्द्धये भूयात् भव्यानां मे च संततम् ॥३॥

### तृतीय खण्ड — बंधस्वामित्वविचय

#### पुस्तक ८ —

इस तृतीय खण्ड में नाम के अनुसार ही बंध के स्वामी के बारे में विचार किया गया है। यथा —

“जीवकम्पाणं मिच्छत्तासंजमकसायजोगेहि एयत्तपरिणामो बंधो<sup>१</sup>।”

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम होता है, वह बंध है। और बंध के वियोग को मोक्ष कहते हैं।

बंध के स्वामित्व का विचय — विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये एकार्थक शब्द हैं।

वर्तमान में जो साधु या विद्वान् मिथ्यात्व को बंध में 'अकिंचित्कर' कहते हैं उन्हें इन षट्खण्डागम की पंक्तियों पर ध्यान देना चाहिए। अनेक स्थलों पर आचार्यों ने कहा है — “मिच्छत्तासंजमकसायजोगभेदेण चत्तारि मूलपच्चया<sup>२</sup>।” मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के मूलप्रत्यय — मूलकारण हैं।

यहाँ भी गुणस्थानों में बंध के स्वामी का विचार करके मार्गणाओं में वर्णन किया गया है।

सूत्रों में बंध-अबंध का प्रश्न करके उत्तर दिया है। यथा—“पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है?<sup>३</sup> ॥५॥

सूत्र में ही उत्तर दिया है —

“मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक शुद्ध संयत उपशमक व क्षपक तक पूर्वोक्त ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिक काल के अंतिम समय में जाकर इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं<sup>४</sup> ॥६॥

यहाँ पाँचवें प्रश्नवाचक सूत्र में टीकाकार ने इस सूत्र को देशामर्शक मानकर तेईस पृच्छायें की हैं —

१. यहाँ क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है? २. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है? ३. या क्या दोनों की साथ में व्युच्छित्ति होती है? ४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है? ५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ६. क्या अपने और पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है? ७. क्या सांतर बंध होता है? ८. क्या निरंतर बंध होता है? ९. या क्या सांतर-निरंतर बंध होता है? १०. क्या सनिमित्तक बंध होता है? ११. या क्या अनिमित्तक बंध होता है? १२. क्या गति संयुक्तबंध होती है? १३. या क्या गति संयोग से रहित बंध होता है? १४. कितनी गति वाले जीव स्वामी हैं? १५. और कितनी गति वाले स्वामी नहीं हैं? १६. बंधाध्वान कितना है — बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस

१-२. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. २-१६१।

३-४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ८, पृ. ७-१३।

गुणस्थान तक है? १७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? १८. क्या प्रथम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? १९. या अप्रथम अचरिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है? २०. क्या बंध सादि है? २१. या क्या अनादि है? २२. क्या बंध ध्रुव ही होता है? २३. या क्या अध्रुव होता है?

इस प्रकार ये २३ पृच्छायें पूछी गई इस पृच्छा में अंतर्भूत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

पुनः इनका उत्तर दिया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल ३२४ सूत्र हैं।

इस ग्रंथ की संस्कृत टीका मैंने मार्गशीर्ष कृ. १३ को (दिनांक १२-१२-९७) हस्तिनापुर में प्रारंभ की थी। उस समय 'श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' की योजना बनाई थी। भगवान् ऋषभदेव का धातु का एक सुंदर ८'x८' फुट का समवसरण बनवाया गया था। इसके उद्घाटन की तैयारियाँ चल रही थीं। इसी संदर्भ में मैंने मंगलाचरण में तीन श्लोक लिखे थे। यथा —

सिद्धान् नष्टाष्टकर्माग्निन्, नत्वा स्वकर्महानये। बंधस्वामित्वविचयो, ग्रंथः संकीर्त्यते मया॥१॥

श्रीमत्-ऋषभदेवस्य, श्रीविहारोऽस्ति सौख्यकृत्। जगत्यां सर्वजीवाना-मतो देव! जयत्विह॥२॥

यास्त्यनन्तार्थगर्भस्था, द्रव्यभावश्रुतान्विता। सापि सूत्रार्थयुङ्मान्ये! श्रुतदेवि! प्रसीद नः॥३॥

पुनः दिल्ली में मैंने द्वि. ज्येष्ठ शु. ५ श्रुतपंचमी वीर नि.सं. २५२५ को (दि. १८-६-१९९९ को) डेढ़ वर्ष में प्रीतविहार में श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में पूर्ण किया है।

इस ग्रंथ के अंत में मैंने ध्यान करने के लिए १४८ कर्मप्रकृतियों से विरहित १४८ सूत्र बनाये हैं। यथा —

“मतिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम् ॥१॥

पूर्णता का अंतिम श्लोक —

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।

श्री शांतिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम् ॥८॥

इस प्रकार संक्षेप में इस तृतीय खण्ड का सार दिया है।

### चतुर्थ — वेदना खण्ड

#### पुस्तक १ —

इस चतुर्थ और पंचम खण्ड में जो विषय विभाजित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है —

अग्रायणीय पूर्व के अर्थाधिकार चौदह हैं — १. पूर्वात २. अपरान्त ३. ध्रुव ४. अध्रुव ५. चयनलब्धि ६. अध्रुवसंप्रणिधान ७. कल्प ८. अर्थ ९. भौमावयाद्य, १०. कल्पनिर्याण ११. अतीतकाल १२. अनागतकाल १३. सिद्ध और १४. बुद्ध<sup>१</sup>।

यहाँ 'चयनलब्धि' नाम के पाँचवें अधिकार में 'महाकर्म प्रकृतिप्राभृत' संगृहीत है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं। १. कृति २. वेदना ३. स्पर्श ४. कर्म ५. प्रकृति ६. बंधन ७. निबंधन ८. प्रक्रम ९. उपक्रम १०. उदय ११. मोक्ष १२. संक्रम १३. लेश्या १४. लेश्याकर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व १८. भवधारणीय १९. पुद्गलात् २०. निधत्तानिधत्त २१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व<sup>२</sup>।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. २२६। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, सूत्र ४५, पृ. १३४।

इन चौबीस अनुयोगद्वारों को षट्खण्डागम की मुद्रित नवमी पुस्तक से लेकर सोलहवीं तक में 'वेदना' और 'वर्गणा' नाम के दो खंडों में विभक्त किया है। वेदना खण्ड में ९, १०, ११ और १२ ऐसे चार ग्रंथ हैं।

इस नवमी पुस्तक में मात्र प्रथम 'कृति' अनुयोग द्वार ही वर्णित है। छयालिसवें सूत्र में कृति के सात भेद किये हैं —

१. नामकृति २. स्थापनाकृति ३. द्रव्यकृति ४. गणनकृति ५. ग्रन्थकृति ६. करणकृति और ७. भावकृति।

इन कृतियों का विस्तार से वर्णन करके अंत में कहा है कि — यहाँ 'गणनकृति' से प्रयोजन है<sup>१</sup>।

इस ग्रंथ में श्रीभूतबलि आचार्य ने 'णमो जिणाणं' आदि गणधरवलय मंत्र लिए हैं जो कि श्री गौतमस्वामी द्वारा रचित हैं। यहाँ "णमो जिणाणं" से लेकर "णमो वड्डमाणबुद्धरिसिस्स।" चवालीस मंत्र लिए हैं। अन्यत्र 'पाक्षिक प्रतिक्रमण' एवं 'प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी' टीकाग्रंथ तथा भक्तामर स्तोत्र ऋद्धिमंत्र आदि में अड़तालीस मंत्र लिये गये हैं।

इन ४८ मंत्रों को 'श्रीगौतमस्वामी' द्वारा रचित कृतियों में इसी ग्रंथ में दिया गया है।

इस नवमी पुस्तक में टीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने बहुत ही विस्तार से इन मंत्रों का अर्थ स्पष्ट किया है। अनंतर 'सिद्धान्त ग्रंथों' के स्वाध्याय के लिए द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और भावशुद्धि का विवेचन विस्तार से किया है।

इस ग्रंथ की 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका मैंने शरदपूर्णिमा वी.नि.सं. २५२५ को (२४-१०-९९ को) दिल्ली में राजाबाजार के दिगम्बर जैन मंदिर में प्रारंभ की थी।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत गणधरवलय मंत्रों की टीका लिखते समय मुझे एक अपूर्व ही आल्हाद प्राप्त हुआ है। इसकी पूर्णता मैंने आश्विन शु. १५ — शरदपूर्णिमा वीर.नि.सं. २५२६ को (१३-१०-२००० को) दिल्ली में ही प्रीतविहार-श्रीऋषभदेव कमलमंदिर में की है। जिसका अंतिम श्लोक निम्नलिखित है —

“अहिंसा परमो धर्मो, यावद् जगति वत्स्यते।

यावन्मेश्वर टीकेयं, तावन्नद्याच्च नः श्रियै॥१॥

इस प्रकार नवमी पुस्तक का किंचित् सार लिखा गया है।

### पुस्तक १० —

इस ग्रंथ में 'वेदना' नाम का द्वितीय अनुयोगद्वार है। इस वेदनानुयोग द्वार के १६ भेद हैं —

१. वेदनानिक्षेप २. वेदनानयविभाषणता ३. वेदनानामविधान ४. वेदनाद्रव्यविधान ५. वेदनाक्षेत्रविधान ६. वेदनाकालविधान ७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान<sup>२</sup>।

इस दशवीं पुस्तक में प्रारंभ के ४ अनुयोगद्वारों का वर्णन है। सूत्र संख्या २२४ है। आगे ११वीं और १२वीं पुस्तक में सभी वेदनाओं का वर्णन होने से इस तृतीय खण्ड को वेदनाखण्ड कहा है।

यहाँ प्रथम 'वेदना निक्षेप' के भी नामवेदना, स्थापनावेदना, द्रव्यवेदना और भाववेदना ऐसे निक्षेप की अपेक्षा चार भेद हैं।

दूसरे 'वेदनानयविभाषणा' में नयों की अपेक्षा वेदना को घटित किया है। तीसरे 'वेदनानामविधान' के ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की अपेक्षा आठ भेद कर दिये हैं<sup>१</sup>।

वेदना द्रव्यविधान के तीन अधिकार किये हैं — पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इस ग्रंथ में इनका विस्तार से वर्णन है।

आश्विन शु. १५ — शरदपूर्णिमा (१३-१०-२०००) को दिल्ली में मैंने टीका लिखना प्रारंभ किया था। पुनः माघ शु. ५ वी.नि.सं. २५२८ (दि.१७-२-२००२) राजाबाजार दि. जैन मंदिर में पूर्ण किया है। उसमें प्रशस्ति में दो श्लोक उद्धृत हैं —

भारते राजधान्यां हि, जयसिंहपुरेऽधुना। टीका पूर्णकृता सिद्धयै, श्रीचन्द्रप्रभमंदिरे॥१२॥

अष्टद्विपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे पंचमीतिथौ। माघे शुक्लेऽद्य टीका हि, श्रुतभक्त्या प्रपूर्यते॥१३॥

इस प्रकार संक्षिप्त सार दिया गया है।

#### पुस्तक नं. ११ —

इस ग्रंथ में वेदनाक्षेत्रविधान और वेदनाकालविधान इन दो भेदों का विस्तार है। सूत्र संख्या ३७८ है।

वेदनाक्षेत्रविधान के भी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ऐसे तीन भेद किये हैं। पुनः वेदनाकालविधान के भी पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व भेद करके विस्तार से कथन किया है। आगे प्रथम चूलिका और द्वितीय चूलिका भेद करके विषय को विशद किया है।

इस ग्रन्थ की टीका मैंने कुण्डलपुर तीर्थ विकास के लिए दिल्ली से विहार करके मार्ग में आगरा शहर में चैत्र कृ. १ वी.सं. २५२८ (२९-३-२००२) को प्रारंभ किया था। पुनः प्रयाग में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली' तीर्थ पर आश्विन शु. १५ — शरदपूर्णिमा, (२१-१०-२००२) को पूर्ण की है।

अंतिम श्लोक में लिखा है —

यावत् श्रीजैनधर्मोऽयं, यावन्मेरुकुलाचलाः।

तावद् ग्रन्थोऽप्ययं स्थेयात्, भव्यानां मंगलं क्रियात् ॥११॥

इस प्रकार संक्षेप में सार दिया है।

#### पुस्तक १२ —

इस ग्रन्थ में वेदनाअनुयोगद्वार के १६ भेदों में से ७वें से लेकर १६वें तक भेद वर्णित हैं —

७. वेदनाभावविधान ८. वेदनाप्रत्ययविधान ९. वेदनास्वामित्वविधान १०. वेदनावेदनाविधान ११. वेदनागतिविधान १२. वेदनाअनंतरविधान १३. वेदनासन्निकर्षविधान १४. वेदनापरिमाणविधान १५. वेदनाभागाभागविधान और १६. वेदनाअल्पबहुत्वविधान।

इन दश वेदना अनुयोगद्वारों का इस ग्रंथ में विस्तार से वर्णन है। इसमें सूत्र संख्या ५३३ है।

इसमें प्रथम 'वेदनाभावविधान' में पदमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ये तीन अधिकार हैं। आगे चलकर प्रथम, द्वितीय और तृतीय ऐसी तीन चूलिकाएं हैं।

पुनश्च 'वेदनाप्रत्ययविधान' में जीवहिंसा, असत्य आदि प्रत्यय — निमित्त से ज्ञानावरण आदि कर्मों की १. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १०, पृ. १३।

वेदना होती है। जैसे कि —

**मुसावादपच्चए॥३॥**

.....मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और प्रमाद से उत्पन्न वचनसमूह असत् वचन है इत्यादि।

ऐसे संपूर्ण वेदनाओं का वर्णन किया गया है।

इस ग्रंथ की टीका मैंने 'तीर्थकर ऋषभदेवतपस्थली' प्रयाग (इलाहाबाद) में शरदपूर्णिमा के दिन ही शुरू की थी पुनः यहाँ कुण्डलपुर तीर्थ पर पौष कृ. ११ वी.नि.सं. २५३० के दिन पूर्ण की है। इसी संदर्भ में मैंने लिखा है —

अस्यां पौषकृष्णैकादश्यां तिथौ काशीदेशे वाराणस्यां नगर्या महानृपतेः अश्वसेनस्य महाराज्यः वामादेव्यो गर्भात् भगवान् पार्श्वनाथो जज्ञे। उग्रवंशशिरोमणिः मरकतमणिसन्निभः त्रयस्त्रिंशत्तमस्तीर्थकरोऽयं अस्मात् वीरनिर्वाणसंवत्सरात् द्विसहस्र-अष्टशताशीतिवर्षपूर्वं अवततार।

उक्तं च तिलोपपण्णत्तिग्रंथे —

अट्टत्तरिअधियाए वेसदपरिमाणवासअदिरित्ते।

पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्तीवड्डमाणस्स ॥५७७॥

भगवान् पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के २७८ वर्ष बाद वर्धमान भगवान् की उत्पत्ति हुई है अतः २७८ में भगवान् महावीर को जन्म लिये २६०२ वर्ष हुए वह संख्या जोड़ देने से २७८+२६०२=२८८० वर्ष हो गये अतः मैंने यह घोषणा की थी कि आगे आने वाले पौष कृ. ११ (६-१-२००५) को भगवान् पार्श्वनाथ का 'तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' प्रारंभ करें पुनः एक वर्ष तक सारे भारत में भगवान् पार्श्वनाथ का गुणगान करें।

इस प्रकार इस बारहवीं पुस्तक का विषय संक्षेप में लिखा है।

### पंचम खण्ड — वर्गणाखण्ड

#### पुस्तक १३ —

नवमी पुस्तक में चयनलब्धि के 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' के 'कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति आदि चौबीस अनुयोगद्वार कहे गये हैं। वेदना खण्ड में मात्र 'कृति और वेदना' ये दो अनुयोग द्वार आये हैं। शेष २२ अनुयोगद्वार इस 'वर्गणाखण्ड' नाम के पांचवे खण्ड में वर्णित हैं। इस खण्ड में भी १३वीं, १४वीं, १५वीं एवं १६वीं ऐसी चार पुस्तके हैं। इस खण्ड में 'बंधनीय' का आलंबन लेकर वर्गणाओं का सविस्तार वर्णन किया गया है अतः इसे 'वर्गणाखण्ड' नाम दिया है।

इस तेरहवीं पुस्तक में 'स्पर्श, कर्म और प्रकृति' इन तीन अनुयोगद्वारों का वर्णन है।

इसमें 'स्पर्श अनुयोगद्वार' के सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्शस्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्शअनंतरविधान, स्पर्शसन्निकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान, स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्शअल्पबहुत्व।<sup>१</sup>

पुनश्च प्रथम भेद 'स्पर्शनिक्षेप' के १३ भेद किये हैं — नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनंतरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बंधस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श<sup>२</sup>।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १२, पृ. २७९। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र २।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४।

इस तेरहवें ग्रंथ में सूत्र की टीका के अनंतर मैंने प्रायः 'तात्पर्यार्थ' दिया है। जैसे कि — स्पर्श अनुयोगद्वार में सूत्र २६ में टीका के अनंतर लिखा है।

“अत्र तात्पर्यमेतत्-अष्टसु कर्मसु मोहनीयकर्म एव संसारस्य मूलकारणमस्ति। दर्शनमोहनीयनिमित्तेन जीवा मिथ्यात्वस्य वंशगताः सन्तः अनादिसंसारे परिभ्रमन्ति। चारित्रमोहनीयबलेन तु असंयताः सन्तः कर्माणि बध्नन्ति।

उक्तं च श्री पूज्यपादस्वामिना —

बध्यते मुच्यते जीवः सममः निर्ममः क्रमात् ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥

एतज्ज्ञात्वा कर्मस्पर्शकारणभूतमोहरागद्वेषादिविभावभावान् व्यक्त्वा स्वस्मिन् स्वभावे स्थिरीभूय स्वस्थो भवन् स्वात्मोत्थपरमानंदामृतं सुखमनुभवनीयमिति।”

कर्म अनुयोगद्वार में भी प्रथम ही १६ अनुयोगद्वाररूप भेद कहे हैं — कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता, कर्मनाम विधान आदि। पुनश्च कर्मनिक्षेप के दश भेद किये हैं—नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अव्यःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म।

इसमें 'तपःकर्म' के बारह भेदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'क्रियाकर्म' में —

“तमादाहीणं पदाहीणं तिक्रुत्तं तियोणदं, चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम” ॥२८॥”

यह क्रियाकर्म विधिवत् सामायिक — देववंदना में घटित होता है। इसी सूत्र को उद्धृत करके अनगारधर्मावृत, चारित्रसार आदि ग्रंथों में साधुओं की सामायिक को 'देववंदना' रूप में सिद्ध किया है। इसका स्पष्टीकरण मूलाचार, आचारसार आदि ग्रंथों में भी है। 'क्रियाकलाप' जिसका संपादन पं. पन्नालाल सोनी ब्यावर वालों ने किया था उसमें तथा मेरे द्वारा संकलित (लिखित) 'मुनिचर्या' में भी यह विधि सविस्तार वर्णित है। इन प्रकरणों को लिखते हुए, पढ़ते हुए मुझे एक अद्भुत ही आनंद का अनुभव हुआ है।

तृतीय 'प्रकृति' अनुयोगद्वार में भी सोलह अधिकार कहे हैं — प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान आदि।

इसमें प्रथम प्रकृतिनिक्षेप के चार भेद किये हैं — नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति।

इसमें द्रव्यप्रकृति के दो भेद हैं — आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति। नोआगमद्रव्यप्रकृति के भी दो भेद हैं — कर्मप्रकृति और नोकर्म प्रकृति।

कर्मप्रकृति के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म प्रकृति।

इस तेरहवीं पुस्तक में प्रकृति अनुयोगद्वार में व्यंजनावग्रहावरणीय के ४ भेद किये हैं। धवला टीका में श्री वीरसेनस्वामी ने श्रोत्रेन्द्रिय के विषयभूत शब्दों के अनेक भेद करके कहा है —

“सहपोग्गला सगुप्पत्तिपदेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्सेण जाव लोगंतं ताव गच्छंति।

कुदो एदं णव्वदे?

सुत्ताविरूद्धाइरियवयणादो। ते किं सव्वे सहपोग्गला लोगंतं गच्छंति आहो ण सव्वे इति

पुच्छिदे सव्वे ण गच्छंति, थोवा चेव गच्छंति।.....

जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि त्ति उवदेसादो<sup>१</sup>।''

शब्द पुद्गल अपने उत्पत्ति प्रदेश से उछलकर दशों दिशाओं में जाते हुए उत्कृष्टरूप से लोक के अंतभाग तक जाते हैं।

यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

यह सूत्र के अवरुद्ध व्याख्यान करने वाले आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

क्या वे सब शब्दपुद्गल लोक के अंत तक जाते हैं या सब नहीं जाते?

सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा—शब्द पर्याय से परिणत हुए प्रदेश में अनंत पुद्गल अवस्थित रहते हैं। दूसरे आकाश प्रदेश में उनसे अनंतगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं।

इस तरह वे अनंतरोपनिधा की अपेक्षा वातवलयपर्यंत सब दिशाओं में उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश के प्रति अनंतगुणे हीन होते हुए जाते हैं।

आगे क्यों नहीं जाते?

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वे वातवलय के आगे नहीं जाते हैं। ये सब शब्द पुद्गल एक समय में ही लोक के अंत तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द पुद्गल कम से कम दो समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल के द्वारा लोक के अंत को प्राप्त होते हैं।

अष्टसहस्री ग्रंथ में भी शब्द पुद्गलों का आना पकड़ना, टकराना आदि सिद्ध किया है। क्योंकि ये पौद्गलिक हैं—पुद्गल की पर्याय हैं।

इन सभी प्रकरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि—

आज जो शब्द टेलीविजन—दूरदर्शन, रेडियो—आकाशवाणी, टेलीफोन—दूरभाष आदि के द्वारा हजारों किमी. दूर से सुने जाते हैं। टेलीफोन से कई हजार किमी. दूर से वार्तालाप किया जाता है। टेपेकार्ड, वी.डी.ओ. आदि में भरे जाते हैं, महीनों, वर्षों तक ज्यों की त्यों सुने जाते हैं। यह सब पौद्गलिक चमत्कार है।

वास्तव में ये शब्द मुख से निकलने के बाद लोक के अंत तक फैल जाते हैं। इसीलिए इनका पकड़ना, दूर तक पहुँचाना, भेजना, यंत्रों में भर लेना आदि संभव है।

इन्हीं भावनाओं के अनुसार मैंने ३० वर्ष पूर्व भगवान 'शांतिनाथ स्तुति' में यह उद्गार लिखे थे। यथा—

सुभक्तिवरयंत्रतः स्फुटरवा ध्वनिक्षेपकात्। सुदूरजिनपार्श्वगा भगवतःस्पृशन्ति क्षणात्।

पुनः पतनशीलतोऽवपतिता नु ते स्पर्शनात्। भवन्त्यभिमतार्थदाः स्तुतिफलं ततश्चाप्यते<sup>२</sup>॥२०॥

हे भगवन्! आपकी श्रेष्ठ भक्ति वो ही हुआ ध्वनिविक्षेपण यंत्र (रेडियो आदि) उससे स्फुट—प्रगट हुई शब्द वर्गणाएं बहुत ही दूर सिद्धालय में—लोक के अग्रभाग में विराजमान आपके पास जाती हैं और वहाँ आपका स्पर्श करती हैं। पुनः पुद्गलमयी शब्दवर्गणायें पतनशील होने से यहाँ आकर—भक्त के पास आकर आपसे स्पर्शित होने से ही भव्यजीवों के मनोरथ को सफल कर देती हैं, यही कारण है कि इस लोक में स्तुति का फल पाया जाता है अन्यथा नहीं पाया जा सकता था।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २२२।

२. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से प्रकाशित) पृ. १५१।

इसमें ज्ञानावरण के अंतर्गत श्रुतज्ञानावरण के विषय में कहते हुए 'श्रुतज्ञान' के विषय में बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है।

प्रश्न हुआ है — “श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की कितनी प्रकृतियाँ हैं?

उत्तर दिया है — श्रुतज्ञानावरणीय कर्म की संख्यात प्रकृतियाँ हैं।

जितने अक्षर हैं और जितने अक्षर संयोग हैं उतनी प्रकृतियाँ हैं।”

पुनश्च — श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के बीस भेद किये हैं — पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, आदि से पूर्वसमासावरणीय पर्यंत ये बीस भेद हैं।<sup>१</sup> इनसे पहले श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं, जिनके ये आवरण हैं।

उन श्रुतज्ञान के नाम — पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास, ये श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं।

इस ग्रंथ की टीका के लेखन में मैंने जो परम आल्हाद प्राप्त किया है वह मेरे जीवन में अचिन्त्य ही रहा है।

एक तो षट्खण्डागमरूपी परम ग्रंथराज, दूसरे श्रीभूतबलि, महान आचार्य के सूत्र, तीसरे श्रीवीरसेनाचार्य की धवला टीका और चौथा भगवान महावीर तीर्थ त्रिवेणी का संगम। यही कारण है कि यह ग्रंथ मेरा यहाँ 'तीर्थ त्रिवेणी संगम' में अतिशीघ्र मात्र नव माह में पूर्ण हुआ है।

इस ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य ने अगणित रत्न भर दिये हैं। यथा — ‘श्रुतज्ञानमन्तरेण चारित्रानुत्पत्तेः।’

“द्वादशांगस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राविनाभाविनो मोक्षमार्गत्वेनाभ्युपगमात्।

श्रुतज्ञान के बिना चारित्र की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए चारित्र की अपेक्षा श्रुत की प्रधानता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के अविनाभावी द्वादशांग को मोक्षमार्गरूप से स्वीकार किया गया है।

यहाँ पर ५०वें सूत्र में श्रुतज्ञान के इकतालीस (४१) पर्याय शब्द बताये हैं। जैसे — प्रावचन, प्रवचनीय आदि।

इस ग्रंथ में श्रुतज्ञान के पर्याय, पर्यायसमास आदि बीस भेद किये हैं और उन्हीं का विस्तार किया है।

तब प्रश्न यह हुआ है कि — उन्नीसवां 'पूर्व' और बीसवां 'पूर्वसमास' भेद तो इन बीस भेदों में आ गया है पुनः —

अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचारांग आदि ग्यारह अंग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका, इनका किस श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव होगा?

तब श्रीवीरसेनस्वामी ने समाधान दिया है कि —

इनका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास में अंतर्भाव होता है अथवा प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान में इनका अंतर्भाव कहना चाहिए। परंतु पश्चादानुपूर्वी की विवक्षा करने पर इनका 'पूर्वसमास' श्रुतज्ञान में अंतर्भाव होता है, ऐसा कहना चाहिए<sup>३</sup>।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४३-४४-४५, पृ. २४५ से। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, सूत्र ४८, पृ. २६१। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १३, पृ. २७६।



इस प्रकार इस ग्रंथ में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान का बहुत ही सुन्दर विवेचन है। अनंतर सर्व कर्मों का वर्णन करके अंत में कहा है कि यहाँ 'कर्म प्रकृति' से ही प्रयोजन है।

यहाँ तक इन १३ ग्रंथों में ५६३० सूत्रों की मेरे द्वारा लिखित संस्कृत टीका के पृष्ठों की संख्या-  
 $२८१+१९१+१४०+८३+१२४+२८७+२५७=१३५६+९४८=२३०४$  है।

इस प्रकार संक्षेप में इस ग्रंथ का सार दिया है।

### पुस्तक १४—

इस ग्रंथ में 'कृति, वेदना' आदि २४ अनुयोगद्वारों में से छठे बंधन अनुयोगद्वार का निरूपण है। सूत्र संख्या ७९७ है। इसमें बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान ये भेद किये हैं। पुनश्च बंध के नाम बंध, स्थापनाबंध, द्रव्यबंध और भावबंध ये चार भेद कहे हैं।

भावबंध के आगमभावबंध और नोआगमभावबंध दो भेद हैं।

आगम भावबंध के स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रंथसम, नामसम और घोषसम ये नव भेद हैं। इनके विषय में वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनसे लेकर जो अन्य उपयोग हैं उनमें भावरूप से जितने उपयुक्त भाव हैं वे सब आगमभावबंध हैं।<sup>१</sup>

नोआगमभावबंध के भी दो भेद हैं—जीव भावबंध और अजीव भावबंध।

इनमें से जीवभावबंध के ३ भेद हैं—विपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध, अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और तदुभयप्रत्ययिकजीवभावबंध।

इनमें देवभाव, मनुष्यभाव आदि विपाकप्रत्ययिक जीव भावबंध हैं।

अविपाकप्रत्ययिक जीवभावबंध के औपशमिक अविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध और क्षायिकअविपाकप्रत्ययिकजीवभावबंध, ऐसे दो भेद हैं।

औपशमिक के उपशांत क्रोध, उपशांत मान आदि भेद हैं।

क्षायिक के क्षीणक्रोध, क्षीणमान आदि भेद हैं।

तदुभयप्रत्ययिक जीवभावबंध के क्षायोपशमिक एकेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक द्वीन्द्रियलब्धि आदि बहुत भेद हैं।

इस प्रकार सूत्र १३ से १९ तक इन सबका विस्तार है।

ऐसे ही अजीव भावबंध के भी तीन भेद हैं—विपाकप्रत्ययिक, अविपाकप्रत्ययिक और तदुभयप्रत्ययिक अजीवभावबंध। विपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोगपरिणतवर्ण, प्रयोगपरिणतशब्द आदि भेद हैं।

अविपाकप्रत्ययिक अजीव भावबंध के विस्त्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

तथा तदुभयप्रत्ययिक अजीव भावबंध के प्रयोग परिणत वर्ण और विस्त्रसापरिणतवर्ण आदि भेद हैं।

इसके अनंतर द्रव्यबंध के आगम, नोआगम आदि भेद प्रभेद किये हैं।

इस प्रकार 'बंध' भेद का प्ररूपण किया गया है।

अनंतर 'बंधक' अधिकार में मार्गणाओं में बंधक-अबंधक को विचार करने का कथन है।

अनंतर—

बंधनीय के प्रकरण में — वेदनस्वरूप पुद्गल है, पुद्गल स्कंधस्वरूप हैं और स्कंध वर्गणा स्वरूप हैं<sup>१</sup>, ऐसा कहा है।

वर्गणाओं का अनुगमन करते हुए आठ अनुयोग द्वार ज्ञातव्य हैं —

वर्गणा, वर्गणाद्रव्य समुदाहार, अनंतरोपनिधा, परंपरोपनिधा, अवहार, यवमध्य, पदमीमांसा और अल्पबहुत्व।

वर्गणा के प्रकरण होने से यहां वर्गणा के १६ अनुयोगद्वार बताये हैं— १. वर्गणा निक्षेप २. वर्गणानयविभाषणता ३. वर्गणाप्ररूपणा ४. वर्गणानिरूपणा ५. वर्गणाध्रुवाध्रुवानुगम ६. वर्गणासांतरनिरंतरानुगम ७. वर्गणाओजयुग्मानुगम ८. वर्गणाक्षेत्रानुगम ९. वर्गणास्पर्शनानुगम १०. वर्गणाकालानुगम ११. वर्गणाअनंतरानुगम १२. वर्गणाभावानुगम १३. वर्गणाउपनयनानुगम १४. वर्गणापरिमाणानुगम १५. वर्गणाभागाभागानुगम और १६. वर्गणा अल्पबहुत्वानुगम<sup>२</sup>।

इन सबका विस्तार करके अंत में ७९७वें सूत्र में 'बंध विधान' के चार भेद किये हैं — प्रकृतिबंध, स्थितिबंध अनुभागबंध और प्रदेशबंध। ७९७।

इस सूत्र की टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने कह दिया है कि — 'श्री भूतबलिभट्टारक' ने 'महाबंध' खण्ड में इन चारों भेदों को विस्तार से लिखा है अतः मैंने यहाँ नहीं लिखा है। यथा —

यहाँ 'भट्टारक' पद से महान पूज्य अर्थ विवक्षित है। ये भूतबलि आचार्य महान् दिगम्बर आचार्य थे, ऐसा समझना।

“एदेसिं चदुण्णं बंधाणं विहाणं भूदबलिभडारएण महाबंधे सप्पवंचेण लिहिदं त्ति अम्मेहिं एत्थ ण लिहिदं। तदो सयले महाबंधे एत्थ परूविदे बंधविहाणं समप्पदि<sup>३</sup>।”

इस प्रकार अतिसंक्षेप में इस ग्रंथ का सार दिया है।

#### पुस्तक १५ —

इस ग्रंथ में चौबीस अनुयोगद्वारों में से ७वाँ निबंधन, ८वाँ प्रक्रम, ९वाँ उपक्रम, १०वाँ उदय इन चार अनुयोगद्वारों का कथन है। सूत्र संख्या २० है। यह 'निबंधन' अनुयोगद्वार तक है।

आगे प्रक्रम, उपक्रम और उदय अनुयोगद्वारों में सूत्रसंख्या नहीं मिल पायी है।

इसमें मंगलाचरण में श्रीवीरसेनाचार्य ने प्रथम निबंधन अनुयोगद्वार में 'श्री अरिष्टनेमि' भगवान को नमस्कार किया है।

द्वितीय 'प्रक्रम' अनुयोग द्वार में श्री शांतिनाथ भगवान को, तृतीय 'उपक्रम' अनुयोगद्वार में श्री अभिनंदन भगवान को एवं चौथे 'उदय' अनुयोगद्वार में पुनरपि श्रीशांतिनाथ भगवान को नमस्कार किया है।

निबंधन — 'निबध्यते तदस्मिन्निति निबंधनम्' इस निरुक्ति के अनुसार जो द्रव्य जिसमें संबद्ध है उसे 'निबंधन' कहा जाता है। उसके नाम निबंधन, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावनिबंधन ऐसे छह भेद हैं।

इनमें से नाम, स्थापना को छोड़कर शेष सब निबंधन प्रकृत हैं। यह निबंधन अनुयोगद्वार यद्यपि छहों द्रव्यों के निबंधन की प्ररूपणा करता है तो भी यहाँ उसे छोड़कर कर्मनिबंधन को ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ अध्यात्म विद्या का अधिकार<sup>३</sup> है।

**प्रश्न —** निबंधनानुयोगद्वार किसलिए आया है?

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७०, पृ. ५१। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) सूत्र ७९७ पृ. ५६४। ३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३।

**उत्तर**—द्रव्य, क्षेत्र, काल और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है, उनके मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगरूप प्रत्ययों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है तथा उन कर्मों के योग्य पुद्गलों की भी प्ररूपणा की जा चुकी है। आत्मलाभ को प्राप्त हुए उन कर्मों के व्यापार का कथन करने के लिए निबंधनानुयोग द्वारा आया है<sup>१</sup>।

उनमें मूलकर्म आठ हैं, उनके निबंधन का उदाहरण देखिये — “उनमें ज्ञानावरण सब द्रव्यों में निबद्ध है और नो सर्वपर्यायों में अर्थात् असर्वपर्यायों में — कुछ पर्यायों में वह निबद्ध है<sup>२</sup>॥१॥”

यहाँ ‘सब द्रव्यों में निबद्ध है’ यह केवल ज्ञानावरण का आश्रय करके कहा गया है। क्योंकि वह तीनों कालों को विषय करने वाली अनंत पर्यायों से परिपूर्ण ऐसे छह द्रव्यों को विषय करने वाले केवलज्ञान का विरोध करने वाली प्रकृति है। ‘असर्व — कुछ पर्यायों में निबद्ध है’ यह कथन शेष चार ज्ञानावरणीय प्रकृतियों की अपेक्षा कहा गया है।

इत्यादि विषयों का इस अनुयोग में विस्तार है।

२. प्रक्रम अनुयोगद्वार के भी नाम, स्थापना आदि की अपेक्षा छह भेद हैं। द्रव्य प्रक्रम के प्रभेदों में कर्म प्रक्रम आठ प्रकार का है। नोकर्म प्रक्रम सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का है।

क्षेत्रप्रक्रम ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोकप्रक्रम के भेद से तीन प्रकार का है। इत्यादि विस्तार को धवला टीका से समझना चाहिए।

३. उपक्रम अनुयोगद्वार में भी पहले नाम, स्थापना आदि से छह भेद किये हैं पुनः द्रव्य उपक्रम के भेद में कर्मोपक्रम के आठ भेद, नो कर्मोपक्रम के सचित्त, अचित्त और मिश्र की अपेक्षा तीन भेद हैं पुनः क्षेत्रोपक्रम — जैसे ऊर्ध्वलोक उपक्रांत हुआ, ग्राम उपक्रांत हुआ व नगर उपक्रांत हुआ आदि।

काल उपक्रम में — बसंत उपक्रांत हुआ, हेमंत उपक्रांत हुआ आदि। यहाँ ग्रंथ में कर्मोपक्रम प्रकृत होने से उसके चार भेद हैं — बंधन उपक्रम, उदीरणा उपक्रम, उपशामना उपक्रम और विपरिणाम उपक्रम।

इसी प्रकार इन सबका इस अनुयोगद्वार में विस्तार है।

४. उदय अनुयोगद्वार में नामादि छह निक्षेप घटित करके ‘नोआगमकर्मद्रव्य उदय’ प्रकृत है, ऐसा समझना चाहिए।

वह कर्मद्रव्य उदय चार प्रकार का है — प्रकृति उदय, स्थितिउदय, अनुभाग उदय और प्रदेश उदय।

इन सभी में स्वामित्व की प्ररूपणा करते हुए कहते हैं। जैसे —

**प्रश्न** — पांच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अंतराय इनके वेदक कौन हैं?

**उत्तर** — इनके वेदक सभी छद्मस्थ जीव होते हैं।<sup>३</sup> इत्यादि। इस प्रकार से यहाँ संक्षेप में इन अनुयोगद्वारों के नमूने प्रस्तुत किये हैं।

**पुस्तक १६ —**

‘कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बंधन, निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय ये दश अनुयोगद्वार नवमी पुस्तक से पंद्रहवीं पुस्तक तक आ चुके हैं। अब आगे के ११. मोक्ष, १२. संक्रम, १३. लेश्या, १४. लेश्या कर्म १५. लेश्या परिणाम १६. सातासात १७. दीर्घ-ह्रस्व, १८. भवधारणीय, १९. पुद्गलात् २०. निधत्तानिधत्त

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. ३। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १, पृ. ४।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १५, पृ. २८५।

२१. निकाचितानिकाचित २२. कर्मस्थिति २३. पश्चिमस्कंध और २४. अल्पबहुत्व ये १४ अनुयोगद्वारा शेष हैं। इस सोलहवीं पुस्तक में इन सबका वर्णन है।

इस ग्रंथ में सूत्र नहीं हैं, मात्र धवला टीका में ही इन अनुयोगद्वारों का विस्तार है।

**१. मोक्ष**—इसमें श्री मल्लिनाथ भगवान को नमस्कार करके टीकाकार ने मोक्ष के चार निक्षेप कहकर नो आगम द्रव्यमोक्ष के तीन भेद किये हैं—मोक्ष, मोक्षकरण और मुक्त।

जीव और कर्मों का पृथक् होना मोक्ष है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य ये मोक्ष के कारण हैं। समस्त कर्मों से रहित अनंत दर्शन, ज्ञान आदि गुणों से परिपूर्ण, कृतकृत्य जीव को मुक्त कहा गया है।<sup>१</sup>

**२. संक्रम**—अनुयोग द्वार के भी छह भेद करके पुनः कर्मसंक्रम के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश संक्रम भेद किये हैं।

विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है कि—चार आयु कर्मों का संक्रम नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। आदि।

**३. लेश्या**—इसके भी नाम लेश्या, स्थापना लेश्या, द्रव्यलेश्या और भावलेश्या भेद किये हैं।

कर्म पुद्गलों के ग्रहण में कारणभूत जो मिथ्यात्व, असंयम और कषाय से अनुरंजित योग प्रवृत्ति होती है उसे नो आगमभाव लेश्या कहते हैं।<sup>२</sup>

भावलेश्या के कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह भेद हैं।

**४. लेश्याकर्म**—इसमें छहों लेश्याओं के लक्षण—‘चंडो ण मुवइ वेरं’ इत्यादि बताये गये हैं।

**५. लेश्यापरिणाम**—कौन लेश्याएं किस स्वरूप से और किस वृद्धि अथवा हानि के द्वारा परिणमन करती हैं, इस बात के ज्ञापनार्थ ‘लेश्या परिणाम’ अनुयोगद्वारा प्राप्त हुआ है।

इसमें ‘षट्स्थान पतित’ का स्वरूप कहा गया है।

**६. सातासात अनुयोगद्वार**—इसके समुत्कीर्तना, अर्थपद, परमीमांसा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व, ऐसे पांच अवान्तर अनुयोगद्वार हैं। समुत्कीर्तना में—एकांत सात, अनेकांत सात, एकांत असात और अनेकांत असात।

अर्थ पद में—सातास्वरूप से बांधा गया जो कर्म संक्षेप व प्रतिक्षेप से रहित होकर साता स्वरूप से वेदा जाता है वह एकांतसात है। इससे विपरीत अनेकांत सात है<sup>३</sup> इत्यादि।

**७. दीर्घ-ह्रस्व**—इन अनुयोगद्वार के भी चार भेद हैं—प्रकृतिदीर्घ, स्थितिदीर्घ, अनुभागदीर्घ और प्रदेशदीर्घ।

आठ प्रकृतियों का बंध होने पर प्रकृति दीर्घ और उनसे कम का बंध होने पर नो प्रकृतिदीर्घ होता है<sup>४</sup>।

ऐसे ही ह्रस्व में प्रकृति ह्रस्व, स्थिति ह्रस्व आदि चार भेद हैं।

एक-एक प्रकृति को बांधने वाले के प्रकृति ह्रस्व है इत्यादि।

**८. भवधारणीय**—इस अनुयोगद्वार में भव के तीन भेद हैं—ओघभव, आदेशभव और भवग्रहण भव।

आठ कर्मजनित जीव के परिणाम का नाम ओघभव है। चारगति नामकर्मों का या उनसे उत्पन्न जीव परिणामों को आदेश भव कहते हैं।

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६ । २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४८५।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ४९८। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५०७।

भुज्यमान आयु को निर्जीण करके जिससे अपूर्व आयु कर्म उदय को प्राप्त हुआ है। उसके प्रथम समय में उत्पन्न 'व्यंजन' संज्ञा वाले जीव परिणाम को अथवा पूर्व शरीर के परित्यागपूर्वक उत्तरशरीर के ग्रहण करने को 'भवग्रहणभव' कहा जाता है। उनमें यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है।<sup>१</sup>

**९. पुद्गलात्**— इस अनुयोगद्वार में नाम पुद्गल, स्थापना पुद्गल, द्रव्यपुद्गल और भावपुद्गल ऐसे चार भेद हैं।

यहाँ आत्त-शब्द का अर्थ गृहीत है अतः यहाँ 'पुद्गलात्' पद से आत्मसात् किये गये पुद्गलों का ग्रहण है। वे पुद्गल छह प्रकार से ग्रहण किये जाते हैं—ग्रहण से, परिणाम से, उपभोग से, आहार से, ममत्व से और परिग्रह से। इत्यादि।

**१०. निधत्तानिधत्त**— इस अनुयोगद्वार में भी प्रकृतिनिधत्त, स्थितिनिधत्त, अनुभागनिधत्त और प्रदेशनिधत्त, ऐसे चार भेद हैं।

जो प्रदेशाग्र निधत्तीकृत हैं— अर्थात् उदय में देने के लिए शक्य नहीं है, अन्य प्रकृति में संक्रमण करने के लिए शक्य नहीं है, किन्तु अपकर्षण व उत्कर्षण करने के लिए शक्य हैं ऐसे प्रदेशाग्र की निधत्त संज्ञा है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में प्रविष्ट मुनि के सब कर्म अनिधत्त हैं। इत्यादि।

**११. निकाचितानिकाचित**— इस अनुयोगद्वार में प्रकृति निकाचित आदि चार भेद हैं। जो प्रदेशाग्र, अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण और उदय में देने के लिए भी शक्य नहीं हैं वे निकाचित हैं। अनिवृत्तिकरणवर्ती मुनि के सर्वकर्म अनिकाचित हैं। इत्यादि।

**१२. कर्मस्थिति**— इस अनुयोग में जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों के प्रमाण की प्ररूपणा कर्मस्थिति 'प्ररूपणा है, ऐसा श्री 'नागहस्तीश्रमण' कहते हैं। किन्तु आर्यमंक्षु क्षमाश्रमण का कहना है कि— 'कर्मस्थिति संचित सत्कर्म की प्ररूपणा का नाम 'कर्मस्थिति' प्ररूपणा है। यहाँ दोनों उपदेशों के द्वारा प्ररूपणा करना चाहिए। ऐसा श्री वीरसेनस्वामी ने कहा<sup>२</sup> है।

**१३. पश्चिमस्कंध**— इस अनुयोगद्वार में ओघ भव, आदेशभव और भवग्रहण भव ऐसे तीन भेद करके यहाँ भवग्रहण भव प्रकरण प्राप्त है। जो अंतिम भव है उसमें उस जीव के सब कर्मों की बंधमार्गणा, उदयमार्गणा, उदीरणामार्गणा, संक्रममार्गणा और सत्कर्ममार्गणा ये पाँच मार्गणाएं पश्चिम स्कंध अनुयोगद्वार में की जाती हैं।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशाग्र का आश्रय करके इन पाँच मार्गणाओं की प्ररूपणा कर चुकने पर तत्पश्चात् पश्चिम भव ग्रहण में सिद्धि को प्राप्त होने वाले जीव की यह अन्य प्ररूपणा करना चाहिए<sup>३</sup> इत्यादि।

**१४. अल्पबहुत्व**— इस अनुयोगद्वार में 'नागहस्तिमहामुनि' सत्कर्म की मार्गणा करते हैं और यह उपदेश प्रवाहस्वरूप से आया हुआ परंपरागत है। सत्कर्म चार प्रकार का है— प्रकृतिसत्कर्म, स्थिति सत्कर्म, अनुभाग सत्कर्म और प्रदेश सत्कर्म। इनमें से प्रकृति सत्कर्म के मूल और उत्तर की अपेक्षा दो भेद करके मूल प्रकृतियों के स्वामी को लेकर कहते हैं— "पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अंतराय प्रकृतियों के सत्कर्म का स्वामी कौन है? इनके सत्कर्म के स्वामी सब छद्मस्थ जीव हैं। इत्यादि रूप से अल्पबहुत्व का विस्तार से कथन किया गया है।<sup>४</sup>

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१२। २. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१८।

३. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५१९। ४. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. १६, पृ. ५२२।

इस प्रकार यहाँ सोलहवें ग्रंथ में इन उपर्युक्त कथित शेष १४ अनुयोगद्वारों को पूर्ण किया है।

उपसंहार यह है कि — कृति, वेदना, स्पर्श आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में से 'कृति और वेदना' नाम के मात्र दो अनुयोग द्वारों में 'वेदनाखण्ड' नाम से चौथा खण्ड विभक्त है। पुनश्च 'स्पर्श' आदि से लेकर अल्पबहुत्व तक २२ अनुयोगद्वारों में 'वर्गणाखण्ड' नाम से पांचवां खण्ड लिया गया है। यहाँ तक पाँच खंडों की सोलह पुस्तकों में विभक्त किया है। छोटे महाबंध खण्ड में सात पुस्तकें विभक्त हैं जो कि हिन्दी अनुवाद होकर छप चुकी हैं।

भगवान महावीर की वाणी से संबंध — इन 'षट्खण्डागम' सूत्रग्रंथराज का भगवान महावीर की वाणी से सीधा संबंध स्वीकार किया गया है। जैसा कि श्री वीरसेनाचार्य ने नवमी पुस्तक में लिखा है —

“लोहाइरिए सगलोगं गदे<sup>१</sup>.....।

इस प्रकरण को मैंने प्रारंभ में ही उद्धृत किया है।

जयउ धरसेणाहो जेण महाकम्मपयडिपाहुडसेलो। बुद्धिसिरेणुद्धरिओ समप्पिओ पुप्फयंतस्स।।

श्रीधरसेनाचार्य महामुनीन्द्र जयवंत होवें कि जिन्होंने 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' नाम के शैल-पर्वत को बुद्धिरूपी मस्तक से उद्धृत करके-उठा करके श्रीपुष्पदंत एवं श्री भूतबलि ऐसे दो महामुनियों को समर्पित किया है। अनंतर —

जो टीकाएं उपलब्ध नहीं हैं उनके रचयिता सभी टीकाकारों को मेरा कोटि-कोटि नमन हैं कि जिनके प्रसाद से श्रीवीरसेनस्वामी ने ज्ञान प्राप्त किया होगा। पुनश्च —

श्री वीरसेनस्वामी के हम सभी पर आज अनंत उपकार हैं कि जिनकी इस धवल-शुभ्र-उज्ज्वल-धवलाटीका के किंचित् मात्र अंश को मैंने समझा है।

इसमें पूर्वजन्म के संस्कार, वर्तमान में सरस्वती की महती कृपा, दीक्षागुरु श्री आचार्य देशभूषण जी एवं आर्यिका दीक्षा के गुरु के गुरु इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागराचार्य एवं उनके प्रथम शिष्य पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज (आर्यिका दीक्षा के गुरु) का मंगल आशीर्वाद ही मेरे इस श्रुतज्ञान में निमित्त है, ऐसा मैं मानती हूँ।

आगे भविष्य में मैं इस षट्खण्डागम की शेष १४वीं, १५वीं एवं १६वीं पुस्तकों का भी अध्ययन करके उन पर 'सिद्धान्तचिन्तामणि' टीका लिखकर अपने परिणामों की विशुद्धि को वृद्धिंगत कर सकूँ यही श्री महावीर स्वामी के चरणों में प्रार्थना करती हूँ पुनः इस 'महावीर तीर्थ त्रिवेणी संगम' को भी नमन करती हूँ। अनंतर भावश्रुत की प्राप्ति के लिए महाग्रंथराज 'षट्खण्डागम' को भी अनंतअनंत बार नमस्कार करती हूँ।

अष्टादशमहाभाषा, लघुसप्तशतान्विता।

द्वादशांगमयी देवी, सा चित्ताब्जेऽवतार्यते<sup>१</sup>।।



१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु. ९, पृ. १३३। २. षट्खण्डागम (सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वित) पु. १, पृ. २।